राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 की अपेक्षाओं के अनुरूप शिक्षक– शिक्षा का उद्देश्य प्रत्येक छात्राध्यापक को इस प्रकार समर्थ बनाना है कि वह–

- बच्चों का ख्याल रख सके और उनके साथ रहना पसंद करे।
- सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संदर्भों में बच्चों को समझ सके।
- व्यक्तिगत अनुभवों से अर्थ निकालने को अधिगम अर्थात सीखना समझे।
- सीखने के तरीके समझे, सीखने की अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने के संभावित तरीके जाने तथा सीखने के प्रकार, गति तथा तरीकों के आधार पर विद्यार्थियों की विभिन्नताओं को समझे।
- ज्ञान को, चिंतनशील सीखने की सतत् उभरती प्रक्रिया माने।
- ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों के वाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखे।
- उन सामाजिक, पेशेवर और प्रशासनिक संदर्भो के प्रति संवेदनशील हो जिनमें उसे काम करना है।
- ग्रहणशील हो और लगातार सीखता रहे, समाज और विश्व को बेहतर बनाने की दिशा में अपनी जिम्मेदारियों को समझ सके।
- वास्तविक परिस्थितियों में न केवल समझदारी वाले रवैये को अपनाने की उपयुक्त योग्यता का विकास करे बल्कि इस तरह की परिस्थितियों का निर्माण करने के भी योग्य बने।
- उसके भाषायी ज्ञान और दक्षता का आधार ठोस हो।
- व्यक्तिगत अपेक्षाओं, आत्मबोध, क्षमताओं, अभिरूचियों आदि की पहचान कर सके।
- अपना पेशेवर उन्मुखीकरण करने के लिए सोच समझ कर प्रयास करता रहे। यह विशेष परिस्थितियाँ अध्यापक के रूप में उसकी भूमिका तय करने में मदद करेंगी।

डिप्लोमा इन एजुकेशन (डी.एड.)

(शिक्षा में पत्रोपाधि)

दूरस्थ शिक्षा हेतु स्व-अधिगम सामग्री

ज्ञान शिक्षाक्रम व शिक्षण शास्त्र

प्रथम वर्ष

प्रकाशन वर्ष -2013

निःशुल्क वितरण हेतु

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,छत्तीसगढ़, रायपुर

डिप्लोमा इन एजुकेशन (डी.एड.)

(शिक्षा में पत्रोपाधि)

दूरस्थ शिक्षा हेतु स्व–अधिगम सामग्री

ज्ञान शिक्षाक्रम व शिक्षण शास्त्र

प्रथम वर्ष

प्रकाशन वर्ष–2013

निःशुल्क वितरण हेतु

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्,

छत्तीसगढ़, रायपुर

प्रकाशन वर्ष – 2013
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् रायपुर छत्तीसगढ़

राज्य कार्यक्रम प्रभारी
अनिल राय (भा.व.से)
संचालक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

राज्य समन्वयक
ए.लकड़ा,
संयुक्त संचालक,राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् छत्तीसगढ़, रायपुर

पाठ्य सामग्री समन्वय
आर. के. वर्मा
यू.के. चक्रवर्ती
डेकेश्वर प्रसाद वर्मा

विषय संयोजक
प्रो. एम. निमजे

तकनीकी सहयोग एवं सामग्री संकलन
दिगन्तर जयपुर, छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र रायपुर,
अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन बेंगलोर

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद रायपुर उन सभी लेखकों/प्रकाशकों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है जिनकी रचनाएँ/आलेख इस पुस्तक में समाहित है।

प्राक्कथन

''अनिवार्य एवं निःशुल्क बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009'' के निर्देशानुसार समस्त अप्रशिक्षित सेवारत प्रारंभिक शिक्षकों को 5 वर्ष की समय सीमा में प्रशिक्षिण प्राप्त किया जाना है। राज्य के समक्ष यह एक बड़ी चुनौती है,साथ ही एक बड़ा अवसर भी है उन शिक्षकों के परस्पर साथ आने का,अपने अनुभवों को साझा करने का जो पूर्व से ही स्कूलों में बच्चों के साथ कार्य कर रहे हैं। इसी अनुक्रम में राज्य में सेवारत अप्रशिक्षित प्राथमिक शिक्षकों को डी.एड. प्रशिक्षण प्राप्त करने का अवसर डी.एड. दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से उपलब्ध कराया जा रहा है।

आज निश्चित ही शिक्षक की भूमिका में काफी बदलाव आया है। इस बदलती भूमिका के लिए उनको बेहतर तरीके से तैयार करने की आवश्यकता है। दूरस्थ शिक्षा से डी.एड.प्रशिक्षण का यह कार्यक्रम इसी दिशा में एक प्रयास है, जिसे आप सबके सकारात्मक सहयोग से निश्चित ही सफलता मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस कार्यक्रम के माध्यम से आप अपने अनुभवों को एक दूसरे के साथ साझा करेंगे तथा और अधिक संवेदनशीलता के साथ स्कूल में अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन कर सकेंगे, बच्चों को उनकी विशेषताओं के साथ बेहतर ढंग से समझ सकेंगे और सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में अपनी भूमिका निर्धारित कर सकेंगे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 में शिक्षकों की भूमिका के संबंध में कहा गया है कि वे ''सीखने–सिखाने की परिस्थितियों में उत्साहवर्धक सहयोगी तथा सीखने को सहज बनाने वाले बनें जो अपने विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज में उनकी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमताओं को पूर्णता तक जानने में,उनमें अपेक्षित सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों व चरित्र के विकास में तथा जिम्मेदार नागरिकों की भूमिका निभाने में समर्थ बनाएँ।''

राज्य में कुछ वर्षों पूर्व से ही डी.एड. का नवीन पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री तैयार कर सेवा पूर्व डी.एड. प्रशिक्षण कार्यक्रम हेतु लागू कर दिया गया है। डी.एड. पाठ्यसामग्री को स्व–अधिगम सामग्री में परिणित कर इसे सेवारत शिक्षकों के अनुरूप तैयार किया गया है।

प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में इन छः विषयों को सम्मिलित किया गया है–

1. ज्ञान शिक्षाक्रम व शिक्षण शास्त्र।
2. बाल विकास और सीखना।
3. शाला व समुदाय।
4. कला व कला शिक्षण।
5. गणित व गणित शिक्षण।
6. भाषा व भाषा शिक्षण।

इस पाठ्यसामग्री का फोकस विषयवार समझ विकसित करने की अपेक्षा एक एकीकृत समझ विकसित करने में है, किसी विशेषीकृत शिक्षण विधि से हटकर एक समग्र शिक्षण विधि जो बच्चों को सीखने में मदद करें।

चयनित पाठ्यसामग्री में कुछ लेखक/प्रकाशकों की पाठ्य सामग्री प्रशिक्षार्थियों के हित को ध्यान में रखकर ज्यों की त्यों ली गई है। कहीं–कहीं स्वरूप में परिवर्तन भी किया गया है, कुछ सामग्री अंग्रेजी की पुस्तकों से लेकर अनुदित की गई है। हमारा प्रयास यह है कि प्रबुद्ध लेखकों की लेखनी का लाभ हमारे भावी शिक्षकों को मिल सके। इग्नू और एन.सी.ई.आर.टी. सहित जिन भी लेखकों/प्रकाशकों की पाठ्यसामग्री किसी भी रूप में उपयोग की गई है, हम उनके हृदय से आभारी हैं। हम विद्या भवन सोसायटी उदयपुर, दिगंतर जयपुर, एकलव्य भोपाल, अजीम प्रेमजी फाउण्डेशन बैंगलुरू, आई.सी.आई.सी.आई. फाउण्डेशन पुणे, आई.आई.टी. कानपुर, छत्तीसगढ़ शिक्षा संदर्भ केन्द्र रायपुर के आभारी हैं जिनकी टीम ने एस.सी.ई.आर.टी. और डाइट के संकाय सदस्यों के साथ मिलकर पठन–सामग्री को वर्तमान स्वरूप प्रदान किया।

स्व–अधिगम पाठ्यसामग्री तैयार करने में प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सहयोगियों का हम पुनः आभार व्यक्त करते हैं। पाठ्यक्रम तैयार करने तथा पाठ्य सामग्री के संकलन व लेखन कार्य से जुड़े लेखन समूह सदस्यों को भी हम धन्यवाद देना चाहेंगे जिनके परिश्रम से पाठ्य सामग्री को यह स्वरूप दिया जा सका। पाठ्य–सामग्री के संबंध में शिक्षक–प्रशिक्षकों, प्रशिक्षार्थियों के साथ–साथ अन्य प्रबुद्धजनों, शिक्षाविदों के भी सुझावों व आलोचनाओं की हमें अधीरता से प्रतीक्षा रहेगी जिससे भविष्य में इसे और बेहतर स्वरूप दिया जा सके।

कोई भी पाठ्यक्रम सम्पूर्ण नहीं होता इसमें सुधार की असीम सम्भावनाएं होती है तथा निंरतर परिवर्तन जीवित होने का एक प्रमाण भी है। अतः आपसे अनुरोध है कि सम्पूर्ण पाठ्य–सामग्रियों को पढ़कर अपने सुझाव हमें अवश्य भेजे ताकि पाठ्यक्रम में आवश्यक सुधार कर इसे जीवित रखा जा सके।

धन्यवाद।

संचालक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, छत्तीसगढ़,रायपुर

विषय–सूची

इकाई	अध्याय	पेज न.
1.	अपनी स्कूली शिक्षा पर विचार	1 – 27
2.	ज्ञान के प्रकार	28 – 47
3.	ज्ञान और प्रमाण .	48 – 69
4.	पश्चिमी दार्शनिक और ज्ञान की शर्तें	70 – 94
5.	ज्ञान के स्वरूप	95 – 123
6.	ज्ञान और शिक्षाक्रम.	124– 136
	प्रोजेक्ट कार्य हेतु कुछ प्रश्न	137

अध्याय – 1

अपनी स्कूली शिक्षा पर विचार

पाठ की रूपरेखा

1.1 परिचय

1.1.1 उद्देश्य

1.2 अपनी स्कूली जीवन की समीक्षा

1.3 आदर्शों को पढना

1.3.1 तोत्तोचान

1.3.2 दिवास्वप्न

1.3.3 यास्नाया पोल्याना का अर्द्धवार्षिक प्रतिवेदन

1.3.4 समरहिल में एरिक फ्राम की प्रस्तावना से

1.4 सारांश

1.1 परिचय

बारह सालों तक हम स्कूली शिक्षा का हिस्सा एक छात्र के रूप में रहे हैं और अब एक शिक्षक के रूप में हैं। इस दौरान शायद ही हमने इस सवाल पर ठीक तरह से सोचा होगा कि हमारे साथ इन बारह सालों में जो कुछ हुआ वह सब क्यों होता रहा है? आज जब हम शिक्षक के पेशे में हैं तो यह जरूरी भी है और उपयोगी भी कि हम अपने स्कूली अनुभवों को पलट कर देखें। स्कूली अनुभव को एक बच्चे की नजर से न देखते हुए, हमें उस नजर से देखने की जरूरत है जिस तरह से हमारे शिक्षक स्कूल को हमारे लिये देखते रहे हैं। इस अध्याय में, सवालों के जरिये हम स्कूली जीवन के अपने अनुभवों की समीक्षा करेंगे, और दूसरी परिस्थितियों के साथ अपने अनुभवों की तुलना करेंगे। दूसरी स्कूलीय परिरिस्थितियों के लिए चार पठन सामग्रियों का अध्ययन करेंगे जो कि तोत्तोचान, दिवास्वप्न, यास्नाया पोल्याना का अर्द्धवार्षिक प्रतिवेदन व समरहिल से लिया गया है।

1.1.1 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप–

1. एक शिक्षक की नजर से अपने स्कूली जीवन के अनुभवों की समीक्षा कर पाएंगे।
2. कुछ शब्द जैसे शिक्षा, शाला, शिक्षाक्रम, शिक्षणशास्त्र पर आरंभिक समझ बना पाएंगें।
3. शिक्षक–छात्र संबंध, कक्षा में शिक्षण–अधिगम प्रक्रियाएं, आदि से संबंधित प्रश्नों पर विचार कर पाएंगे।
4. ज्ञान और शिक्षा के रिश्तों पर अपने विचार व्यक्त कर पाएंगे।

1.2 अपने स्कूली जीवन पर समीक्षा

इस हिस्से में कुछ सवाल दिये गये हैं जो इशारा मात्र हैं। ये सवाल आपको अपने स्कूल के उन अनुभवों पर दोबारा विचार करने का अवसर प्रदान करेंगे जो आपके लिये परिचित तो हैं ही, बेहद करीबी भी हैं। यह बेहद जरूरी है कि हम अपने अनुभवों के बारे में सोचें और उन्हें अपने कॉपी पर लिखें। आप अपने अनुभवों को यह कह कर न टाल दें कि 'अरे इसे तो सब जानते हैं!' और चीजों को सिर्फ इसलिये न छोड़ दें कि वे आम–सी नजर आती हैं।

नीचे लिखे सवालों पर, कक्षा 4 से 8 के बीच में किसी एक साल में स्कूल में हुये अनुभवों को याद करते हुए एक लेख तैयार करें।

1. शिक्षकों ने मुझे किन–किन तरीकों से पढ़ाया? (शिक्षण शास्त्र)

(i) किन–किन तरीकों से मेरे शिक्षक ने मेरे साथ अन्तःक्रिया की ?

(ii) क्या वे हमेशा मेरे साथ पाठ्यपुस्तक के जरिये ही अन्तःक्रिया करते थे? क्या बगैर पाठ्यपुस्तक के भी मेरे साथ कोई अन्तःक्रिया की जाती थी? कितनी अन्तःक्रिया पाठ्यपुस्तकों के जरिये की गयी? कितनी अन्तःक्रिया बगैर पाठ्यपुस्तकों के की गयी?

(iii) क्या शिक्षक कक्षा में हरेक बच्चे के साथ काम या बातचीत करते थे?

(iv) क्या आप या सभी बच्चे हमेशा शिक्षक की बात सुनते थे?

(v) क्या बच्चे शिक्षक से सवाल पूछते थे? आप या दूसरे बच्चे किस तरह के सवाल पूछते थे? (कुछ उदाहरण दें।)

(vi) वे कौनसी चीजें थीं जो आपने स्कूल में पढ़ीं?

(vii) क्या हरेक शिक्षक बच्चे के साथ एक ही तरीके से व्यवहार करते थे?

(viii) क्या सभी विषय एक ही तरीके से पढ़ाये जाते थे?

(ix) क्या आप प्रत्येक विषय के कोई दो अन्तर (अन्य विषयों से) बता सकते हैं, जो कि उस विषय को समझने से और पढ़ाने के तरीके से जुड़े हों?

(x) बच्चे अलग–अलग शिक्षकों के साथ अलग–अलग व्यवहार करते थे या अलग–अलग तरीके से जवाब देते थे? क्यों?

ठोस उदाहरण हासिल करने के लिये बेहतर रहेगा कि सीधे–सीधे विषयों पर बात की जाये।

2. यह किसने तय किया कि तुम्हें स्कूल में क्या–क्या सीखना चाहिये ? (शिक्षाक्रम)

यह मुमकिन है कि इस सवाल के बहुत सरल जवाबों तक पहुंचना आपके लिये मुश्किल हो। आपके लिये उपयोगी रहेगा कि आप कुछ कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों में से 'भूमिका' को लें और देखें कि वे क्या कहती हैं?

(i) आपने विद्यालय में क्या–क्या चीजें पढ़ीं थी?

(ii) कौन तय करता था कि क्या पढ़ाया जाना चाहिये? (पाठ्यपुस्तकों की प्रस्तावना देखें।)

(iii) क्या आपने समाज में वयस्कों द्वारा स्कूलों पर की जाने वाली टिप्पणियां सुनी हैं? आप क्या सोचते हैं कि अभिभावक अपने बच्चों से क्या बनने की उम्मीद रखते हैं? क्या आप सोचते हैं कि आपके इलाके या गांव

में रहने वाले हरेक परिवार की एक सी उम्मीदें होती हैं? वे स्कूलों, कक्षाओं, शिक्षक की भूमिका, पाठ्यपुस्तकों और दूसरी चीजों के बारे में क्या कहते हैं?

(iv) कक्षा में पाठ्यपुस्तकें क्यों इस्तेमाल की जाती हैं?

(v) क्या सभी पाठ्यपुस्तकें एक ही तरीके से लिखी गयी हैं? (सवालों, चित्रों, खानों, गतिविधियों आदि के मामलों में)।

(vi) क्या हरेक विषय एक ही तरीके से पढ़ाया गया था?

(vii) क्या आप हरेक विषय के लिये दो अलग–अलग बातें सोच सकते हैं जो कि उस विषय को समझने से, जिस तरीके से पढ़ाया गया उससे जुड़ी हों?

(viii) क्या हरेक विषय को उसी तरीके से समझना (न कि याद रखना) मुमकिन है? कौन से विषय अलग थे और आप क्यों सोचते हैं कि वे अलग थे?

(ix) क्या इन अंतरों ने पढ़ाने के तरीकों पर कोई फर्क डाला?

(x) ऐसा क्या था जो आपने स्कूल में नहीं सीखा?

(xi) क्या आपके स्कूल में सांस्कृतिक या खेल कार्यक्रम होते थे? आप क्या सोचते हैं कि वे शिक्षा में उपयोगी थे?

1.3 आदर्शों को पढ़ना

क्या यह मुमकिन है कि किसी विषय को किसी दूसरे तरीके से पढ़ाया जा सके या सीखा जा सके? क्या अलग तरह से पढ़ाना और उसके बारे में सोचना जरूरी है? क्या अलग तरह से सीखने पर आपका अनुभव बच्चे के तौर पर अलग तरह का होता? क्या हर जगह और हर समय लोग इसी तरह पढ़ाते और सीखते रहे हैं? अब हम अपने अनुभवों पर दोबारा विचार करने का काम पूरा कर चुके हैं। अब यह समझने की कोशिश करें कि चीजें जैसी हैं वैसी क्यों हैं और उन्हें अलग तरह से कैसे किया जा सकता था? तीन किताबों से कुछ हिस्से तथा एक किताब के प्रस्तावना का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है। उन्हें पढ़ें, उन पर विचार करें, और दिये सवालों के संदर्भ में अपने अनुभवों के साथ उनकी तुलना करें।

1.3.1 तोत्तो–चान (तेत्सुको कुरोयांगी)

खिड़की में खड़ी नन्हीं लड़की

मां की चिंता का एक कारण था। तोत्तो–चान ने अभी हाल में ही स्कूल जाना शुरू किया था। पर उसे स्कूल की पहली कक्षा से बाहर निकाल दिया गया था।

अभी सप्ताह भर पहले ही तो सब हुआ था। मां को तोत्तो–चान की कक्षा शिक्षिका ने बुलावा भेजा था। "आपकी बेटी पूरी कक्षा को गड़बड़ा देती है। आपको उसे किसी दूसरे स्कूल में ले जाना होगा।" ठंडी सांस छोड़ते हुए उस सुन्दर युवा शिक्षिका ने कहा था "मैं तो अपनी सहनशक्ति की सीमा पार कर चुकी हूं।"

मां घबरा गई ऐसा क्या किया होगा तोत्तो–चान ने जिससे पूरी कक्षा गड़बड़ा जाए? वह हैरान थी।

बौखलाहट में मास्टरनी अपनी पलकें झपकाने लगी। अपने कटे हुए छोटे बालों में उंगलियां फिराते हुए उसने समझाया "पहली बात तो यह है कि वह दिन भर में सैकड़ों बार अपनी मेज खोलती है। मैंने बच्चों से कह रखा है कि वे बिना कारण अपनी मेजें न खोलें। लेकिन, आपकी बिटिया बराबर कुछ निकालती या रखती रहती है। कभी कॉपी निकालती–रखती है। अपनी पेन्सिल का डिब्बा, अपनी किताब, हर चीज जो उसकी मेज में हो। मानिए, हमें अक्षर लिखना हों तो आपकी बिटिया मेज खोलकर कॉपी निकालती है, फिर धड़ाक से ढक्कन बन्द करती है। तब वह फिर मेज खोलती है। इस बार पेंसिल निकालती है, और फिर उसे जल्दी से उसे बन्द करती है। तब वह कॉपी पर ''अ'' लिखती है। अगर उसने ''अ'' गन्दा या गलत लिखा हो तो वह फिर मेज खोलती है, और इस बार रबर निकालती है। फिर ढक्कन बन्द करती है। अक्षर मिटाती है। ढक्कन खोलकर रबड अंदर

रखती है और फिर मेज बंद करती है।यह सब वह बड़ी तेजी से करती है। जब वह ''अ'' लिख चुकी होती है। तब वह एक–एक कर हर चीज वापस रखती है, ढक्कन बन्द करती है फिर खोलती है, कापी वापस रखती है, तब फिर ढक्कन बन्द करती है। अब दूसरे अक्षर की बारी आती है तो वह यह सब दोहराती है। पहले अपनी कॉपी, फिर पेन्सिल फिर रबर निकालती है। हर बार हरेक चीज के लिए वह अपनी मेज खोलती और बन्द करती है। मेरा तो दिमाग भन्ना जाता है लेकिन, मैं तो उसे डांट भी नहीं सकती उसके पास हर बार खोलने बन्द करने का कारण जो होता है।"

अब शिक्षिका की पलकें तेजी से झपकने लगीं थीं। मानों वह मन ही मन पूरा दृश्य फिर से जी रही हो।

अचानक मां को समझ आ गया कि तोत्तो–चान क्यों बार–बार अपनी मेज खोलती बन्द करती होगी। पहला दिन स्कूल में बिताकर तोत्तो–चान उत्साह से भरी लौटी थी। उसने ऐलान किया था ''मेरा स्कूल बहुत अच्छा है। पता है, घर में जो मेज है उसका ड्राअर खींचना पड़ता है। पर हमारे स्कूल में मेज पर एक ढकना है, उसे उठाना पड़ता है–बिल्कुल एक डिब्बे की तरह। उसमें ढेरों चीजें उसमें रखी जा सकती हैं। बड़ा ही मजेदार है।"

मां अपनी बिटिया को मेज खोलने–बन्द करने में मिलने वाले आनंद की कल्पना करने लगी। मां को यह भी नहीं लगा कि यह कोई भारी भूल या शैतानी हो। मेज का नयापन खत्म होते ही तोत्तो–चान ऐसा करना बन्द भी कर देती। पर शिक्षिका से उससे यह सब नहीं कहा। सिर्फ इतना ही कहा "मैं उससे इस बारे में बात करूंगी।"

शिक्षिका की आवाज अब कुछ तीखी हो गयी। उसने आगे कहा, "अगर इतना ही होता तो शायद मुझे बुरा न लगता।"

शिक्षिका आगे की ओर झुकी। मां झिझक कर पीछे हट गयी "जब वह अपनी मेज के ढक्कन से शोर नहीं मचा रही होती है तब वह खड़ी रहती है। पूरे समय।"

"खड़ी रहती है ? कहां ?" मां ने आश्चर्य से पूछा।

"खिड़की में" शिक्षिका ने नाराज होते हुए कहा।

"खिड़की के पास क्यों खड़ी रहती है? मां ने विस्मय से पूछा।

"ताकि वह सड़क पर गुजरने वाले साजिंदों को बुला सके।" लगभग चीखते हुए शिक्षिका ने बताया।

इसके बाद शिक्षिका ने जो कहानी सुनाई, उसका सार कुछ यूं था : पूरे एक घंटे तक अपनी मेज के ढक्कन को उठाने–पटकने के बाद तोत्तो–चान अपनी जगह छोड़ खिड़की के पास जा खड़ी होती और बाहर झांकती रहती। जब शिक्षिका मन ही मन यह सोचने लगती कि भले वह खिड़की के पास खड़ी रहे, कम से कम शांति तो है। यह अचानक तोत्तो–चान जोर से चटकीले कपड़े पहने, सड़क पर से गुजरने वाले साजिंदों को आवाज लगाती। ऐसा वह इसलिए कर सकती थी क्योंकि उनकी कक्षा निचले तले पर थी और कमरे की खिड़की सड़क की ओर खुलती थी। सड़क और खिड़की के बीच पौधे थे पर उनके पार सड़क चलते किसी भी इंसान से बात करना मुश्किल न था। तोत्तो–चान बुलाती तो साजिंदे ठीक खिड़की के पास आ जाते। तब तोत्तो–चान पूरी कक्षा के बच्चों में ऐलान करती, "वे आ गए हैं।" तब सारे के सारे बच्चे अपनी जगह से उठ खिड़की के पास सिमट जाते और शोर मचाने लगते।

"कुछ बजाइये", तब तोत्तो–चान कहती। और तब साजिंदों की टोली जो शायद चुपचाप स्कूल के सामने से गुजर जाती, अपनी शहनाई, घण्टा, ढोल आदि से बच्चों का मन बहलाने लगती। और ऐसे में शिक्षिका के पास धीरज धर शोर–शराबे के खत्म होने का इंतजार करने के अलावा कोई चारा न रहता।

जब संगीत खत्म होता, साजिंदे चले जाते, तब सारे बच्चे अपनी–अपनी जगह लौट आते–अलावा तोत्तो–चान के । जब शिक्षिका पूछती "तुम अभी भी खिड़की के पास क्यों खड़ी हो ?" तब तोत्तो–चान बड़ी गम्भीरता से जवाब देती, "शायद कोई दूसरी टोली आए। कितना बुरा होगा, अगर वे आए और चले जाएं और हमारी नजर ही उन पर न पड़े।"

"आप सोच सकती हैं कि यह सब कितनी–कितनी बाधांए पैदा करता है" शिक्षिका आवेग में भर कर बोल रही थी। मां के मन में शिक्षिका के लिए सहानुभूति जगने ही लगी थी कि वे तीखी आवाज में बोली "और इसके अलावा.... ।"

"इसके अलावा और क्या करती है वह ?" अब मां का दिल सच में बैठने लगा था।

"इसके अलावा?" शिक्षिका ने जोर से कहा "अगर मैं यही गिन पाती कि वह क्या–क्या करती है तो मुझे आपसे उसे किसी दूसरे स्कूल में ले जाने को न कहना पड़ता।"

अपने को कुछ संयत करते हुए शिक्षिका ने सीधे मां की ओर देखा "कल तोत्तो–चान रोज की तरह खिड़की के पास खड़ी थी। मैं अपना पाठ पढ़ाती रही। सोचा कि वह शायद साजिंदों के इंतजार में खड़ी होगी। अचानक आपकी बेटी ने किसी से पूछा "क्या कर रही हो ?" मैं खुद जहां थी वहां से मुझे कोई दिखा ही नहीं, इसलिए मैं जान नही पाई कि आखिर वह किससे बातें कर रही है। उसने फिर अपना प्रश्न दोहराया। मुझे लगा कि वह सड़क पर खड़े किसी व्यक्ति से नहीं ऊपर किसी से बात कर रही है। मेरी जिज्ञासा बनी। मैं उत्तर सुनने की चेष्टा करने लगीं। पर जवाब आया ही नहीं। पर आपकी बेटी बार–बार अपना प्रश्न दोहराती रही, "क्या कर रही हो ?" इतनी बार कि पढ़ाना ही मुश्किल हो गया। मैं यह देखने गई कि आखिर वह प्रश्न कर किससे रही है। जब खिड़की से सिर निकाल कर ऊपर की ओर देखा तो पाया कि वहां ओर पर घोंसला बनाती दो गौरेया (अबाबील) चिड़ियां थीं। वह गौरेयों से बात कर रही थी। मैं बच्चों को समझती हूं। यह भी नहीं कहना चाहती कि चिड़ियों से बात करना बेवकूफी है। पर फिर भी मुझे लगता है कि कक्षा के बीच में चिड़ियों से यह पूछना कि वे क्या कर रहीं हैं कतई गैर जरूरी है।"

इसके बाद शिक्षिका खड़ी हो गई। बर्फीले आवाज में उन्होंने अपना आखिरी वार किया, "मैं अकेली नहीं हूं। साथ के कमरे में जो शिक्षिका हैं उन्हें भी परेशानी हुई है।"

अब मां को कुछ करना ही था। दूसरे बच्चों के साथ यह अन्याय था। उसे दूसरा कोई स्कूल खोजना होगा, ऐसा जहां उसकी नन्हीं को कोई समझें, जहां उसकी बेटी को वे दूसरे बच्चों के साथ रहना, पढ़ना सीख सके।

जिस स्कूल की ओर अब वे जा रही थी वह मां को काफी खोजबीन के बाद मिला था।

मां ने तोत्तो–चान को यह नहीं बताया था कि उसे पिछले स्कूल से निकाल दिया गया है। वह जानती थी कि तोत्तो–चान यह समझ ही नहीं पाएगी कि उसने कोई भूल की है। किसी भी तरह की गांठ वह अपनी बेटी के मन में नहीं बांधना चाहती थी। अन्तः मां ने निश्चय किया था कि जब तक तोत्तो–चान बड़ी नहीं हो जाती वह उसे कुछ भी नहीं बताएगी। मां ने उससे इतना भर पूछा था "एक नए स्कूल में जाना तुम्हें कैसा लगेगा ? मैंने सुना है कि वह बड़ा अच्छा स्कूल है।"

"ठीक है।" कुछ सोचने के बाद तोत्तो–चान ने कहा था। "पर...."

"अब इसके मन में क्या है ?" मां ने सोचा "कहीं यह समझ तो नहीं गई है कि इसे स्कूल से निकाल दिया गया है?", पर क्षण भर ही में तोत्तो–चान ने उल्लास में भर कर पूछा था", क्या तुम्हें लगता है कि साजिंदे नए स्कूल में भी आएंगे?"

कुछ प्रश्न –

- ***तोत्तो–चान को स्कूल क्यों छोड़ना पड़ा?***
- ***तोत्तो–चान की मॉ स्कूली शिक्षा से क्या–क्या उम्मीदें रखती रही होगी? आप पालक के रूप में स्कूलीशिक्षा से क्या–क्या आपेक्षाएँ रखते है?***

• तोत्तो–चान अपने पुरानी शाला में किस तरह का व्यवहार करती थी? उसके ऐसा करने का क्या कारण रहा होगा?

हैडमास्टर साहब

जब मां और तोत्तो–चान दफ्तर में घुसीं तो कुर्सी पर बैठे सज्जन उठ खड़े हुए।

उनके सर पर बाल कम हो चले थे। कुछ दांत भी गायब थे। पर चेहरा उनका स्वस्थ लगता था। बहुत लम्बे भी नहीं थे वे सज्जन, पर उनके कंधे व बाहों में मजबूती लगती थी। उन्होंने काले रंग का एक घिसा–पुराना सा थ्री–पीस सूट पहन रखा था।

जल्दी से झुककर तोत्तो–चान ने नमस्कार की और तब उत्साह से पूछा "आप स्कूल के मास्टर हैं या स्टेशन मास्टर?"

मां अकुलाई। पर इसके पहले कि कुछ सफाई देती, सज्जन हंस पड़े और बोले, "मैं इस स्कूल का हैडमास्टर हूं।"

तोत्तो–चान की खुशी का ठिकाना ना रहा। "मुझे बड़ी खुशी हुई", उसने कहा "क्योंकि मैं अब आपसे कुछ मांगना चाहती हूं। मैं आपके स्कूल में पढ़ना चहती हूं।"

हैडमास्टर जी ने तोत्तो–चान को कुर्सी पर बैठने को कहा। फिर मां की ओर मुड़कर वे बोले "आप घर जा सकती हैं, मैं तोत्तो–चान से बात करना चाहता हूं।"

तोत्तो–चान को थोड़ी–सी उलझन हुई। पर उसने सोच कर देखा तो लगा कि सामने बैठे सज्जन से बात करना उसे बुरा नहीं लगेगा।

"तो मैं इसे आपके पास छोड़े जा रही हूं। मां ने भी बड़ी बहादुरी के साथ कहा और दफ्तर से निकलकर दरवाजा बन्द कर दिया।

हैडमास्टर जी ने एक कुर्सी खींची और तोत्तो–चान की कुर्सी के सामने रखी। जब दोनों आमने–सामने बैठ गये तो उन्होंने कहा, "अब तुम मुझे अपने बारे में सब कुछ बताओं। कुछ भी, जो भी तुम बताना चाहो, बताओं।"

"जो मुझे अच्छा लगे वह बताऊं?" तोत्तो–चान ने सोचा था कि वे प्रश्न करेंगे और उसे उत्तर देने होंगे। पर जब उससे यह कहा गया कि वह किसी भी चीज के बारे में बोल सकती है तो उसे बड़ा अच्छा लगा। वह तुरन्त बोलने लगी। उसने जो कुछ कहा वह था तो काफी गड्ड–मड्ड पर वह अपनी पूरी ताकत से बोलती गई। उसने हैडमास्टर जी को बताया कि जिस ट्रेन पर चढ़कर वे आए थे वह कितनी तेज चली थी; उसने बताया कि उसने टिकट–बाबू से कहा था कि वे उससे टिकट न लें पर उन्होंने उसकी बात ही न मानी; उसने बताया कि उसके दूसरे स्कूल की शिक्षिका कितनी सुन्दर थी, गौरेया का घोंसला कैसा था,

उसका भूरा कुत्ता रॉकी कैसे–कैसे करिश्में दिखा सकता था, उसने बताया कि वह कैंची मुंह में डालकर चलाया करती थी पर उसकी शिक्षिका ने उसे ऐसा करने से मना किया था, क्योंकि उन्हें डर था कि कहीं तोत्तो–चान की जीभ न कट जाये, पर वह फिर भी वैसा करती रही। उसने बताया कि वह नाक कैसे सिनक लेती थी, क्योंकि उसकी बहती नाक अगर मां देख लेती तो वह उसे डांट लगाती थी उसने बताया कि पापा कितने अच्छे तैराक थे, और तो और वे गोता भी लगा सकते थे। वह लगातार बोलती गई। हैडमास्टर साहब कभी हंसते, कभी गर्दन हिलाते और कहते "और फिर ?" तोत्तो–चान इतनी खुश थी कि वह आगे बोलती जाती। बोलते–बोलते आखिरकार उसके पास बालने को कुछ भी नहीं बचा। अब उसका मुंह बन्द था, वह अपने दिमाग पर जोर लगा रही थी। सोच रही थी कि आगे क्या कहे ?

"मुझे और कुछ बताने को तुम्हारे पास क्या कुछ भी नहीं है ?" हैडमास्टर जी ने पूछा।

ऐसे में चुप रहना कितने शर्म की बाल है, तोत्तो–चान ने सोचा। कितना अच्छा मौका है। क्या वह किसी भी चीज के बारे में और कुछ भी नहीं बता सकती ? उसने मन ही मन सोचा। अचानक उसे कुछ सूझा।

हां, वह अपने फ्रॉक के बारे में बतायेगी जो उसने पहन रखी थी। वैसे उसके ज्यादातर कपड़े मां खुद ही सीती थी, पर यह फ्रॉक तो दुकान से खरीदा हुआ था। जब भी वह दोपहर स्कूल से घर लौटती थी तो अक्सर उसके कपड़े फटे होते थे। मां को समझ ही नही आता था कि वे ऐसे कैसे फटे होंगे। उसने हैडमास्टर को बताया कि ऐसा कैसे हो जाता था। असल में उसके इसलिए कपड़े फटते थे क्योंकि वह दूसरों के बगीचों में झाड़ियों के बीच में से घुसती थी। साथ ही वह खाली जमीन के चारों ओर लगे कंटीले तारों के नीचे से भी घुसती। इसलिए आज सुबह जब तैयार होने की बारी आई तो मां की सिली हुई सारी अच्छी फ्रॉक फटी निकली और उसे यह खरीदी हुई फ्रॉक पहननी पड़ी। फ्रॉक पर लाल और सलेटी रंग के चेक बने थे, कपड़ा जर्सी का है इतना बुरा भी नहीं है, पर मां को लगता था कि कॉलर पर कढ़े लाल फूल फूहड़ हैं। "मां को कॉलर पसंद नहीं है" तोत्तो–चान ने कालर उठाकर हैडमास्टर जी को दिखाया।

लेकिन इसके बाद खूब सोचने पर भी तोत्तो–चान को कुछ और न सूझा। उसे इस बात से कुछ दुख हुआ। लेकिन तभी हैडमास्टर जी उठ खड़े हुए। उन्होंने अपना भरा बड़ा सा हाथ उसके सिर पर रखा और कहा "अब तुम इस स्कूल की छात्रा हो।"

ठीक ये ही शब्द थे उनके। और उस समय तोत्तो–चान को लगा मानों वह पहली बार किसी ऐसे व्यक्ति से मिली है जो उसे सच में अच्छा लगता हो। असल में इससे पहले किसी ने उसे इतनी देर बोलते नहीं सुना था। और तो और उसे सुनते समय हैडमास्टर साहब ने एक बार भी जम्हाई नहीं ली थी, न ही अरुचि का भाव उनके चेहरे पर आया था। शुरू से अंत तक उन्हें सुनना उतना ही अच्छा लगा था, जितना कि उसे बोलना।

तोत्तो–चान को अभी समय देखना नहीं आता था। फिर भी उसे लगा मानों काफी समय बीत चुका हो। अगर उसे समय देखना आता होता तो उसे जरूर और भी ज्यादा आश्चर्य होता और शायद तब वह हैडमास्टर साहब के प्रति और भी कृतज्ञ होती। क्योंकि, मां और तोत्तो–चान सुबह आठ बजे स्कूल पहुंची थी, और जब वह बोलना बन्द कर चुकी और हैडमास्टर ने उसे बताया कि वह अब स्कूल की छात्रा है, तब उन्होंने अपनी जेब से घड़ी निकाली और कहा "अरे खाना खाने का समय हो गया।" यानी हैडमास्टर साहब ने उसका बतियाना पूरे चार घंटे सुना होगा।

इसी दिन से पहले या उसके बाद किसी वयस्क ने तोत्तो–चान की बात इतनी लम्बे समय तक नहीं सुनी और सच तो यह है कि उसकी मां और पिछली शिक्षिका को यह जानकर भी आश्चर्य होता कि एक सात साल की लड़की लगातार चार घंटे बोलने का मसाला भी जुटा सकती है।

उस वक्त तोत्तो–चान को यह तो पता था ही नहीं कि उसे स्कूल से निकाल दिया गया है और लोगों को यह समझ ही नहीं आ रहा है कि उसका किया क्या जाए। उसकी स्वाभाविक खुशमिजाजी और भुलक्कड़पन के कारण वह भोली–भाली लगती थी। पर अन्दर ही अन्दर उसे यह तो लगता ही था कि उसे दूसरे बच्चों से कुछ फर्क समझा जाता है, शायद कुछ अजीब भी। पर हैडमास्टर साहब के सामने वह अपने आपको सुरक्षित

महसूस कर रही थी। वह बहुत खुश थी। वह हमेशा–हमेशा के लिए उनके ही साथ रहना चाहती थी।

ये भावनायें थी तोत्तो–चान की उस पहले दिन हैडमास्टर सोसाकु कोबायाशी के बारे में। भाग्य से हैडमास्टर साहब की भावनायें भी उसके प्रति ठीक ऐसी ही थी।

कुछ प्रश्न –

• हैडमास्टर व तोत्तो चान की बातचीत के आधार पर बताइए कि हैडमास्टर का स्कूली शिक्षा व्यवस्था के प्रति किस तरह का नजरिया रहा होगा?

• हैडमास्टर जी ने तोत्तो–चान से क्या प्रश्न पूछा?

• हैडमास्टर जी से बात करने के बाद तोत्तो–चान क्या सोच रही थी?

तोमोए में पठन–पाठन

रेल के पुराने डब्बों में चलते स्कूल में जाना तो अपने आप में असामान्य बात थी ही, कक्षाओं में बैठने की व्यवस्था भी अनूठी थी। पिछले स्कूल में बच्चों के बैठने के स्थान निश्चित थे पर यहां जिस समय जहां उनकी इच्छा हो बैठ सकते थे।

काफी सोचने और ध्यान से सब कुछ देखने बाद तोत्तो–चान ने तय किया कि वह उस लड़की के पास बैठेगी जो तुरन्त उसके बाद डब्बे में चढ़ी थी। वह इसलिए उस लड़की ने ऐसा फ्रॉक पहन रखा था जिस पर लम्बे कानों वाला एक खरगोश कढ़ा हुआ था।

लेकिन स्कूल की जो सबसे अनूठी बात थी वे थे वहां के पाठ।

दूसरे स्कूलों में हर विषय के घंटे निश्चित होते थे। जैसे पहला घंटी अगर जापानी की हो, तो उसमें जापानी ही पढ़नी होती थी। फिर दूसरी घंटी अगर गणित का हो तो उसमें सब बच्चों को वही करना होता था, पर यहां सब कुछ अलग था। पहली घंटी शुरु होते ही शिक्षिका दिन भर में जिन विषयों को पढ़ना होता था या जिन प्रश्नों के उत्तर लिखने होते थे उनकी सूची बना देती थी और तब बच्चों से कहती "अब तुम्हें जहां से शुरू करना हो करो।"

इसलिए जापानी या गणित या किसी दूसरे विषय से शुरू किया जा सकता था। जिसे लेख लिखना पसंद हो, वह लेख लिखता था, जबकि ठीक उसके पीछे बैठा बच्चा जिसकी भौतिकी में रुचि हो किसी फ्लास्क में, लैप की लौ पर कुछ उबालता मिल सकता था। इसलिए किसी भी कक्षा में एक छोटा मोटा कोई धमाका हो सकता था।

पढ़ने–पढ़ाने की इस पद्धति से शिक्षक हर बच्चे पर नजर रख सकते थे; उनकी रुचियों, उनके विचारों, उनके चरित्र से बखूबी परिचित हो सकते थे। अपने छात्र–छात्राओं से पहचानने का यह आदर्श तरीका था।

विद्यार्थी, अपने चहेते विषय से दिन शुरू कर सकते थे, और जो विषय अच्छे न लगते हों उनसे जूझने के लिए उनके पास सारा दिन था। यानी वे अपना काम तो किसी न किसी तरह पूरा कर ही डालते थे। इस प्रकार, पढ़ना तो वहां अधिकतर अपने आप पड़ता था पर जब कभी विद्यार्थी चाहते तो वे शिक्षकों से सलाह ले सकते थे। शिक्षक भी कभी–कभी उनके पास स्वयं चले जाते। किसी भी समस्या को धैर्य से तब तक समझाते जब तक वह बच्चे को पूरी तरह न समझ आ जाती। तब वे बच्चों को अपने आप करने के कुछ अभ्यास भी देते। यह थी सार्थक पढ़ाई। और इसका मतलब होता था कि जब शिक्षक कुछ समझाए तो थे तब किसी भी कक्षा में कोई भी बच्चा खोया–सा न बैठा रहे।

पहली कक्षा के बच्चे उस स्तर तक तो नहीं पहुंचे थे कि उन्हें स्वतंत्र पढ़ाई करने दी जाए। पर उन्हें भी किसी भी विषय से प्रारम्भ करने की छूट थी।

कुछ बच्चे वर्णमाला लिखने लगे, कुछ चित्र बनाने, कुछ किताबें पढने लगे, और कुछ कक्षा में ही व्यायाम तक करने लगे। तोत्तो–चान के पास जो लड़की बैठी थी उसे पूरी वर्णमाला आती थी, वह अपनी कॉपी पर लिख रही थी। यह सब इतना बड़ा अजूबा था कि तोत्तो–चान घबराहट में समझ ही न पर रही थी कि वह क्या करे।

ठीक उसी समय पीछे बैठा हुआ लड़का उठा और शिक्षिका से कुछ पूछने ब्लैक–बोर्ड की ओर, बढ़ने लगा। शिक्षिका ब्लैक–बोर्ड के पास एक डेस्क पर बैठी एक बच्चे को कुछ समझा रही थी। तोत्तो–चान ने इधर–उधर ताकना बंद किया, अपनी हथेलियों पर ठुड्डी रखी जाते हुए लडके की पीठ पर जमा दीं। लड़का पैर घिसट कर जब चल रहा था और उसका पूरा शरीर डगमगाता लगता था। पहले तो तोत्तो–चान ने सोचा कि वह जानबूझ कर ऐसा कर रहा है, पर थोड़ी ही देर में वह समझ गई कि लडका ठीक से चल नही पाता है।

तोत्तो–चान उसे तब तक घूरती रही जब तक वह अपनी जगह पर न लौट आया। उसकी आंखें मिली। लड़का मुस्कराया। तोत्तो–चान हड़बड़ा कर मुस्कराई। जब वह अपनी जगह पर बैठा तो उसे बैठने में भी काफी समय लगा। वह मुड़ी और उसने पूछा "तुम ऐसे क्यों चलते हो ?"

उसने धीमी और कोमल आवाज में उत्तर दिया "मुझे पोलियो हुआ था।"

"पोलियो?"तोत्तो–चान ने दोहराया। उसने यह शब्द पहले सुना ही न था।

"हां पोलियो" वह फुसफुसाया, "सिर्फ मेरे पांव नहीं, हाथ भी खराब हैं। उसने अपना बायां हाथ फैलाया। तोत्तो–चान ने देखा कि उसकी लंबी–लंबी उंगलियां मुड़ी थीं और एक दूसरे से चिपकी हुई थीं।

"क्या इसे वे लोग ठीक नहीं कर सकते ?" तोत्तो–चान ने चिंतित होकर पूछा। उसने उत्तर न दिया। अब तोत्तो–चान को अपनी उत्सुकता पर शर्म आने लगी। उसे लगा उसे कुछ पूछना नहीं चाहिए था। तब तक उस लड़के ने उमंग से भर कर कहा "मेरा नाम यासुआकी यामामोतो है। तुम्हारा क्या नाम है?"

लड़के की प्रफुल्ल आवाज सुन वह खुश हो गई और बोली "मैं हूं तोत्तो–चान।"

और इस तरह यासुआकी यामामोतो और तोत्तो–चान दोस्त बने।

धुप के कारण डिब्बे में काफी गर्मी हो गयी थी। तभी किसी ने खिडकी खोल दी। वसंत की ताजा हवा डिब्बे में धुस आई और बच्चों के बालों को बेतरती से बिखेर दिया।

यों शुरू हुआ तोमोए में तोत्तो–चान का पहला दिन।

कुछ प्रश्न–

• तोमोए में पठन–पाठन कक्षा व्यवस्था पर चर्चा करते हुए कक्षा में शिक्षक कि भूमिका पर अपने विचार लिखें।

खेती बाड़ी के शिक्षक

"आज ये तुम्हारे शिक्षक हैं। ये तुम्हें ढेरों नई–नई बातें बतायेंगे।"

यों परिचय दिया था हैडमास्टर साहब ने एक नये शिक्षक का। तोत्तो–चान ने उनकी ओर ध्यान से देखा। एक तो उनकी पोशाक ही शिक्षकों जैसी नहीं थी। उन्होंने धारियों वाला सूती जैकेट बनियान के उपर पहना रखी थी। उनके गले में टाई की जगह एक गमछा झूल रहा था। मोटे नीले कपड़े की तंग पंहुचों वाली पैंट पहने वे खड़े थे। उनके मोजे भी मोटे रबड के थे, जैसे मजदूरों के होते हैं। और हाथ में पुआल का उधडा सा टोप था।

बच्चे उस समय कुहोन्बुत्सु मंदिर के पास एक खेत में खड़े थे।

तोत्तो–चान नये शिक्षक को ध्यान से देख रही थी। उसे लगा उसने पहले भी उन्हें कहीं देखा है। कहां देखा होगा ? वह सोचती रही। उनका झुर्रीदार चेहरा धूप में तपा हुआ था। बेल्ट की जगह एक काली रस्सी बंधी थी। रस्सी के एक छोर से एक काला पाइप लटक रहा था। वह भी तोत्तो–चान को पहचाना–परिचित लग रहा था। और तब उसे याद आ गया।

"आप नहर के किनारे खेती करते हैं। है ना!" उसने खुश होते हुए कहा।

"बिल्कुल ठीक" नये शिक्षक बोले। उनकी मुस्कान से उनके चेहरे की झुर्रियां और गहरा गईं। "जब कभी तुम बच्चे कहोन्बुत्सु की ओर सैर करने निकलते हो तब तुम्हें मेरे खेत के पास से गुजरना पड़ता है। मेरा खेत वही तो है जिसमें सरसों के फूल उगे हुए हैं।"

"ओहो! और आज आप हमारे नये टीचर होंगे।" बच्चे बड़े उत्साहित हो गए।

"नहीं नही।" उन्होंने हाथ हिलाते हुए कहा "मैं टीचर–वीचर नहीं हूं। मैं एक किसान हूं। तुम्हारे हैडमास्टर जी ने मुझे कहा है कि मैं कुछ बताऊं। बस इसलिए ही आया हूं।"

"ना, यह बात सच नहीं है। ये सच में शिक्षक हैं। खेती बाड़ी के शिक्षक।" हैडमास्टर जी ने उनके पास आकर कहा।" और इन्होंने कृपा कर मेरा आग्रह माना है। ये बतायेंगे कि खेत में फसल कैसे बोया जाती है। जैसे कोई तंदूर वाला हमें यह सिखा सकता है कि डबलरोटी कैसी बनाई जाती है, वैसे ही यह भी सीखा जा सकता है कि खेत में बीज कैसे बोया जाता है। अब आप बच्चों को बतायें", उन्होंने किसान से कहा ताकि काम शुरू किया जा सके।

किसी भी सामान्य प्राथमिक पाठशाला में कुछ भी पढ़ाने के पहले शिक्षक की कागजी शैक्षणिक–योग्यता जरूरी मानी जाती हैं। पर श्री कोबायाशी ऐसी चीजों की परवाह नहीं करते थे। उनका मानना था कि बच्चे किसी को कुछ करते हुए देखने के बाद खुद उसे अपने हाथों से करके ही सीख सकते हैं।

"तो चलो हम काम शुरू करते हैं।" खेतीबाड़ी के शिक्षक ने कहा।

कुहोन्बुत्सु ताल के पास ही पेड़ों की छाया में सब इक्ठ्ठे थे, जो आपेक्षकृत शांत जगह थी। हैडमास्टर साहब ने एक रेल–डब्बे का एक हिस्सा वहां पहले ही भिजवा दिया था। उसमें बच्चों के खेतीबाड़ी के औजार फावडे और कुदाली आदि रखे थे। वह आधाडब्बा एक खेत के बीचों–बीच स्थिर खड़ा था। उसी खेत में बच्चे खेती करने वाले थे।

शिक्षक के कहने पर बच्चे फावड़े, कुदाल ले आये। तब शिक्षक ने उन्हें खरपतवार के बारे में बताया। बताया कि वे बड़ी बेशरमी से उगते हैं। अनाज के पौधों से कहीं तेज बढ़ते हैं इतने ऊंचे हो जाते हैं कि धूप रोक लेते हैं। उनके बीच हर तरह के कीड़े–मकोड़े, जानवर अपना घर बनाते है। और तो और खरपतवार अपने बढ़ने के लिए जमीन से पानी और खाना भी सोख लेते है। नये टीचर सब बातें एक के बाद एक बताते जा रहे थे। पर बोलते समय उनके हाथ एक क्षण भी रुके नहीं थे। हाथ बराबर काम कर रहे थे। हाथों से वे खरपतवार उखाड़ते जा रहे थे। बच्चे भी उनकी देखा–देखी सब ओर खरपतवार उखाड़ने लगे। इसके बाद उन्होंने कुदाल का इस्तेमाल बताया। बीज बोने के लिए कतारें कैसे बनाते हैं, यह बताया। खाद कैसे छिड़की जाती है, यह बताया। और भी ढेरों बातें बताईं जो खेती के लिए जरूरी होती है। यह सब उन्होने करके दिखाया।

इतने में खेत के कोने से छोटा–सा सांप निकला और एक बडे लडके ता–चान के हाथ पर डस ही लिया होता पर खेतीबाड़ी के शिक्षक ने बताया कि सांप जहरीला नहीं था। उनका कहना था कि जब तक आदमी उन्हें तंग न करें वे नुकसान भी नहीं पहुंचाते।

खेत को कैसे बोने का तरीका बताने के अलावा नये शिक्षक ने कीड़े–मकोडों, चिड़ियों, तितलियों और मौसम के बारे में भी बड़ी मजेदार बातें बताईं। और काम से गठीले हुए उनके हाथ मानो उनकी कही बातों की पुष्टि कर रहे थे। जो कुछ भी वे कह रहे थे, सब उनके अनुभव से जानी–परखी बातें थीं।

बच्चे पसीने से तरबतर थे। वे नये टीचर की मदद से खेत बो चुके थे। कुछ ही कतारें टेढ़ी–मेढ़ी थीं, पर उन्हें अनदेखा किया जाए तो पूरा खेत करीने से बोया लगता था।

इस दिन के बाद बच्चे उस किसान का सम्मान करने लगे और जब भी उन्हें देखते तुरंत चिल्ला कहते, "वो हमारे खेतीबाड़ी के शिक्षक।" और जब भी उनके इस नये शिक्षक के पास कुछ खाद बचती, वे आते और बच्चों के खेत पर छिड़क जाते। बच्चों के खेत में कोंपलें फूटने लगीं। पौध धीरे–धीरे बढ़ने लगी। हर दिन कोई न कोई बच्चा वहां चक्कर लगा जाता। लौटकर हैडमास्टर जी और बाकि दोस्तों को सारा हालचाल सुनाता। बच्चों ने अपने नन्हे हाथों से बोए बीजों को पहली बार धरती की कोख से पनपते देखा। यह आनंद ही अनूठा था जब भी दो–तीन बच्चे साथ–साथ गपशप करते होते तो बातचीत जरूर खेतों की प्रगति की ओर मुड़ जाती थी।

विश्व के कई हिस्सों में अब भयानक घटनायें घटने लगी थीं। पर तोमोए के बच्चे आपस में अपने खेत की बात करते थे। खेतों में ही सुख–शांति की रूह बसते है।

कुछ प्रश्न–

• तोमोए स्कूल में खेती बाड़ी की शिक्षा के लिए क्या तरीका इस्तेमाल किया गया है? आपको क्या लगता है कि यही तरीका क्यों अपनाया गया?

• खेती बाडी के शिक्षक कौन थे? उन्होंने बच्चों को खेतीबाड़ी के बारे में क्या–क्या बताया?

• क्या आपको लगता है बच्चों ने इस पूरी प्रक्रिया के दौरान कुछ सीखा? बताइए क्या–क्या सीखा?

खुले में रसोई

एक दिन स्कूल खत्म होने के बाद तोत्तो–चान किसी से बात किए बिना, विदा लिए बिना ही स्कूल के गेट से निकलकर जियुगाओका स्टेशन की ओर भागी। वह बड़बड़ाती जा रही थी। "वज्रपात दर्रा, खुले में रसोई।"

एक छोटी–सी लड़की के याद रखने के लिए यह लंबी चौड़ी और कठिन बात थी। शायद उतनी भी नहीं जैसा कि उसने एक चित्रकथा में पढ़ी थी। कहानी कुछ यों थी कि एक आदमी का नाम बेहद लम्बा था। एक बार वह कुएं में गिर गया। कुछ लोग पास से गुजरे। नाम पूछा। नाम इतना लम्बा था कि वह बताए उससे पहले ही वह डूब गया।

तोत्तो–चान पूरी बात बार–बार दोहराती जा रही थी। पर अगर कोई पास में खड़ा होकर उस प्रसिद्ध लंबे नाम को भी बोलता जो "जूगेमू–जूगेमू" से शुरू होता था, तो वह जरूर अपनी रटी हुई बात भूल जाती। सच तो यह था अगर वह एक बार भी किसी कीचड़ की गड़ही को पार कर इतना भर कहती कि "ये ऽ ऽ कूदा।" तो भी वह अपनी बात भूल सकती थी। इसलिए अपनी बात को बार–बार रटते रहने के अलावा उसके पास कोई चारा नहीं था। भाग्य से उस दिन ट्रेन में उससे किसी ने बात नहीं की। न ही उसने किसी चीज को आतुरता से जानना चाहा। एक बार भी उसने अपने आप से "वह भला क्या था ?" नहीं पूछा। पर फिर भी स्टेशन से निकलते–निकलते किसी ने उसे पहचान लिया। कहा "नमस्कार!" क्यों, वापस लौट आईं।" तोत्तो–चान जवाब देने ही वाली थी। उसने ऐन वक्त पर अपने आप को रोक लिया। इसलिए सिर्फ हाथ हिलाकर अभिवादन किया और जल्दी से घर की ओर भागी।

वह जैसे ही घर के दरवाजे पर पहुंची तो मां को देखा। देखते ही जोर से बोली "वज्रपात–दर्रा, खुले में रसोई।" मां कुछ समझी नहीं। उसने पहले सोचा कि यह कोई जूड़ो–पुकार होगी। तब सोचा, शायद सैंतालिस रॉनिन का कोई नारा होगा। तब कहीं जाकर उसे समझ में आया। जियुगाओका से तीन स्टेशन पहले एक बेहद सुंदर जगह थी। जगह का नाम था "तोदोरोकी केइकोकू" यानी वज्रपात दर्रा। तोक्यो शहर का जाना–माना दर्शनीय स्थल था वह। वहां एक बड़ा सा झरना था, एक नदी थी, आसपास घना और सुन्दर जंगल था। अब तोत्तो–चान की बात में समझने को बचा था एक हिस्सा "खुले में रसोई।" इसका मतलब जरूर यह होगा कि सब बच्चे वहां जाकर रसोई पकाने वाले होंगे। पर कितनी लंबी और कठिन बात थी बच्चों के याद रखने के लिए।

पर तोत्तो–चान याद रख पाई। इससे यह तो सिद्ध हो ही जाता है कि अगर बच्चों की रुचि जग जाये तो वे कठिन से कठिन बात भी याद रख सकते हैं।

याद रखने की बात के बोझ से मुक्त हो तोत्तो–चान ने चैन की सांस ली। और अब वह जल्दी–जल्दी एक–एक करके दूसरी बातें बताने में लग गई। अगले शुक्रवार को सुबह बच्चों को स्कूल में इकठ्ठा होना था। साथ में उन्हें एक सूप का प्याला, एक चावल का बर्तन, एक जोड़ चॉपस्टिक्स और एक कटोरी कच्चा चावल ले जाने थे। हैडमास्टर जी का कहना था कि वही पककर दो कटोरी भात बन जायेगा। हां, वहां वे लोग सूअर के गोश्त का सूप भी पकाने वाले थे इसलिए साथ में थोड़ा मांस और कुछ सब्जियां भी ले जानी थीं। बच्चे अगर दोपहर–बाद को कुछ चना–चबेना खाना चाहें तो वे साथ ला सकते थे।

अगले कई दिनों तक तोत्तो–चान जब भी घर में रहती मां के इर्दगिर्द मंडराती रहती। वह बड़े ध्यान से देखती कि मां छुरी कैसे पकड़ती है, भगोना कैसे उठाती है, चावल कैसे परोसती है। मां को रसोई में काम करते देखना उसे अच्छा लगता था। पर सबसे अच्छा उसे तब लगता जब वह गरम ढक्कन या भगोना छू लेने पर कहती "अरे, यह तो बड़ा गरम है।" और तब चट से अपनी तर्जनी और अंगूठे से अपने कान के फलक को पकड़ लेती।

"ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि कान हमेशा ठंडे रहते हैं।" मां ने समझा कर बताया था।

तोत्तो–चान के लिए ऐसा करना बड़प्पन की निशानी थी। इस बात का प्रमाण भी कि रसोई करने का उस व्यक्ति को लम्बा–चौड़ा अनुभव है। उसने अपने आप से कहा "जब हम वज्रपात–दर्रे में कुछ पकाएंगे तो मैं भी ठीक ऐसा ही करूंगी।"

आखिर शुक्रवार आया। सब ट्रेन से वज्रपात दर्रा पहुंच गए। हैडमास्टर जी ने जंगल में इकठ्ठे बच्चों को ध्यान से देखा। उनके नन्हे–प्यारे चेहरे लंबे ऊंचे पेड़ों से छन–छनकर आती धूप में चमक रहे थे। उनकी पीठ पर लदे झोले सामान से भरे थे। ये उत्सुकता से हैडमास्टर साहब की बात सुनने का इंतजार कर रहे थे। उनके ठीक पीछे विशाल झरना था।झरना अपने ही लय–ताल में बराबर झर रहा था।

"अब" हैडमास्टर जी ने कहा "सबसे पहले हम छोटी टुकड़ियों में बंट जाते हैं। कुछ बच्चे चूल्हें बनायेंगे, कुछ चावल साफ कर चावल पकायेंगे। उसके बाद अपन सब सूप बनाने का काम करेंगे। तो करें अपन तैयारी?"

बच्चों ने तब "पत्थर, कैंची, कागज से पुग कर अपने आप की छह टुकड़ियों में बांट लिया। चूंकि वे सिर्फ 50 के लगभग थे इसलिए जल्दी ही छह टुकडियों में बंट गए।तब कुछ गढ्डे खोदे गए। ईंटों से चूल्हे बने। ऊपर लोहे की छड़ें रखी गई ताकि भगोने रखे जा सकें। कुछ बच्चे लकड़ी चुनने जंगल की ओर भागे तो कुछ दूसरे चावल धोने झरने की ओर बच्चों ने अपने–अपने काम बॉट लिए। तोत्तो–चान ने कहा वह सब्जियां काटेगी। एक बड़ा बच्चा उनकी टुकड़ी का नेता था। उसने मेहनत तो बहुत की। पर उसके काटे टुकड़े या तो बहुत बड़े थे या बहुत छोटे। फिर भी वह जुटा रहा। पसीना उसकी नाक पर चमकने लगा था। तोत्तो–चान ने मां की नकल करते हुए बैंगन, आलू, प्याज, और जिमीकंद के टुकड़े काटे। उसकी काटी सब्जियों का आकार ठीक था। आखिर में उसने बैंगन और चुकन्दर के बारीक टुकड़ों में नमक–मिर्च डालकर एक सलाद बनाया। अपने से बड़े बच्चों को भी वह सलाह देती जा रही थी। उस समय तोत्तो–चान को लगा कि वह तो मां ही बन गई है। सच तो यह था कि सब बच्चे उसके सलाद से बड़े प्रभावित भी हुए थे।

"मैंने सोचा कि बनाकर देखते हैं बनता है भी या नहीं।" उसने बड़ी विनम्रता से कहा।

जब सूप के बारे में सब बच्चों से पूछा गया तो उन्हें बड़ा मजा आया। हर ओर से "अरे!" "बाबा रे!" की

आवाजें आने लगीं। बच्चों की खिलखिलाहट गूंजने लगी चिड़ियों का चहचहाना भी उस शोरगुल में आकर मिल रहा था। इसी बीच सभी पतीलों में से खुशबू उडने लगी थी। किसी चीज को पकते देखने का अनुभव इसके पहले कम ही बच्चों को था। आंच के ताप से कम–ज्यादा करना होता है, इसका भान उन्हें नहीं था। उन्होंने तो बस अपने सामने रखा खाना खाया भर था। पकाने की झंझट–परेशानियां और उसका सुख पाने का उन सबका पहला ही अनुभव था। हरेक कच्ची चीज का रंग–रूप आकार किस–किस तरह और कितना बदला, यह देखना भी एक अनूठा ही अनुभव था।

अंततः हरेक टुकड़ी का काम खत्म हुआ। हैडमास्टर जी ने बच्चों से एक बड़े घेरे में बैठने को कहा। सबके सामने सूप और चावल का प्याला था। पर तोत्तो–चान ने अपनी टुकड़ी का पकाया सूप तब तक नहीं ले जाने दिया, जब तक उसने अपने मन की इच्छा न पूरी कर ली। उसने गर्म ढक्कन उठाया। तब कहा "ओहो! यह तो बड़ा गरम है।" फिर उसने अपनी दोनो हाथों की तर्जनी और अंगूठे से कान के फलक को पकड़ा। फिर उसने कहो "अब ले जाओ " और तब पतीला बच्चों के बीच के बीच ले जाया गया।उसके ऐसा करने से किसी भी बच्चे पर कोई असर नहीं पड़ा। पर फिर भी तोत्तो–चान को मन में संतोष हो गया। सब बच्चे बेहद भूखे थे। पर उनकी आतुरता का खास कारण यह भी था कि यह खाना उनका ही पकाया हुआ था। बच्चों ने तब "चाबो, चाबो ठीक से चाबों" गाया। तब ईश्वर को धन्यवाद दिया। इसके बाद अचानक ही जंगल में चुप्पी छा गई। देर तक बस झरने के अनवरत बहने की आवाज सुनाई देती रही।

कुछ प्रश्न–

• खेती बाड़ी के शिक्षक या खुले में रसोई वाले हिस्से में बच्चों ने क्या क्या सीखा होगा जिसे कक्षा के अन्दर भी सीखया जा सकता था? तथा बच्चों ने किन चीजें को सीखा जिसे कक्षा के अन्दर नही सीखा जा सकता था?

1.3.2 दिवास्वप्न (गिजुभाई)

प्रयोग का आरम्भ :

मैं सोच रहा था– कब पाठशाला खुले और कब कक्षा को सम्हाल कर काम शुरू करूँ? कब अपनी योजनाएं पेश करूं? कब व्यवस्था और शान्ति दाखिल करूं? कब रसिक रीति से पाठ समझाऊँ? और छात्रों के मन हर लूं? उस समय शायद मेरे दिमाग में खून बड़ी तेजी से चक्कर काट रहा होगा!

घण्टी बजी। लड़के कक्षा में आकर बैठे और प्रधानाध्यापक ने मेरे साथ आकर मुझको मेरी कक्षा दिखाई, और लड़कों से कहा– "देखो, ये महाशय लक्ष्मीशंकर आज से तुम्हारे शिक्षक हैं। जैसा ये कहें, वैसा ही करना। इनकी आज्ञा मानना। देखना, कोई ऊधम मत मचाना।"

प्रधानाध्यापक बोल रहे थे ओर इधर मैं अपने अगले बारह महीनों के साथियों के सामने देख रहा था। कोई मुस्कुराया, किसी ने तिरछी निगाह करके आंख मारी किसी ने ऐंठ के साथ सिर हिलाया, कुछ मेरे सामने आश्चर्य और मजाक की नजर से देखते रहे और कुछ भौंचक खड़े रहे।

मैंने देखा कि इन लडकों को मुझे पढ़ाना था! इन मसखरे, ऊधमी, ऐंठबाज और चित्र–विचित्र लडकों को! मन थोडा शह तो खा गया, थोडी छाती भी धड़क गई, लेकिन सोचा परवाह नहीं, धीरे–धीरे देख लिया था पहले शान्ति का खेल फिर कक्षा की सफाई की जॉच, फिर सहगान, फिर वार्त्तालाप आदि।

मैंने रात टीपी हुई बातें जेब से निकाल कर देख लीं।

मैंने सोचा– मेरी ये टीपें तो बेकार हैं। घर में बैठे–बैठे "टीपें" लिखकर कल्पना में पढ़ा देना तो सरल था,

लेकिन यह तो लोहे के चने चबाने जैसा काम है। जो अब तक कोलाहल और ऊधम के पले हुए हैं, उनके सामने शान्ति का खेल अभी तो भैंस के सामने बीन बजाने के समान है। लेकिन चिन्ता नहीं। अच्छा ही हुआ कि पहले ही कौर में यह मक्खी आ गई। कल से अब नया आरम्भ करूंगा।

मैं कक्षा में आया और लड़कों से कहा— "भाइयो, आज अब हम अधिक काम नहीं करेंगे। अब कल से अपना नया काम शुरू होगा। आज तुम सब छुट्टी मनाओ।"

"छुट्टी" शब्द सुनते ही लड़के "हो—हो" करके कमरे से बाहर निकले और सारे मदरसे में खलबली मच गई। वातावरण सारा "छुट्टी, छुट्टी, छुट्टी" से गूंज उठा! लड़के उछलते—कूदते और छलांगें भरते घर की तरफ भागने लगे।

पड़ोस के शिक्षक और विद्यार्थी ताकते रह गये। "यह क्या है?" प्रधानाध्यापक एकदम मेरे पास आए और जरा भौंहें तानकर बोले— "आपने इनको छुट्टी कैसे दे दी? अभी तो दो घण्टों की देर है।"

मैंने कहा— "जी, लड़के आज अभिमुख नहीं थे। वे आज अव्यवस्थित भी थे। शान्ति के खेल में मैंने यह अनुभव किया था।"

प्रधानाध्यापक ने कड़ी आवाज में कहा— "लेकिन इस तरह आप बगैर पूछे छुट्टी नहीं दे सकते। एक कक्षा के लड़के घर जाएंगे, तो दूसरे पढ़ेंगे कैसे? आपके ये प्रयोग यहां नहीं चल सकेंगे।"

उन्होंने जरा रोष में आकर फिर कहा— "आपकी यह अभिमुखता—फभिमुखता जाने दीजिये। शान्ति का खेल तो होता है मान्टेसरी शाला में। यहां प्राथमिक पाठशाला में तो चट तमाचा मारा नहीं और पट सब चुप हुए नहीं! और फिर नियमानुसार सब पढ़ते—पढ़ाते हैं। आप भी उसी तरह पढ़ाएंगे, तो बारह महीनों में कुछ परिणाम नजर आएगा। आज का दिन तो यों ही गया और उल्लू बने, सो घाते में।"

मुझको अपने प्रधानाध्यापक पर दया आई। मैंने कहा— "साहब तमाचा मारकर पढ़ाने का काम तो दूसरे कब से कर ही रहे हैं और उसका फल मैं तो यह देख रहा हूॅ कि लड़के बेहद असभ्य, जंगली, अशान्त और अव्यवस्थित हैं। मैं तो यह भी देख सका हूं कि इन चार वर्षों की शिक्षा में लड़के मानो यही सीखे हैं, "हा हा" "हू, हू" और "तालियां बजाना"! उन्हें अपनी पाठशाला से प्रेम तो है नहीं। छुट्टी का नाम सुना नहीं कि उछलते—कूदते भाग गये।"

प्रधानाध्यापक बोले— "तो अब आप क्या करते हैं हम देख लेंगे।"

मैं धीमे पैरों और बैठे दिल से घर लौटा। लेटे—लेटे विचार करने लगा— भई, काम तो मुश्किल है! लेकिन इसी में तो मेरी सच्ची परीक्षा है। चिन्ता नहीं। हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। इस तरह कहीं "शान्ति का खेल" होता है? मान्टेसरी—पद्धति में इसके लिए पहले से कितनी तालीम दी जाती है ? मैं भी थोड़ा मूर्ख तो हूं ही कि पहले ही दिन यह काम शुरू कर दिया! पहले मुझको उन लोगों से थोड़ा परिचय बढ़ाना चाहिए। मेरे लिए उनके दिल में कुछ प्रेम और रस पैदा होना चाहिए। तब कहीं वे मेरा कहना कुछ सुनेंगे और करेंगे। जहां पाठशाला नहीं, बल्कि छुट्टी प्यारी है, वहॉ काम करने के मानी हैं, भागीरथ का गंगा को लाना!"

मैने दूसरे दिन के काम की बातें निश्चित की, और मैं सो गया। रात को आज के और अगले दिन के काम के सपने में ही बीत गई।

पाठशाला खुली और मैं कक्षा में गया। लड़के मुझको घेर कर खड़े हो गए और मौज में आकर, मजाकिया तौर पर, लेकिन बिना डरे, कहने लगे— "मास्टर साहब, आज भी छुट्टी दीजिए न? आज भी, छुट्टी, छुट्टी, छुट्टी!"

मैंने कहा– "अच्छी बात है, छुट्टी तो आज भी दूंगा। लेकिन सारे दिन की नहीं, दो घण्टों की। पहले ठहरो, मैं तुमको एक कहानी सुनाता हूं। तुम सब सुनो। बाद में हम दूसरी बातें करेंगे।"

मैंने तुरन्त ही कहानी शुरू की।

एक था राजा। उसके थीं सात रानियां! सातों के सात कुंवर और सातों के सात राजकुमारियां!

गड़बड़–गड़बड़ और हो–हल्ला मचाते हुए सब लड़के मुझको घेर कर बैठ गए। कहानी कहते–कहते मैं जरा रुका और बोला– "देखो, सब अच्छी तरह बैठो। यों तो काम नहीं चलेगा।"

सब कुछ–कुछ ठीक बैठ गए और कहने लगे– "तो झट कहानी कहिए न? झट कहिए, आगे क्या हुआ?"

मैंने मुस्कुराते हुए शुरू किया :

"उन सातों राजकुमारियों के सात–सात महल, और महल–महल में सात–सात मोती के झाड़!"

लड़के तो फटी आंखें कहानी सुनने लगे। सारी कक्षा में सन्नाटा था। न कोई बोलता था, न चलता था। प्रधानाध्यापक ने सोचा होगा, आज कक्षा में इतनी अधिक शान्ति क्यों है? बस, वे कक्षा में आ धमके। मुझसे बोले– "कहिए, कहानी सुना रहे हैं?"

मैंने कहा– "जी, हां, कहानी, और यह नए प्रकार का शान्ति का खेल, दोनों साथ–साथ चल रहे हैं।"

प्रधानाध्यापक वापस लौट गए। मेरी कहानी चल रही थी। उधर आसपास की कक्षाओं में बड़ा कोलाहल हो रहा था। मैंने कहा– "देखो, आसपास कैसी गड़बड़ हो रही है?" सब लड़कों ने उस कोलाहल के प्रति अपना तिरस्कार प्रकट किया।

कहानी आधी खत्म हुई और मैंने कहा– "बोलो भाइयो, छुट्टी चाहते हो, तो कहानी बन्द कर दूं? नहीं तो कहानी आगे चालू रखूं।"

सब बोले– "चालू, चालू! हम छुट्टी नहीं चाहते!"

मैंने कहा– "अच्छी बात है, तो अब कहानी सुनो।" लेकिन, मैं बोला–बीच में हम थोड़ी बातचीत कर लें। फिर घण्टी बजने तक मैं कहानी ही सुनाऊंगा"

एक लड़का बोला– "नहीं, बातचीत कल कीजिएगा। अभी तो झट कहानी कहिए कि पूरी हो।"

मैंने कहा– "कहानी तो इतनी लम्बी है कि चार दिन चलेगी।"

सब– "ओहो! इतनी लम्बी, तब तो बड़ा मजा आएगा!"

मैंने जेब से रजिस्टर निकाला और नाम लिखना शुरू किया। सबने बारी–बारी से अपने नाम लिखवाये, पट–पट और झट–झट। फिर मैंने हाजिरी ली और कहा– "देखो, अब से हम कहानी शुरू करने से पहले रोज हाजिरी भरेंगे, फिर कहानी कहेंगे।" इतना कहकर मैंने कहानी जो छेड़ी सो ठेठ घण्टी बजने तक।

समय पूरा हो चुका था, लेकिन लड़के तो कहते थे– "नहीं, अभी बैठिए और कहानी कहिए।"

मैंने कहा– "बस भाइयो, अब कल।" फिर पूछा– "कल छुट्टी या कहानी?" सब बोले–"कहानी, कहानी!कहानी!" यह कह कर वे चले गये।

कल के "छुट्टी छुट्टी छुट्टी" शब्दों के बदले आज वातावरण में "कहानी, कहानी, और कहानी" शब्द गूँज उठे!

मैंने सोचा–चलो, आज का दिन तो सुधरा! यह सच है, और सवा सोलह आने सच है कि कहानी एक अजब जादू है।

मैंने कहा– "पहले हाजिरी, फिर थोड़ी बातचीत और फिर हमारी कहानी।"

जेब से खड़िया मिट्टी का टुकड़ा निकाल कर मैंने एक गोलाकार बनाया और कहा– "देखो, रोज इस पर आकर बैठा करना।" बैठकर दिखाते हुए कहा– "इस तरह। यह जगह मेरी। यहां बैठकर मैं कहानी कहूंगा।"

सब बैठ गये। मैं भी बैठा। हाजिरी ली और कहानी शुरू की। सब अभिमुख थे। कहानी छेड़ दी। मंत्रमुग्ध पुतलों की तरह सब सुन रहे थे। बीच में कहानी रोक कर मैंने कहा– "कहो, तुमको कहानी कैसी लग रही है?"

"हमको तो कहानी बहुत अच्छी लग रही है।"

"जैसे तुमको कहानी सुनना पसंद है, क्या वैसे ही कहानी पढ़ना भी पसन्द है?"

"हां, हमको पढ़ना भी पसंद है। लेकिन ऐसी किताबें मिलती कहां हैं?"

"अगर, मैं तुम्हारे लिए कहानी की ऐसी किताबें ला दूं, तो तुम उनको पढ़ोगे या नहीं?"

"पढ़ेंगे, जरूर पढ़ेंगे?"

इतने में एक चतुर लड़का बोला– "लेकिन आपको कहानी कहनी तो होगी ही। अकेले हमें ही पढ़नी पड़े, सो बात नहीं।"

मैंने कहा– "अच्छा।" और कहानी आगे चलाई।

घण्टी बजी और कहानी मेरी अटकी। सब मुझको घेरकर खड़े हो गए। कुछ तो मेरे सामने प्रेम से ताकने लगे। कुछ मेरे हाथ को धीरे–धीरे छूने और मन में मस्त होने लगे।

मैंने कहा– "जाओ, अब भाग जाओ। मदरसे से घर जाओ।"

लड़के बोले– "जी, नहीं जाते। आप कहानी कहिए। हम शाम तक बैठेंगे।"

लड़के गए और कुछ शिक्षक मेरे पास आए। कहने लगे– "भाई साहब, आपने तो खूब की। अब हमारी कक्षा के लड़के भी कहानी चाहते हैं। आजकल वे पढ़ने में ध्यान नहीं रखते। बार–बार यही कहते हैं, हम तो कहानी सुनने जाएंगे, नहीं तो आप ही कहिए।"

मैंने कहा– "कुछ कहते रहिए न?"

वे बोले– "लेकिन कहना आता किसे है?" कहे तो तब न, जब एक भी कहानी याद हो!"

मैं मूंछों में मुस्कुराता रहा।

दूसरे दिन रविवार था। मैं उस दिन बड़े साहब से मिलने गया।

साहब ने कहा– "भाई प्रधानाध्यापक कहते थे, तुम तमाम वक्त कहानी ही कहा करते हो।"

मैंने कहा– "जी हां, अभी तो कहानी ही चल रही है।"

साहब ने पूछा– "तो फिर प्रयोग कब करोगे? और अभ्यास कैसे पूरा होगा?"

मैंने कहा– "साहब, प्रयोग तो चल ही रहा है। अब तो मैं खुद अनुभव कर रहा हूं कि विद्यार्थियों को और शिक्षकों को एक–दूसरे के नजदीक लाने में कहानी कितनी अजब और जादू–भरी चीज है। पहले दिन जो मेरी सुनते तक न थे। और जो "हा–हा ही–ही" करके मुझे दिक कर रहे थे, वे ही जब से कहानी सुनने को मिली है, तब से शान्त बन गए हैं। मेरी ओर प्रेम से देखते हैं। मेरा कहा सुनते हैं। कहता हूं, उसी प्रकार बैठते हैं। "चुप रहो, गड़बड़ न करो, तो मुझे कभी कहना ही नहीं पड़ता! और कक्षा में से तो निकालने पर भी नहीं निकलते।"

साहब ने कहा– "अच्छा, यह तो मैं समझा। लेकिन अब नई रीति से सिखाना कब शुरू करोगे?"

मैंने कहा– "जी, सिखाने की यही तो नई रीति है। कहानी के द्वारा आज व्यवस्था सिखाई जा रही है; अभिमुखता का अभ्यास हो रहा है; भाषा–शुद्धि और साहित्य का परिचय दिया जा रहा है। कल कुछ दूसरी बातें भी सिखानी शुरू की जाएंगी।"

साहब बोले– "लेकिन देखना, कहीं कहानी–कहानी ही में सारा साल खत्म न हो जाए।"

मैंने कहा– "जी, आप इसकी चिन्ता मत कीजिए।"

कुछ प्रश्न–

• शिक्षा अधिकारी व लक्ष्मीशंकर के बीच में हुई बातचीत को पढ़ते हुये आप आम तौर पर दी जाने वाली किन–किन धमकियों की पहचान कर सकते हैं?

• शिक्षा अधिकारी व लक्ष्मीशंकर एक दूसरे की भूमिका को कैसे देखते हैं?

• शिक्षा अधिकारी व लक्ष्मीशंकर समाज या परिवार, दूसरे शिक्षकों आदि की भूमिका को किस तरह से देखते हैं? वे कैसे तय करते हैं कि कुछ चीजें परिवार या समाज की पसंद के खिलाफ हैं और वे उनसे बचाव कैसे करते हैं?

कहानी के लिए कक्षा के विद्यार्थी गोलाकार जमकर बैठे थे। मैंने तख्ते पर लिखा :–

आज का काम–हाजिरी, बातचीत, कहानी। हाजिरी भरने के बाद मैंने बातचीत छेड़ी। मैंने कहा– "लाओं देखें, तुम्हारे नाखून कितने बढ़े हुए हैं ? सब खड़े होकर अपने हाथ तो दिखाओ।"

हर एक लड़के के नाखून बढ़े हुए थे। नाखूनों में मैंल भी खूब जमा था।

मैंने कहा– "तुम्हारी टोपियां हाथ में लो और देखो, कितनी मैली और कैसी फटी–टूटी हैं?"

सबने अपनी टोपियां देखीं। किसी बिरले की ही टोपी अच्छी थी।

मैं बोला– "देखो, तुम्हारे कोट के बटन साबुत हैं?"

फिर मैंने कहा– "आज और ज्यादा जांच नहीं होगी। कहानी में देर हो रही है।" यह कहकर मैंने कहानी शुरू कर दी।

कहानी के बीच में एक लड़के ने पूछा– "जी, कहानी की किताबों का क्या हुआ?"

मैंने कहा– "एक–दो दिन में ले आऊंगा। हॉ, जो कहानी की किताबें पढ़ना चाहते हों, वे अपने हाथ उठाऍं।

हर एक विद्यार्थी का हाथ उठा हुआ था।

मैंने पूछा– "तुमने कहानी की जो–जो किताबें पढ़ी हों, उनके नाम तो बोलो।" कुछ लड़कों ने दो–चार कहानियां पढ़ी थीं। वे चौथी कक्षा तक आ चुके थे, फिर भी उन्होंने पाठ्यपुस्तकों को छोड़कर और पुस्तकें बहुत ही कम पढ़ी थी।

मैंने पूछा– "तुम में से कोई मासिक–पत्र भी पढ़ता है?" दो जनों ने कहा– "जी, हम 'बालसखा' पढ़ते हैं।"

मैंने कहा– "अच्छी बात है। मैं कहानियां लाऊंगा और तुम पढ़ना। इतनी अधिक कहानियां लाऊंगा कि तुम पढ़ते–पढ़ते थक जाओगे।"

सब बहुत ही प्रसन्न दिखाई पड़े।

फिर कहानी आगे चली, सो घण्टी बजने तक। छुट्टी हुई और मैंने कहा– "भाई, एक बात सुनते जाओ। गोले पर बैठकर सुनो। कल ये नाखून कटवाकर आना, भला! खुद काट सको, तो खुद काट लेना, नहीं तो बाबूजी से कहना या फिर नाई आए, तो उससे कटवा लेना।"

एक बोला– "जी, मैं तो दांत से काट लूंगा।"

मैंने कहा– "नहीं भाई, ऐसा मत करना। नाखून या तो नहनी से कटते हैं या छुरी से।"

मैंने फिर कहा– "एक तमाशा हम और करेंगे।"

सब बोले– "वह क्या?"

"तुम नंगे सिर पाठशाला आया करो। यह गन्दी टोपी किस काम की? और हमें टोपी की जरूरत ही क्या है?

सब हंस पड़े। कहने लगे– "भला, नंगे सिर मदरसे आ भी सकते हैं? प्रधानाध्यापक नाराज नहीं होंगे?"

मैंने कहा– "कल से मैं नंगे सिर ही आऊंगा, और तुम भी सब आना।"

लड़के बोले– "लेकिन बाबूजी मना करेंगे तो?"

"तो कह देना कि यह तो फिजूल का बोझ है। गन्दी टोपी पहनने से तो न पहनना ही अच्छा है।"

मैंने और भी कहा– "देखो कोट के बटन जरूर लगवाते आना। ऐसा तो अच्छा नहीं दीखता।" सब मन में विचार करते–करते घर गए।

रास्ते में मुझको प्रधानाध्यापकजी मिले। कहने लगे– "अजी भाई साहब, तुम तो कुछ–का–कुछ कर रहे हो। ये सब ढोंग क्यों करते हो? नाखून कटवाना और बटन लगवाना और यह, और वह। नये ढंग से पढ़ाना सिखाने आये हो, तो पढ़ाओ न, ये काम तो मां–बाप के हैं। वे करेंगे। नहीं तो हमें क्या पड़ी है? और सुनो, लड़कों को नंगे सिर तो पाठशाला में आने नहीं दिया जा सकता। यह तो असभ्यता होगी। इसके लिए साहब के हुक्म की जरूरत है।"

मैंने कहा– "साहब, पढ़ाई की ये ही तो नई बातें और नई रीतियां हैं। मैले–कुचैले और बेढ़ंगे लड़कों को पहली पढ़ाई और क्या हो सकती है? आप ही देखिए न, जब मैंने उन लोगों से कहा, तो सब–के–सब शरमाए तो सही! उन में यह खयाल तो पैदा हुआ ही है कि इस तरह गन्दा रहना ठीक नहीं। मुझको तो विश्वास है कि आगे बहुतेरे बच्चे सफाई से रहने की कोशिश शुरू करेंगे। रही टोपियों की बात, सो इस संबंध में बडे साहब का मत जान लूॅगा और अलबत्ता उनका हुक्म न मिला, तो यह परिवर्तन बंद रहेगा।"

मैंने कहा– "साहब, आप विश्वास रखिए एक बार देखिए तो सही, प्रयत्न हमारा है, और ईश्वर ने चाहा तो सफलता भी हमारी ही होगी।"

"अच्छा, लेकिन वर्ष के अन्त में तुम्हारे इस पुस्तकालय का क्या होगा ? बच्चों में वे किताबें बांट दोगे?"

"जी–हां, एक तरह से किताबें सारी कक्षा की ही होंगी, और वे कक्षा वालों को वापस मिलनी ही चाहिए। लेकिन यदि मैं मां–बापों को समझा सका कि वे पुस्तकें वापस न मांगें और कक्षा के पुस्तकालय में ही रहने दें, तो पुस्तकालय स्थाई बनेगा, और हर साल उसमें नई–नई किताबें बढ़ती रहेंगी।

"न जाने, लोगों को तुम्हारी बात गले उतरेगी भी! बाकी विचार तो सुन्दर है। अवश्य ही इसको एक अवसर तो दे ही दो! लेकिन फिर भी सवाल यह उठता है कि पढ़ाते समय पाठ्यपुस्तकों के बिना कैसे चलाओगे?"

"जी, मैंने सब–कुछ सोच रखा है।"

साहब से विदा होकर मैं घर आया।

कुछ प्रश्न–

• दिवास्वप्न में बच्चों को भाषा सिखाने के कौन–कौन से तरीके उपयोग में लाये गये हैं?

• दिवास्वप्न में लक्ष्मीशंकर ने विषय शिक्षण के अलावा और कौन–कौनसी चीजें सिखाने का काम किया? स्कूल में इन्हें सिखाने की क्या जरूरत है?

• लक्ष्मीशंकर ने सीखने–सिखाने को रुचिकर बनाने के लिए क्या–क्या किया और इसका बच्चों के सीखने पर क्या प्रभाव पड़ा?

1.3.3 यास्नाया पोल्याना का अर्द्धवार्षिक प्रतिवेदन

स्कूल एक दो मंजिली पक्की इमारत में स्थित हैं। दो कमरों में कक्षाएं लगती हैं, एक में कार्यालय है और दो में अध्यापक रहते हैं। बरामदे में छज्जे के नीचे घंटी टंगी है, जिसकी लटकन पर रस्सी बंधी है। निचली मंजिल के अग्रकक्ष में व्यायाम के उपकरण रखे हैं और ऊपरी मंजिल पर बढ़ई की मेज। सीढ़ी और अग्रकक्ष बर्फ या कीचड़ से गन्दे रहते हैं। यहीं समय–सारिणी भी टंगी होती है।

पढ़ाई की व्यवस्था इस प्रकार हैः अध्यापक, जो स्कूल में ही रहता है और सब कुछ देखने में ठीक–ठाक हो, इसका शौकीन है और साथ ही स्कूल का प्रशासक भी है, वह लगभग हमेशा स्कूल में ही रात बिताने वाले किसी एक लड़के को सुबह आठ बजे घंटी बजाने भेजता है।

अभी अंधेरा ही होता है कि गांव में लोग उठ जाते हैं। स्कूल से गांव के घरों की खिड़कियों में उजाला दिखाई देने लगता है। घंटी बजने के कोई आधे घंटे बाद कोहरे, बारिश या सर्दी, सूरज की टेढ़ी किरणों के प्रकाश में टीलों पर दो–दो, तीन–तीन या अकेले बच्चों की काली आकृतियां प्रकट होती हैं (गांव और स्कूल के बीच में एक बड़ी खाई पड़ती है)। झुंड में रहने या चलने की भावना विद्यार्थियों में बहुत पहले ही खत्म हो चुकी है। अब किसी को इंतजार करने और चिल्लाने की जरूरत नहीं पड़ती कि चलो, स्कूल का वक्त हो गया है! अब विद्यार्थी बहुत कुछ जानता है और इसलिए उसे झुंड की जरूरत नहीं होती। ज्यों ही वक्त होता है, वह स्कूल के लिए चल पड़ता है। मेरी धारणा बनती जा रही है कि सबका व्यक्तित्व उत्तरोत्तर स्वतंत्र और चरित्र उत्तरोत्तर प्रखर बनता जा रहा है। मैंने लगभग कभी नहीं देखा कि विद्यार्थी रास्ते में खेलने लग जाते हों, सिवाय उनके जो बहुत छोटे हैं या दूसरे स्कूलों से आकर भर्ती हुए हैं। अपने साथ कोई कुछ नहीं ले जाता, न तो किताबें ही और न कॉपियां ही। गृहकार्य कोई नहीं दिया जाता। इतना ही नहीं कि हाथों में कुछ नहीं ले जाना होता, विद्यार्थी को दिमाग में भी कुछ नहीं ढोना पड़ता। कोई भी पाठ या कल किया हुआ कोई भी अभ्यास याद रखना उसके लिए आवश्यक नहीं है। उसे अगले पाठ की चिंता नहीं सताती। वह केवल अपने को, अपनी ग्राही प्रकृति और

इस दृढ़ विश्वास को ही लेकर आता है कि स्कूल में आज भी वैसा ही मजा आयेगा, जैसा कल आया था। वह कक्षा के बारे में तब तक नहीं सोचता, जब तक वह शुरू नहीं हो जाती। कभी किसी को देर से आने के लिए सजा नहीं दी जाती और न कोई देर से आता ही है, सिवाय उन बड़े विद्यार्थियों के, जिन्हें उनके मां–बाप कभी किसी काम से घर पर रोक लेते हैं। और वे भी दौड़ते और हांफते हुए स्कूल पहुंचते हैं।

जब तक अध्यापक नहीं आता, वे इकट्ठे होते हैं और इस समय कोई बरामदे के पास सीढ़ी से कूद रहा होता है, तो कोई चिकने रास्ते की बर्फ पर फिसलने का खेल खेलने लगता है, तो कोई अन्दर कमरे में जा बैठता है। जब ज्यादा ठंड होती है तो अध्यापक के आने तक कोई किताब लेकर बैठ जाता है, तो कोई कुछ लिखने लगता है और कोई किसी अन्य काम में व्यस्त हो जाता है। लड़कियां लड़कों से नहीं घुलती–मिलतीं। लड़के भी जब लड़कियों को छेड़ना चाहते हैं, तो किसी एक को नहीं, बल्कि सभी लड़कियों को निशाना बनाते हैं। सिर्फ एक ही लड़की, जो किसी जमींदार के नौकर की बेटी है और बड़ी चतुर तथा योग्य है, लड़कियों के गिरोह से अलग रहने लगी है। उसकी उम्र कोई दस साल है। लड़के उससे बराबरी का, जैसे कि वह लड़का हो, व्यवहार करते हैं, हालांकि इसमें हल्का–सा शालीनता, अनुकंपा और संयम का पुट भी रहता है।

अब माना कि समय–सारिणी के अनुसार पहली, सबसे निचली कक्षा में यंत्रवत पठन, दूसरी में क्रमिक पठन और तीसरी में गणित का पाठ है। अध्यापक कमरे में प्रवेश करता है और लड़के आपस में गुत्थमगुत्था हुए फर्श पर गिरे पड़े हैं और चिल्ला रहे हैंः ''ढेर अभी कम है!'' या ''अरे, कुचल डाला!'' या ''बहुत हो गया! अब छोड़!'' वगैरहा। तभी अध्यापक को देखकर सबसे नीचे वाला चिल्लाता हैः ''प्योत्र मिखाइलोविच, इनसे कहो कि अब छोड़ दें!'' मगर दूसरे फिर भी अपना ऊधम जारी रखते हुए चिल्लाते हैं : ''नमस्ते, प्योत्र मिखाइलोविच!'' अध्यापक आलमारी से किताबें लेता है और जो उसके साथ आलमारी तक आये थे, उन्हें देता है। जो फर्श पर गुत्थमगुत्था हैं, उनमें से ऊपर वाले भी किताबें मांगते हैं। धीरे–धीरे ढेर कम होता जाता है। ज्यों ही ज्यादातर को किताबें मिल जाती हैं, बाकी भी आलमारी की ओर लपकते हैं और चिल्लाते हैं, ''मुझे? और मुझे? और मुझे भी?'' अगर फिर भी दो–एक, जिनका कुश्ती का भूत अभी नहीं उतरा है, फर्श पर लोटते रहते हैं, तो जिन्हें किताबें मिल गयी हैं और बैठे हुए हैं, वे उन पर चिल्लाते हैं, ''क्या तुम लोगों ने तमाशा मचाया हुआ है? कुछ नहीं सुनायी दे रहा। बहुत हो गया!'' आखिरकार जोशीले कहना मान जाते हैं और हांफते हुए किताबें ले लेते हैं और सिर्फ शुरू में ही उत्तेजना के मारे पैर हिलाते रहते हैं। कमरे से लड़ाई का वातावरण गायब हो जाता है और पढ़ाई का वातावरण छा जाता है। लड़का जैसे जोश से अब तक लड़ रहा था, वैसे ही जोश से अब कोल्त्सोव की कवितायें पढ़ने लगता है। उसकी आंखों में अजब चमक आ जाती है और किताब के अलावा उसे और कुछ नहीं दिखायी देता। पढ़ाई से अब उसका ध्यान हटाने के लिए उतनी ही कोशिश करनी पड़ेगी, जितनी कि पहले कुश्ती से हटाने के लिए करनी पड़ी थी।

जो जहां चाहता है, बैठ जाता है, कोई बेंच पर, कोई मेज पर, कोई खिड़की के दासे पर, कोई फर्श पर और कोई कुर्सी पर। लड़कियां सदा साथ–साथ बैठती हैं। दोस्त, एक ही गांव वाले, विशेषतः जो छोटे हैं (उनके बीच ज्यादा गहरी दोस्ती होती है), वे भी सदा पास–पास बैठते हैं। ज्यों ही उनमें से कोई तय करता है उस कोने में जाकर बैठेगा, त्यों ही उसके दूसरे साथी भी एक–दूसरे को धकियाते और झुककर बेंचों के नीचे से निकलते हुए वहीं इकट्ठा हो जाते हैं और इधर–उधर नजर दौड़ाते हुए चेहरे पर सुख और संतोष का ऐसा भाव प्रकट करते हैं कि जैसे ऐसी जगहों पर बैठकर वे शायद बाकी सारे जीवन में भी ऐसे ही सुख अनुभव करते रहेंगे। ऊपर हमने जिस लड़की का जिक्र किया, उसके और दूसरे अधिक स्वतंत्र किस्म के लड़कों के बीच कमरे में न जाने कैसे आयी एक बड़ी आराम कुर्सी पर बैठने की भी होड़–सी लगी रहती है। ज्यों ही किसी के मन में उस कुर्सी पर बैठने का ख्याल आता है, दूसरा उसकी नजर से ही उसका इरादा भांप जाता है, और फिर वे आपस में टकराते हैं तथा सिकुड़कर इकट्ठे कुर्सी में धंस जाते हैं। कुछ समय बाद उनमें से कोई एक दूसरे को ध ाकियाता है, शरीर को तानता है, कुर्सी में पसरकर बैठ जाता है। इस बीच औरों जैसे वह भी किताब पढ़ने में

डूबा रहता है। पाठों के दौरान मैंने कभी किसी को खुसरपुसर करते, दूसरे को चिकोटी काटते, खिखियाते या अध्यापक से किसी दूसरे की शिकायत करते नहीं देखा है।

दो निचली कक्षाएं एक कमरे में बैठती हैं और ऊंची कक्षा दूसरे कमरे में। अध्यापक पहली कक्षा को पढ़ाने आता है तो सब ब्लैकबोर्ड के पास उसे घेर लेते हैं या बैंचों पर पसर जाते हैं या अध्यापक अथवा जिसे पढ़कर सुनाने को कहा गया है, उसके गिर्द मेज पर बैठ जाते हैं। अगर लिखने को दिया जाता है, तो सब अपेक्षाकृत शांति से बैठ जाते हैं, लेकिन बीच में बार–बार उठते भी रहते हैं, ताकि दूसरे की कॉपी में झांक सकें या अपना लिखा अध्यापक को दिखा सकें। समय–सारिणी के अनुसार दिन के खाने के समय तक चार पाठ हो जाने चाहिए, पर कभी–कभी तीन या दो ही हो पाते हैं और कभी–कभी तो बिल्कुल ही दूसरे विषयों की पढ़ाई हो जाती है। अध्यापक शुरू करता है अंकगणित और पढ़ाने लग जाता है रेखागणित, शुरू करता है बाइबिलीय इतिहास से और खत्म करता है व्याकरण के साथ। कभी–कभी अध्यापक और विद्यार्थी, सभी ऐसे मग्न हो जाते हैं, कि पाठ एक घंटे के बजाय तीन घंटे तक चलता रहता है। ऐसा भी होता है कि विद्यार्थी खुद ही चिल्लाते हैंः ''नहीं, अभी और! अभी और!'' जो कहते हैं कि बस हो गया, उन्हें हिकारत भरे शब्दों मे ंजवाब दिया जाता हैः ''ऊब गये हो तो जाओ छोटे बच्चों के साथ खेलो!''

ईश्वरीय कानून के पाठ में, जो सप्ताह में दो बार नियमित रूप से होने वाला अकेला पाठ है, क्योंकि उसका अध्यापक दो वर्स्ट दूर से आता है और चित्रकला के पाठ में सभी विद्यार्थी मौजूद होते हैं। सबसे ज्यादा हलचल, ऊधम, शोर–शराबा और व्यवस्था इन पाठों से पहले देखने में आते हैंः कोई दूसरे कमरे से बेंचें खींचकर ला रहा होता है, कोई झगड़ रहा होता है तो कोई रोटी लाने घर भागता है, कोई अंगीठी में रोटी को गरम करता है, कोई किसी से कुछ छीन रहा होता है तो कोई व्यायाम में जुटा होता है, और फिर सुबह की धमाचौकड़ी की तरह ही कहीं बेहतर है कि उन्हें जबर्दस्ती अपनी–अपनी जगह बिठाने के बजाय खुद ही शांत हो लेने और अपनी सहज अवस्था में आ लेने दिया जाये। स्कूल के वर्तमान वातावरण को देखते हुए उन्हें शारीरिक रूप से रोकना असंभव है। अध्यापक जितना ही जोर से चिल्लायेगा–और ऐसा हुआ भी है– वे भी उतना ही ज्यादा जोर से चिल्लायेंगे, अध्यापक का चिल्लाना उन्हें उल्टे और अधिक उत्तेजित करता है। अगर उन्हें रोक पाओगे या उनका ध्यान किसी और चीज की ओर मोड़ दोगे, तो इस छोटे से समुद्र का उफान धीरे–धीरे कम होता जायेगा और आखिर में वह पूरी तरह शांत हो जायेगा। ज्यादातर मामलों में तो कुछ कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती। चित्रकारी की कक्षा सब की प्रिय कक्षा है। वह दोपहर में लगती है, जब भूख लग आयी होती है, बैठे हुए तीन घंटे हो चुके होते हैं और ऊपर से, अभी बेंचों और मेजों को एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाना होता है। स्वाभाविकतः भयंकर धमाचौकड़ी मच जाती है। लेकिन इसके बावजूद ज्यों ही अध्यापक तैयार होता है, विद्यार्थी भी तैयार हो जाते हैं और जिस विद्यार्थी की वजह से विलंब होता है, उसे सबसे खरी–खोटी सुननी पड़ती है।

मैं यहां एक बात स्पष्ट कर दूं। यास्नाया पोल्याना स्कूल का विवरण देकर मैं उसे इस आदर्श के रूप में उपस्थित नहीं करना चाहता कि क्या होना चाहिए और स्कूल के लिए अच्छा क्या है, बल्कि मैं सिर्फ उसका यथार्थ वर्णन कर रहा हूं। मैं सोचता हूं कि ऐसा वर्णन उपयोगी हो सकता है। अगर मैं अगले अंकों में स्कूल के अब तक के विकास का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत कर सका, तो पाठक को समझने में कठिनाई नहीं होगी कि स्कूल का स्वरूप ठीक वैसा ही क्यों बना, क्यों मैं ऐसी व्यवस्था को अच्छी मानता हूं और क्यों चाहने पर भी मेरे लिए उसे बदलना बिल्कुल असंभव होगा। स्कूल का विकास शुरू से स्वतंत्र रूप से और अध्यापकों तथा विद्यार्थियों ने उसमें जिन तत्वों का समावेश किया है, उनके आधार पर हुआ है। अध्यापक के प्रभाव के सारे महत्व के बावजूद विद्यार्थी को स्कूल न जाने, और यदि जाता है तो अध्यापक जो पढ़ाता है, उसे न सुनने का सदा अधिकार रहा है। दूसरी ओर, अध्यापक को विद्यार्थी को अपने पास न आने देने का अधिकार रहा है। और अधिकांश विद्यार्थियों को स्कूली विद्यार्थियों से बने हुए समाज को यथाशक्ति प्रभावित करने का अवसर प्राप्त रहा है। विद्यार्थी ज्यों–ज्यों आगे

बढ़ते हैं, त्यों–त्यों, अध्यापन का शाखा विस्तार होता है और व्यवस्था जरूरी बनती जाती है। फलस्वरूप यदि स्कूल का सामान्य और सहज ढंग से विकास हो रहा है, तो विद्यार्थी जितना ही ज्यादा सीखेंगें–पढेंगे, उतना ही ज्यादा वे अनुशासन में बंध सकेंगे, व्यवस्था तथा अनुशासन की आवश्यकता को महसूस करेंगे और इस मामले में उन पर अध्यापक का प्रभाव बढ़ेगा। यास्नाया पाल्याना स्कूल में इस नियम को सदा–स्कूल की स्थापना के दिन से ही–ध्यान में रखा गया है। आरंभ में स्कूल के समय का पाठों, विषयों, मध्यांतरों आदि में विभाजन कर पाना कठिन थाः सब कुछ स्वयं ही एक में मिल जाता था। और बंटवारे की सभी कोशिशें नाकाम रहती थीं। अब पहली कक्षा में ऐसे विद्यार्थी मिल जायेंगे, जो खुद ही समय–सारिणी का पालन किये जाने की मांग करते हैं, पाठ के बीच से हटाये जाने पर नाराज होते हैं और जो अपने पास आकर बैठे नन्हें बच्चों को खुद ही कक्षा से बाहर भगाते रहते हैं।

मेरी समझ में बाहरी अव्यवस्था उपयोगी और आवश्यक है, चाहे वह अध्यापक को कितनी भी अजीब और असुविधाजनक क्यों न लगे। उसके लाभों की मुझे प्रायः चर्चा करनी पड़ेगी। जहां तक कथित असुविधाओं का सवाल है, तो उनके बारे में मैं यह कहूंगा। पहली बात तो यह है कि इस अव्यवस्था अथवा मुक्त व्यवस्था से हमें डर केवल इसलिए लगता है कि हम बिल्कुल भिन्न व्यवस्था के, जिसमें हमनें खुद शिक्षा पायी है, आदी हैं। दूसरे, इस तरह के बहुत से अन्य मामलों की तरह इसमें भी बलप्रयोग सिर्फ जल्दबाजी के कारण, मुनष्य के स्वभाव का पर्याप्त सम्मान न किये जाने के कारण किया जाता है। हमें लगता है कि अव्यवस्था बढ़ती ही जा रही है और इस बढ़ने की कोई सीमा नहीं है, कि उसे रोकने का बल प्रयोग के अलावा और कोई उपाय नहीं है, हालांकि अगर थोड़ा–सा इंतजार किया जाता, तो अव्यवस्था (अथवा हलचल) खुद ही शांत होकर ऐसी व्यवस्था में बदल जाती, जो हम जिस व्यवस्था की सोचते हैं, उससे कहीं अधिक उत्कृष्ट और पुख्ता है। स्कूली विद्यार्थी भी आदमी है, चाहे छोटे ही सही, पर आदमी हैं, उनकी भी हमारी जैसी ही जरूरतें हैं और हमारे जैसे ही सोचने के ढंग हैं, वे सब पढ़ना चाहते हैं, इसके लिए ही वे स्कूल आते हैं और इसलिए उनके लिए इस निष्कर्ष पर पहुंचना काफी आसान होगा कि पढ़ने के लिए किन्हीं निश्चित शर्तों को मानना, उसके अनुसार आचरण करना आवश्यक है। इतना ही नहीं वे आदमी हैं, वे एक ही विचार रूपी सूत्र में बंधे हुए लोगों का समाज भी हैं। ''जहां तीन 'मैं, के नाम पर जमा होंगे, उनमें से एक मैं भी होऊंगा!'' वे सिर्फ प्राकृतिक, अपने स्वभाव के अनुरूप नियमों को मानते हैं। जब उन्हें आपके असामयिक हस्तक्षेप के सामने झुकना पड़ता है, तो वे नाराज होते और भुनभुनाते हैं, क्योंकि आपकी घंटियों, समय–सारिणियों और नियमों की वैधता में उन्हें विश्वास नहीं है। कितनी ही बार मैंने देखा है कि बच्चे लड़ रहे हैं और अध्यापक लपककर उन्हें अलग कर देता है। अलग हुए दुश्मन एक–दूसरे को टेढी निगाहों से देखते रहते हैं और अध्यापक की उपस्थिति में भी एक–दूसरे को आखिरी बार और पहले से भी ज्यादा जोर से धकियाने से बाज नहीं आते। हर रोज न जाने कितने बार मैं इसका साक्षी बनता हूं कि दांत किटकिटाते हुए कोई किर्यूशा किसी तरास पर टूट पड़ता है, उसको कनपटियों पर पकड़कर जमीन पर गिरा देता है और लगता है कि उसका कचूमर निकालकर ही दम लेगा, चाहे इसमें अपनी जान भी क्यों न चली जाये; मगर एक मिनट भी नहीं गुजर पाता कि किर्यूशा के नीचे पड़ा तरास हंसने लगता है और मुक्के हल्के पड़ते जाते हैं पांच–एक मिनट बाद ही हम देखते हैं कि दोनों आपस में गलबहियां डाले बैठे हैं। हाल में दो पाठों के बीच की छुट्टी में एक कोने में दो लड़के गुत्थमगुत्था हो रखे थे। उनमें से एक गणित में बहुत तेज, कोई नौ–एक साल की उम्र का और दूसरी कक्षा का विद्यार्थी था। दूसरा छोटे बालों वाला, किसी जमींदार के नौकर का बेटा, बुद्धिमान मगर प्रतिशोधी स्वभाव वाला, छोटा–सा, काली आंखों वाला लड़का था, जिसे बिल्ला कहकर पुकारा जाता था। बिल्ले ने गणितज्ञ की कनपटी के लंबे बालों को पकड़कर उसके सिर को दीवार से भींचा हुआ था,

जबकि गणितज्ञ बिल्ले के छोटे बालों को पकड़ पाने की व्यर्थ कोशिश कर रहा था। बिल्ले की काली आंखों में विजय की चमक थी। जबकि गणितज्ञ बड़ी मुश्किल से आंसू रोके हुए था और कह रहा थाः ''तो क्या? तो क्या?'' मगर साफ था कि उसकी यह बहादुरी दिखावटी ही थी। ऐसा काफी देर तक चलता रहा। मैं तय नहीं कर पा रहा था कि क्या करना चाहिए। ''लड़ रहे हैं, लड़ रहे हैं!'' बच्चे चिल्ला रहे थे और कोने में जमा हो गये थे। जो छोटे थे, वे हंस रहे थे और जो बड़े थे, वे लड़ने वालों को गंभीरता से देख रहे थे। इन निगाहों तथा मौन की बिल्ला उपेक्षा नहीं कर सका। वह समझ गया कि वह ठीक नहीं कर रहा और अपराध भाव से मुस्कराने तथा गणितज्ञ की कनपटी को धीरे–धीरे छोड़ने लग गया। गणितज्ञ ने पलटा खाया और बिल्ला को ऐसे धक्का दिया कि उसका सिर दीवार से जा टकराया। इसके बाद गणितज्ञ को जैसे कि संतोष हो गया और वह वहां से हट गया। बिल्ला रो पड़ा, पर फिर अपने दुश्मन का पीछा करके उसने पूरी ताकत से उसे घूंसा मारा, पर फर का कोट पहने होने से गणितज्ञ को कुछ महसूस न हुआ। अब गणितज्ञ बदला लेने वाला था कि उसी क्षण कुछ नाराजगी भरी आवाजें सुनायी दीं : ''शर्म नहीं आती, छोटे से लड़ते हुए!'' ''अरे बिल्ले, भागो!'' सारा किस्सा यों खत्म हो गया कि जैसे कुछ हुआ ही न हो, सिवाय जैसा कि मैं सोचता हूं, दोनों को इस बात के धुंधले से अहसास के कि लड़ना ठीक नहीं है, क्योंकि दोनों को पीड़ा पहुंची थी। यहां मैंने जैसे कि एक न्याय भावना के दर्शन किये, जो भीड़ का निर्देशन कर रही थी। कितनी ही बार ऐसे मसले यों हल होते हैं कि समझ में नहीं आता है कि किस कानून के आधार पर। लेकिन फिर भी वे हल होते हैं और दोनों पक्षों के लिए संतोषजनक ढंग से। ऐसे मामलों में प्रयुक्त सभी शैक्षिक तरीके इसकी तुलना में कितने मनमाने और अनुचित प्रतीत होते हैं। ''दोनों कसूरवार हो! मांगो दोनों माफी!'' शिक्षक कहता है, और वह ठीक नहीं है, क्योंकि कसूरवार एक है और माफी मांगने पर भी और अपने पूरी तरह न निकले गुस्से को पीने को मजबूर होने पर भी विजय उसकी हुई है, जबकि दूसरे को, जो बेकसूर है, दोहरी सजा मिली है। या ''तुम्हारा कसूर यह है कि तुमने अमुक काम किया, और इसलिए तुम्हें सजा मिलेगी", शिक्षक कहेगा और सजा पाने वाला अपने दुश्मन से इसलिए और भी ज्यादा नफरत करने लगेगा कि निरंकुश सत्ता, कानून, जिसे वह नहीं मानता, उसका– दुश्मन का– तरफदार है। या ''ईश्वर कहता है कि अपने शत्रु को क्षमा कर दो, उससे बेहतर बनो!'' शिक्षक कहेगा। आप उससे कहते हैंः बेहतर बनो, पर वह सिर्फ अधिक शक्तिशाली बनना चाहता है, क्योंकि उसके लिए बेहतर की और कोई परिभाषा न तो है, न हो ही सकती है। या ''तुम दोनों का दोष है। इसलिए, बच्चो, एक–दूसरे को क्षमा कर दो और चूम लो'' यह तो सबसे गलत है– इस चुंबन के झूठे, दिखावटी स्वरूप के कारण भी और इसलिए भी कि जबर्दस्ती दबाया हुआ गुस्सा जल्दी ही फिर भड़क उठेगा। इसलिए उन्हें अकेले ही छोड़ दें, बेशक अगर आप बाप या मां नहीं हैं। जिन्हें अपना बच्चा हमेशा बेचारा लगता है और इसलिए जो अपने बेटे को पीटने वाले को सजा देने में कोई अनुचित बात नहीं देखते। उन्हें छोड़ दें और देखें कि कैसे जीवन में हमारे जाने बिना भी बनने वाले संबंधों की भांति ही सरल तथा सहज ढंग से और साथ ही जटिल तथा बहुविध ढंग से सारा झगड़ा साफ हो जाता है और निबट जाता है। लेकिन जिन अध्यापकों ने ऐसी अव्यवस्था अथवा मुक्त व्यवस्था नहीं देखी है, वे शायद सोचेंगे कि बिना उनके हस्तक्षेप के इस अव्यवस्था के सिर फुटौवल जैसे शारीरिक तौर पर हानिकारक परिणाम निकल सकते हैं, यानी किसी का हाथ–पैर टूट सकता है। यास्नाया पोल्याना स्कूल में पिछले वसंत में ऐसे दो किस्से हुए थे जब किसी को चोट लगी थी। एक लड़के को किसी ने बरामदे से धकेल दिया था, जिससे

उसका पैर काफी गहरा कट गया था (घाव दो हफ्ते में भरा), और दूसरे के गाल पर किसी ने जलता हुआ रबड़ रख दिया था, जिससे उसे दो हफ्ते तक पट्टी बांधे रहनी पड़ी। हफ्ते में एक–आध बार तो ऐसा होता ही है कि कोई दर्द के मारे नहीं, बल्कि अफसोस या शर्म के मारे रो पड़ता है। मुझे याद नहीं कि सारी गरमियों

स्रोत – लेव टोलस्टाय की शिक्षा शास्त्रीय रचनाएं।

में और 30–40 विद्यार्थियों के होने पर भी, जिन्हें पूरी तरह उनकी मरजी पर छोड़ा गया था, मारपीट, चोट, नील या गुमटा पड़ने की उपरोक्त घटनाओं के अलावा और कोई घटना हुई हो।

मैं मानता हूं कि चारित्रिक शिक्षा के काम में, जो केवल परिवार के ही अधिकार क्षेत्र में आता है, स्कूल को दखल नहीं देना चाहिए, कि स्कूल को दंड देने या पुरस्कृत करने का न कोई अधिकार है और न होना ही चाहिए, कि स्कूल सबसे अच्छी तरह तब चलता है जब विद्यार्थियों को इच्छानुसार सीखने–पढ़ने और मिलने–जुलने की पूरी आजादी होती है। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है, लेकिन इसके बावजूद हममें पुरानी आदतें इतने गहरे जड़ें जमाये हुई हैं कि यास्नाया पोल्याना स्कूल में हम प्रायः इस नियम को भूल जाते हैं। पिछली छमाही में, ठीक–ठीक कहे तो नवंबर के महीने में, सजा देने के दो मामले हुए।

कुछ प्रश्न–

- ***कक्षा में छात्रो का आपसी संबंघ/व्यवहार किस प्रकार का था?***
- ***शिक्षक कक्षा को व्यवस्थित करने के लिए कौन–कौन से तरीके अपनाते थे?***
- ***शिक्षक कक्षा में अनुशासन बनाये रखने के लिए क्या–क्या करते थे?***
- ***यास्नाया पोल्याना स्कूल में कौन–कौनसे विषय पढ़ाये जाते थे? इनमें से आपने–अपने स्कूल में कौन–कौनसे विषय पढ़े हैं और कौनसे नहीं पढ़े?***

1.3.4 समरहिल में एरिक फ्राम की प्रस्तावना से

नील की प्रणाली में मौजूद सिद्धांतों को इस किताब में बेहद साफगोई व सहजता के साथ पेश किया गया है। ये संक्षिप्त रूप से निम्न हैं–

1. नील का बच्चे की अच्छाई में दृढ़ विश्वास है। वे मानते हैं कि औसत बच्चा जन्म से अपंग, कायर और आत्महीन मानव–मशीन नहीं होता। बल्कि असमें जीवन के प्रति प्रेम, जीवन में रूचि का सम्पूर्ण सम्भवनाएँ होती हैं।

2. शिक्षा का ध्येय या कहें जीवन का ध्येय है प्रसन्नता से काम करना और आनंद को तलाश पाना। नील के अनुसार आनंद का अर्थ है जीवन रूचि लेना। यही बात मैं दूसरे शब्दों में यूँ कहना चाहूँगा– जीवन के प्रति महज़ दिमागी प्रतिक्रिया न कर अपने समग्र व्यक्तित्व से जुड़ना।

3. शिक्षा में सिर्फ बौद्धिक विकास ही पर्याप्त नहीं है। शिक्षा बौद्धिक के साथ भावनात्मक भी हो, यह जरूरी है। आधुनिक समाज में बुद्धि और भावना में अन्तर क्रमशः बढ़ता जा रहा है। आज मानव के अनुभव उसकी आन्तरिक भावनाओं से ऑखों से देखकर या कानों से सुनकर नहीं होते। वे अनुभव मुख्यतः दिमागी होते हैं। बुद्धि और भावनाओं का यह फासला व्यक्ति में ऐसी खण्डित मानसिकता पैदा करता है जो उसे वैचारिक अनुभव ही पाने देता है।

4. शिक्षा बच्चे की आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली होनी चाहिए। बच्चा परोपकारी नही होता। वह वयस्कों–सा परिपक्व प्रेम करने की स्थिति में नहीं पहुॅचा होता है। बच्चे से उसकी उम्मीद करना भूल होगी, जिसका वह केवल ढोंग करे। परोपकारिता तब विकसित होती है जब वह बचपन पार कर लेता है।

5. सख्ती से लागू किया गया अनुशासन और दण्ड भय पैदा करता है। और भय, विद्वेष जगाता है। यह

विद्वेष न होकर गुप्त भी हो सकता है, फिर भी वह उसके प्रयासों को, उसकी भावनाओं की प्रामाणिकता को पंगु बना डालता है। बच्चों पर व्यापक अनुशासन लागू करना उसके आत्मिक विकास में बाधक साबित होता है।

6. आज़ादी का अर्थ स्वेच्छाचार नहीं होता। नील जिस सिद्धांत पर खासा बल देते हैं, वह यह है कि व्यक्ति के प्रति श्रद्धा दो –तरफा होती है। शिक्षक बालक पर बल प्रयोग नहीं करे, न ही बालक को यह अधिकार हो कि वह शिक्षक पर बल प्रयोग करे। उसे अधिकार नहीं है कि वयस्क पर महज़ इसलिए हावी हो क्योंकि वह बच्चा है। न ही वह उन तरीकों से दबाव डाले जिनका प्रयोग बच्चा कर सकता है।

7. इसी सिद्धांत से जुड़ी बात है शिक्षक की वास्तविक निष्कपटता। लेखक कहते हैं कि 40 वर्षों तक समरहिल में काम करने के दौरान उन्होंने किसी बच्चे से झूठ नहीं बोला। जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा उसे विशेष रूप से विश्वास हो जाएगा कि यह एक दम्भी दावा नहीं है, बल्कि सीधी–साफ सच्चाई का बयान है।

8. अपराधबोध मुख्यतः बच्चे को सत्ता से जोड़ने का काम करता है। स्वतंत्रता की राह में अपराध बोध आड़े आता है। आपराधिक भावनाएँ एक दुष्चक्र शुरू करती है। जो बच्चे के विद्रोह, पश्चाताप, आत्मसमर्पण और एक नए विद्रोह में फॅसाती है। हमारे समान के अधिकांश लोग जो अपराध की भावनाएँ झेलते हैं, वह अपराधबोध आत्मिक आवाज़ की प्रतिक्रिया नहीं होती बल्कि मूलतः सत्ता के प्रति खिलाफत और दण्ड का भय होता है। इससे कोई फर्क नही पड़ता कि वह दण्ड शारीरिक हो, स्नेह–प्रेम को हटा लेना हो, या फिर उसे यह जताना हो कि वह अपना नही पराया है। सभी आपराधिक भावनाएँ डर पैदा करती है, और डर से उपजता है विद्वेष और पाखण्ड।

9. समरहिल किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा नहीं देता। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि जिसे हम आधारभूत मानवीय मूल्य कहें, उनसे समरहिल का कोई सरोकार नही। नील इस बाल को खूबसूरती से समेटते हुए कहते हैं, '' लड़ाई, धर्मविज्ञान में विश्वास या उसमें अविश्वास करने वालों की नही। यह झगड़ा दरअसल मानवीय आजा़दी मे विश्वास करने बालों और मानवीय दमन में आस्था रखने वालों के बीच है।'' लेखक जोड़ते हैं, ''कोई दिन ऐसा भी आएगा जब नई पीढ़ी आज के अप्रासंगिक धर्म और मिथकों को नही स्वीकार करेगी। जब उसका स्थान एक नया धर्म लेगा तो वह उस विचार को नकारेगा कि मानव की सृष्टि पाप से हुई है। लोगों को प्रसन्न रखकर ही वह नया धर्म ईश्वर की स्तुति करेगा।''

नील आज के समाज के आलोचक हैं। वे यह इस बात पर जोर देते हैं कि जिस तरह का इंसान हम विकसित कर रहे हैं वे भीड़ मानव हैं। 'हम पागलों की दुनिया में रह रहे हैं।' और 'हमारे ज्यादातर रीति–रिवाज पांखड हैं।' जाहिर है, लेखक एक अंतर्राष्ट्रीयवादी हैं और इस विचार में अडिग विश्वास करते हैं कि युद्ध के लिए तैयार रहना मानव जाति का एक बर्बर कुलानुजातिक रोग है।

वास्तव में नील बच्चे को ऐसे शिक्षित करने की कोशिश करते ही नही कि बच्चा मौजूदा व्यवस्था में बखूबी फिट हो जाए। बल्कि उनका प्रयास बच्चो को ऐसे पालने–पोसने का है जिससे वे प्रसन्न इन्सान बना पाएँ। वे ऐसे पुरूष बने जिनके मूल्य अधिक पाने, अधिक उपभोग करने के बदले स्वयं कुछ अधिक बनाने का हो। नील यथार्थवादी है, वे यह देख सकते हैं कि जिन बच्चों को वे शिक्षित कर रहे हैं वे सम्भवतः दुनियाई अर्थ मे अधिक सफल न सिद्ध हो। पर फिर भी उनमें सच्ची निष्कपटता विकसित होगी जो उन्हें बेमेल बनने या भूखे–भिखारी बनने से बचाएगी। लेखक ने समग्र मानवीय विकास और पूर्ण बाज़ारी सफलता के बीच चुनाव किया है। और अपने चयनित लक्ष्य की दिशा में वे बिना समझौते किए, पूरी ईमानदारी के साथ आगे बढ़े।

कुछ प्रश्न–

- ***समरहिल स्कूल में दण्ड और भय क्यों नही दिया जाता था? कोई तीन कारण लिखें।***
- ***समरहिल में बच्चों की आजादी के बारे में किस तरह की बातें कही गई है?***

1.4 सारांश

इस अध्याय में हमने अलग–अलग स्कूलों के अनुभवों को पढा और स्कूली शिक्षा से संबंधित अवधारणाओं (जैसे स्कूल, शिक्षण–विधि, शिक्षक–छात्र संबंध, पाठ्यपुस्तक, शिक्षणशास्त्र, शिक्षाक्रम) पर आरंभिक समझ बनाने का प्रयास किया। इस दौरान यह भी समझने का प्रयास किया कि जो चींजें जैसी है वैसी क्यों है? हमने यह भी देखा कि किसी चीज को अलग–अलग तरह से कैसे किया जा सकता है जिससे शिक्षकीय प्रक्रिया को बेहतर बनाने का प्रयास किया जा सके।

1.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. तोमोए स्कूल में सिखाई जाने वाली पांच चीजों का उल्लेख करिये जो आम स्कूलों में नहीं सिखायी जातीं।

2. क्या बच्चों के सीखने के लिए दण्ड और भय जरूरी है? अपने मत को कारण सहित स्पष्ट करें?

3. यास्याना पोल्याना स्कूल की कोई ऐसी तीन विशेषताएं लिखिए जिन्होंने आपको प्रभावित किया हो। क्या आप उन्हें अपने स्कूल में लागू करना चाहेगें? कारण सहित स्पष्ट करें।

4. तोमोए स्कूल और जिस स्कूल में आपने पढ़ाई की है, उसमें आपको क्या अन्तर दिखायी देती हैं?

5. लक्ष्मीशंकर ने दिवास्वप्न में कहानी को शिक्षण का माध्यम क्यों बनाया और इससे उन्हें सिखाने में क्या मदद मिली?

6. आपको आपके शिक्षकों ने किन–किन तरीकों से पढ़ाया? आपकी अब उन तरीकों के बारे में क्या राय है? कारण सहित बताएं?

7. क्या आपके सभी स्कूली सहपाठियों का व्यवहार सभी शिक्षकों के प्रति एक जैसा था? इसके क्या कारण रहे होंगे?

8. आपके स्कूल में विषय शिक्षण के अलावा कौन–कौन सी गतिविधियाँ होती थीं? इन गतिविधियों की आपके सीखने में क्या भूमिका रही?

9. विभिन्न विषयों के शिक्षण के संदर्भ में तोमोए और आपके स्कूल में क्या अंतर देखते हैं?

10.अपनी स्कूली अनुभवों पर पुनर्चिंतन बेहतर शिक्षक बनने में किस तरह मददगार हो सकता है?

11. आपने अपने शिक्षक और पाठ्यपुस्तक के बगैर कौन–कौन सी बातें सीखी? कोई पांच उदाहरण लिखें। इन्हें आपने कहां से और कैसे सीखा?

12. क्या शिक्षक एवं बच्चों के बीच अच्छे संबंध बच्चों के सीखने को प्रभावित करते हैं? कैसे?

13. मान लीजिये, आपको दोबारा स्कूल में पढ़ने का मौका मिले तो आप किस स्कूल में जाना पसंद करेंगें– तोमोए के स्कूल या आपके अपने पूर्व स्कूल में। दो कारण लिखें?

14. आप एक शिक्षक के तौर पर तोमोए, यास्नाया पोल्याना स्कूल के वर्णनों में से किन चीजों को अपने स्कूल में लागू करना चाहोगे और क्यों?

15. अधिगम प्रक्रिया में बच्चों को सुनना और समझना क्यों आवश्यक है?

16. भयमुक्त वातावरण से आप क्या समझते है? अधिगम प्रक्रिया में ''भयमुक्त वातावरण' की आवश्यकता क्यों है?

17. प्रधान पाठक, शिक्षक और स्कूल के बीच का रिश्ता बच्चों के सीखने को किस तरह प्रभावित करता है?

18. कक्षा में कौन कौन सी बातें अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं?

19. आपने स्कूली जीवन के किसी एक कक्षा के अनुभव को निम्न बिन्दुओं पर प्रकाश डालें :

i. स्कूल में क्या क्या सीखा?

ii. कैसे सीखा?

20.तोमोए स्कूल के संदर्भ में निम्न बिन्दुओं पर प्रकाश डालिये :

i. शिक्षक का बच्चों से संबंध

ii. प्रधान पाठक का बच्चों व शिक्षकों से संबंध।

21. आप अपने सपनों के स्कूल की व्याख्या कीजिये?

अध्याय – 2

ज्ञान के प्रकार

पाठ की रूपरेखा

2.1 परिचय
2.1.1 उद्देश्य
2.2 आम बोलचाल की भाषा में 'ज्ञान' शब्द और उसके पीछे की अवधारणा
2.3 ज्ञान के प्रकार
2.3.1 कौशल या व्यवहारिक ज्ञान
2.3.2 परिचयात्मक ज्ञान
2.3.2.1 इंद्रिय अनुभव द्वारा प्राप्त ज्ञान
2.3.2.2 स्वयं के महसूस/अनुभव (बिना इंद्रिय अनुभव) द्वारा प्राप्त ज्ञान
2.3.2.3 स्मृति द्वारा प्राप्त ज्ञान
2.3.2.4 आत्मसजगता द्वारा प्राप्त ज्ञान
2.3.3 तथ्यात्मक ज्ञान
2.4 कौशल परिचयात्मक और तथ्यात्मक ज्ञान में अंर्तसंबंध
2.4.1 कौशल और तथ्यात्मक ज्ञान का संबंध
2.4.2 कौशल को तथ्यात्मक ज्ञान में तब्दील करने की संभवना
2.4.3 कौशल के लिए तथ्यात्मक ज्ञान की आवश्यकता
2.4.4 कौशल और परिचयात्मक ज्ञान में संबंध
2.4.5 परिचयात्मक ज्ञान को तथ्यात्मक ज्ञान में बदलना
2.4.6 ज्ञान के प्रकारों पर विमर्श का शिक्षा से संबंध
2.5 सारांश
2.6 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.1 परिचय

पिछले अध्याय में हमने यह देखने कि कोशिश की है कि हमारे विद्यालयों में क्या सिखाया–पढ़ाया जाता है। इस विचार–विमर्श के माध्यम से हमने शिक्षाक्रम, शिक्षणशास्त्र, पाठ्यक्रम, विषयवस्तु आदि अवधारणाओं के बारे में आरंभिक परिचय प्राप्त किया। साथ ही हमने विचार किया कि जो सिखाया–पढ़ाया जाता है उसमें ज्ञान और दक्षताओं का बाहुल्य होता है। इस अध्याय में हम यह समझने कि कोशिश करेंगे कि, क्या मानवीय ज्ञान के विभिन्न प्रकार होते हैं ? और यदि होते हैं तो उनमें आपसी संबंध क्या हैं? साथ ही यह भी देखेंगे कि ज्ञान के इन प्रकारों का बच्चों के सीखने–सिखाने पर क्या प्रभाव हो सकता है।

2.1.1 उद्देश्य

इस अध्याय को पढने के बाद आप

1. "ज्ञान" शब्द का उपयोग आम बोलचाल व विशिष्ट अर्थों में समझ पाएँगे।
2. ज्ञान के भिन्न प्रकारों पर समझ बना पाएंगें।
3. ज्ञान के विभिन्न प्रकारों के बीच अन्तःसंबंधों को समझ पाएंगे।
4. बच्चों के साथ शिक्षण अधिगम की प्रकिया के दौरान ज्ञान के प्रकारों के महत्व को समझ पाएंगे।
5. ज्ञान के प्रकारों पर बनी समझ के आधार पर अपनी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में उपयोगी सुधार कर पाएंगे।

2.2 आम बोलचाल की भाषा में व विशिष्ट अर्थों में ''ज्ञान'' शब्द और उसके पीछे अवधारणा

यह आरंभिक विचार हम मात्र इसलिए कर रहे हैं क्योंकि अनेक बार सामान्य बातचीत में ''ज्ञान'' को एक बहुत जटिल और अबूझ धारणा के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। बहुत बार ऐसा दिखाया जाता है कि 'ज्ञान' की चर्चा और 'ज्ञान' प्राप्त करना, बहुत ही अबूझ और कठिन कार्य है। इस चर्चा से लोगों के मन में ज्ञान के बारे में आतंक बैठ जाता है। यहां हम यह देखने की कोशिश करेंगे कि न तो 'ज्ञान' की धारणा में आतंक पैदा करने वाली कोई चीज है और न ही इसकी प्राप्ति में। रोजमर्रा के जीवन में जैसे हम सांस लेते हैं, पानी पीते हैं और लोगों से बात करते हैं, वैसे ही तरीके से हम ज्ञान भी प्राप्त करते हैं और ज्ञान की अपनी अवधारणा भी बनाते हैं।

इस विषय पर आगे बढ़ने से पहले हम तीन शब्दों को समझ लें, जिनका प्रयोग हम बहुत बार करने वाले हैं, ये हैं: शब्द, अवधारणा और वस्तु।

- शब्दः वह ध्वनि–समूह है जो हमें सुनाई पड़ता है और जिसे हम कोई अर्थ देते हैं जैसे ''बिल्ली''। जैसे ही हमारे कान में यह ध्वनि सुनाई पड़ता है, एक आवाज पड़ती है, वैसे ही हम इसको एक अर्थ से जोड़ देते हैं। यही शब्द है। यदि किसी ध्वनि समूह का कोई अर्थ नहीं है तो उसे हम शब्द नहीं कहेंगे।
- अवधारणाः विचार जो इस मन में उठा। ''बिल्ली'' यह ध्वनि कान में पड़ने से हमारे मन में कोई भाव/विचार बनता है–एक चार पैर वाले छोटे आमतौर पर धारीदार जानवर का। यह 'बिल्ली' की हमारी अवधारणा है।
- वस्तुः जो बाहर है–मेज, पेड़, सूरज। कोई एक बिल्ली भी ऐसी ही एक 'वस्तु'। हमारी बिल्ली की अवधारणा ऐसी समस्त बिल्लियों के समूह को इंगित करती है।

  सभी अवधारणांए या विचार ठोस वस्तुओं को इंगित नही करते। कई बार अवधारणांए बिना ठोस वस्तुओं के भी होती है, जैसे कि न्याय, प्रेम, आदि।

अगले पृष्ठ पर एक बॉक्स दिया गया है, बॉक्स–1, उसमें कुछ सरल वाक्य दिए हुए हैं और आपको कुछ इस तरह के और वाक्य जोड़कर इस सूची को आगे बढ़ाना है। इस सूची में कुछ आम–सी बातें लिखी हैं और इन्हें हम सब जान सकते हैं। इस सूची में अधिकतर ''जानता है'', ''जानता हूं'' एवं ''जानता है कि'' आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें कई जगह ''आता है'' शब्द का भी प्रयोग हो सकता है; जैसे : ''बुद्धिप्रकाश तैरना जानता है'' की जगह ''बुद्धिप्रकाश को तैरना आता है''।

इन सभी शब्दों का प्रयोग ''ज्ञान'' के लिए ही किया जाता है। आपसी बातचीत में हम ''जानना'', ''ज्ञात होना'', ''ज्ञान होना'',

बॉक्स–1

नीचे सूची में कुछ वाक्य लिखे हैं, ऐसे ही और वाक्य लिखिए।

1. बुद्धिप्रकाश जानता है कि पदार्थ के तीन रूप होते हैं।
2. बुद्धिप्रकाश तैरना जानता है।
3. बुद्धिप्रकाश ऐश्वर्या राय को जानता है।
4. मैं साईकिल चलाना जानता हूं।
5. वह पढ़ना जानता है।
6. ____________________
7. ____________________
8. ____________________
9. ____________________

''आना'', ''मालूम होना'' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। ये एक–दूसरे से नजदीकी संबंध रखने वाले शब्द हैं। बहुत बार इनका समानार्थी शब्दों के रूप में उपयोग होता है।

बहुत बार 'ज्ञान' शब्द का उपयोग इस तरह से भी किया जाता है कि वह बहुत बड़ी चीज लगने लगे। उसको प्राप्त करना बहुत मुश्किल लगने लगे। उसको समझना भी बहुत मुश्किल लगने लगे।

हम जिस तरह आम जीवन में खाते, पीते और काम करते हैं वैसे ही जानते, समझते, बूझते भी हैं। साथ ही हम एक हद तक 'जानने' पर विचार भी कर सकते हैं। अर्थात् ''जानने अथवा ''ज्ञान'' को आसानी से समझ भी सकते हैं। इसमें घबराने या आतंकित होने जैसी कोई बात नहीं है। सामान्य बुद्धि वाला इंसान इस पर विचार–विमर्श कर सकता है और अपना मत भी बना सकता है।

बॉक्स–2

नीचे के वाक्यों को पढ़ें एवं उनमें कुछ वाक्य और जोड़ें।

1. ज्ञान तो अथाह सागर है। उसकी एक बूंद प्राप्त करने में ही जीवन निकल जाते हैं।
2. महात्मा जी त्रिकाल ज्ञाता हैं।
3. रामप्रकाश को भौतिकशास्त्र का विस्तृत ज्ञान है।
4. ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करना बहुत मुश्किल काम है।
5. आध्यात्म प्रसाद प्रकाण्ड ब्रह्म ज्ञानी है।
6. ——————————————
7. ——————————————
8. ——————————————
9. ——————————————
10. ——————————————

अब बॉक्स–2 के वाक्यों को पढ़िए। क्या आपको दोनों बॉक्स में लिखे इन वाक्यों में कोई फर्क नजर आता है ? हम देख सकते हैं कि बॉक्स–1 में लिखे वाक्यों में ऐसे ज्ञान की बात की जा रही है जो आम आदमी के पास होता है या जिसे वह प्राप्त कर सकता है। वहीं बॉक्स–2 में दिए गए वाक्यों में 'ज्ञान' को ऐसा बताया गया कि न तो यह आम आदमी के पास हो सकता है और न ही वह इसे प्राप्त कर सकता है। इन वाक्यों में ज्ञान को एक मुश्किल चीज की तरह पेश किया गया है और उसका महिमामण्डन किया गया है। साथ ही जानने वालों (ज्ञानियों) का भी महिमामण्डन किया गया है। ऐसा नहीं है कि ज्ञान प्राप्त करने में किसी तरह की मुश्किलें नहीं आतीं या ज्ञान लोगों को इज्जत दिलाने और महिमामण्डन की वस्तु नहीं है। बॉक्स–2 के वाक्यों पर यदि हम ध्यान दें तो पाएंगे कि वाक्य 1 एवं 3 में यह मुश्किल ज्ञान के विस्तार के हवाले से पैदा की गई है। अर्थात् ज्ञान कोई ऐसी चीज है जो बहुत व्यापक है, जिसे प्राप्त करना आसान काम नहीं है और इसे प्राप्त करने में बहुत समय लगता है। यहां तक कि इसमें पूरा जीवन भी लग जाता है। यह सही है कि बहुत सा ज्ञान ऐसा है जिसे प्राप्त करने में आदमी को मेहनत करनी पड़ती है और बहुत समय लगता है। लेकिन हम आम जीवन में भी तो ज्ञान प्राप्त करते हैं। एक किसान को खेती करने का ज्ञान होता है। एक माली को सब्जियां उगाने का ज्ञान होता है। एक कारीगर को मकान बनाने का ज्ञान होता है। एक आम व्यक्ति को अपने आसपास का ज्ञान होता है। क्या यह सब जानना ज्ञान नहीं है ?

इसके विपरीत वाक्य 2, 4 एवं 5 में हम देख सकते हैं कि यह मुश्किल वाक्य की अस्पष्टता से पैदा की गई है। अर्थात् इन वाक्यों में जो कहा जा रहा है, सुनने वाले के मन में उसका स्पष्ट अर्थ नहीं बनता है। इसे दूसरे तरह से कहें तो इन तीनों वाक्यों में जो अवधारणाएं, 'ब्रह्म' और 'त्रिकाल ज्ञाता' प्रयोग में लाई गई हैं, इनको सहज मानवीय ज्ञान के आधार पर समझना आसान नहीं है और इन पर बहुत से सवाल उठाए जा सकते हैं। जबकि बॉक्स–1 के वाक्य अपना स्पष्ट अर्थ रखते हैं और उनके अर्थ पूछे जाने पर जानने वाला या तो वह काम करके दिखा सकता है या स्पष्ट रूप से दूसरे लोगों को समझा सकता है।

यदि हम विश्लेषण करें तो ऐसा भी हो सकता है कि बॉक्स–2 के वाक्यों को भी बॉक्स–1 के वाक्यों की श्रेणी का ही पाएं। अतः हम बॉक्स–1 में लिखे ज्ञान संबंधी वाक्यों से अपनी खोज–खबर और विश्लेषण शुरू करेंगे और देखने की कोशिश करेंगे कि बॉक्स–2 वाले वाक्यों के बारे में हम क्या कह सकते हैं?

कुछ प्रश्न–

- ***क्या कोई व्यक्ति ऐसा हो सकता है जिसके पास किसी भी तरह का ज्ञान न हो? यदि हां तो क्यों और नहीं तो क्यों ?***
- ***शब्द किसे कहते है? ऐसी पॉच अवधारणाओं के उदाहरण लिखिए जो बिना ठोस वस्तु के हो।***

2.3 ज्ञान के प्रकार

बॉक्स–1 में लिखे वाक्यों पर एक बार विचार करें। क्या हम इन सभी वाक्यों को एक जैसा ही देखते हैं या इनको कुछ वर्गों में बांटा जा सकता है? नीचे इनको वर्गों में बांटने का एक प्रयत्न है। इसे समझें और हर वर्ग में कुछ और वाक्य जोड़ें।

बॉक्स–3

वर्ग–1	वर्ग–2	वर्ग–3
1. बुद्धिप्रकाश तैरना जानता है।	1. बुद्धिप्रकाश ऐश्वर्या राय को जानता है।	1. बुद्धिप्रकाश जानता है कि पदार्थ के तीन रूप होते हैं।
2. मैं साईकिल चलाना जानता हूं।	2. मैं जानता हूं कि मुझे सिरदर्द है।	2. मैं जानता हूं 3 + 4 = 7 होते हैं।
3. वह पढ़ना जानता है।	3. वह जानता है कि उसे भूख लगी है।	3. मैं जानता हूं कि कल सोमवार है।
4.	4.	4.
5.	5.	5.

यदि हम बॉक्स–3 के वाक्यों पर थोड़ा विचार करें तो पाएंगे कि वर्ग–1 के वाक्यों में कुछ 'कर सकने की सामर्थ्य' का दावा है। इन वाक्यों में एक कर्ता है जो कुछ करने का सामर्थ्य रखता है। यहां कर्ता हैं– बुद्धिप्रकाश, मैं और वह। इनके द्वारा करने का सामर्थ्य है– तैरना, साईकिल चलाना और पढ़ना। हम देख सकते हैं कि वर्ग–2 के वाक्यों में किसी चीज से सीधे परिचय का होना है। यहां भी कर्ता– बुद्धिप्रकाश, मैं और वह है। और वह कर्ता किसी चीज से सीधा परिचित है– ऐश्वर्या राय, सिरदर्द और भूख। इसी प्रकार वर्ग–3 में कुछ जानने का दावा है। इन वाक्यों में भी कर्ता हैं– बुद्धिप्रकाश और मैं। यह कर्ता कुछ जानता है–''पदार्थ के तीन रूप होते हैं'', ''3+4 = 7 होते हैं'' और ''कल सोमवार है''। इन वर्गों में प्रयुक्त वाक्यों के आधार पर हम ज्ञान के प्रकारों की बात कर सकते हैं। और आप देखेंगे कि ज्ञान के ये प्रकार शिक्षा और शिक्षण की दृष्टि से कैसे महत्वपूर्ण हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***बाक्स–3 में ऐसे पॉच पॉच उदाहरण लिखे जो कि एक पांचवी में पढ़ रहे बच्चे के पास होगा तथा स्कूल न जाने वाले बच्चे के पास नही होगा।***

2.3.1 कौशल या व्यवहारिक ज्ञान (knowledge "how to")

जैसा कि बॉक्स–3 के वर्ग–1 के वाक्यों से इंगित होता है कि हम बहुत कुछ करना जानते हैं अथवा करना जान सकते हैं। चाय बनाना, पकौड़े तलना, कपड़े धोना, लकड़ी काटना, पढ़ना, तर्क करना, सोचना आदि–आदि। इन वाक्यों में कुछ कर सकने की सामर्थ्य को, करना 'जानने' को (करने के तरीके जानने को), ज्ञान के रूप में माना जा रहा है। लेकिन कुछ करने की सामर्थ्य का क्या मतलब है और यह सामर्थ्य आती कैसे है?

इसे एक कहानी के उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं। बच्चों की एक कहानी है, 'मीश्का का दलिया'। मीश्का एक लड़के का नाम है। वह गर्मियों की छुट्टियों में अपने दोस्त के यहां रहने गया। दोस्त की मां को एक दिन शहर जाना था। जाने से पहले मां ने बच्चों से कहा, ''पता नहीं मेरा लौटना कब हो। तुम दोनों ढंग से रह तो लोगे, न?''

मीश्का ने कहा ''क्यों नहीं? हम क्या कोई बच्चे हैं!''

मां ने कहा ''अपना नाश्ता तुम्हें खुद तैयार करना होगा। दलिया पकाना जानते हो?''

''मैं जानता हूं'' मीश्का ने कहा, ''इससे आसान और क्या है!''

मीश्का के दोस्त ने कहा ''मीश्का, ठीक कह रहे हो कि तुम्हें आता है? तुमने दलिया कभी पकाया भी है?''

मीश्का ने कहा ''परवाह मत करो। मैंने देखा है कि अम्मा कैसे पकाती हैं। इसे मुझ पर ही छोड़ दो। मैं तुम्हें भूखा नहीं मारूंगा। मैं ऐसा दलिया पकाऊंगा कि तुमने जिंदगी भर न खाया होगा।''

मां शहर चली गई। मीश्का और उसका दोस्त घर में रह गए। दिन के आखिर में जब दोनों को जोरों की भूख लगी तो दलिया पकाना तय किया। चूल्हा सुलगाया गया। मीश्का दलिया और पतीली ले आया। मीश्का ने पतीली को करीब–करीब मुंह तक दलिये से भर दिया और फिर उसमें ऊपर तक पानी भर दिया। थोड़े समय बाद पानी और दलिया गर्म होकर उबलने लगे। दलिया उबलते हुए पतीली के मुंह से बाहर निकलने लगा। कुछ समय बाद उसका पूरा पानी सूख गया। वे दोनों देखने लगे कि कहीं पतीली में कोई छेद तो नहीं है। पतीली में कहीं छेद नहीं पाकर उन्होंने उसमें और पानी डालने का निर्णय लिया। दलिया पकता रहा और मीश्का बीच–बीच में पानी डालता रहा। अन्त तक, दलिया पकाना दोनों के लिए एक अनसुलझी पहेली बना रहा और नतीजा ये कि, खाने के वक्त दोनों के सामने अधपका दलिया था। (यह कहानी 'मीश्का का दलिया' रूसी कथाकार निकोलाई नोसोब की है और हिन्दी में यह 'भारत ज्ञान विज्ञान समिति' से प्रकाशित हुई है।)

कुछ प्रश्न–

- ***क्या हम कह सकते हैं कि मीश्का दलिया बनाना जानता था? यदि यह आपको कहानी भर लगती है तो थोड़ा याद करके देखो, जब आपने पहली बार रोटी बनाने के लिए आटा गूंथा तो क्या हुआ था या जब पहली बार साईकिल चलाई तो क्या हुआ था?***

मीश्का ने कहा था कि, ''उसने अपनी अम्मा को दलिया पकाते देखा है।'' इस तरह देखने भर से क्या कोई काम करने की सामर्थ्य आ जाती है ? हम कह सकते हैं कि किसी भी काम को करना आने का मतलब उसे ठीक तरह से कर पाने से होता है। किसी काम को कर पाने की सामर्थ्य को इस तरह देखकर नहीं सीखा जा सकता। देखकर सिर्फ यह जरूर पता लगाया जा सकता है कि किस तरह वह काम हो रहा है। लेकिन अन्ततः किसी काम को कर पाने की सामर्थ्य, उस काम को करने से ही आती है। यदि आपको दलिया बनाना है तो उसे बनाकर देखना ही होगा या साईकिल चलाना सीखना है तो साईकिल लेकर चलानी ही पड़ेगी। किसी दूसरे को साईकिल चलाते हुए देखकर हम साईकिल चलाना नहीं सीख सकते। जब हम किसी काम को करना सीख रहे होते हैं तो अनेक बार इसे करने में चूक भी हो सकती है।

एक अन्य उदाहरण से समझें, यदि हम एक बढ़ई को रोज आरी से लकड़ी काटते या बसूले से लकड़ी छीलते देखें तो क्या हमें ये दोनों काम करने आ जाएंगे ? यदि इस सवाल को दूसरे शब्दों में पूछें तो, कौशलात्मक या व्यवहारिक कामों को सीखने के लिए क्या जरूरी है ? यही कहा जा सकता है कि कौशलात्मक कार्य करने से ही आते हैं और इन्हें सीखने के लिए यह जरूरी है कि व्यक्ति स्वयं इन्हें करके सीखें। यदि कोई दूसरा व्यक्ति कुछ कर रहा है और हम उसे देख रहे हैं, इतने भर से इन कामों को करना नहीं सीखा जा सकता।

दूसरी तरफ कौशलात्मक या व्यवहारिक ज्ञान की यह भी खासियत है कि यदि एक बार उन्हें करना सीख लिया जाए तो फिर उन्हें भुलाया नहीं जा सकता। मान लीजिए, मैंने 8 वर्ष की उम्र में साईकिल चलाना सीखा। फिर लम्बे समय तक चलाने को साईकिल नहीं मिली। मैं 25 वर्ष की उम्र में यह नहीं कह सकता कि मुझे साईकिल चलाना नहीं आता। यह सही है कि यदि हम किसी काम को एक समय में करना सीख लेते हैं और फिर उसे लगातार करते रहते हैं तो उस काम को करने की सामर्थ्य में बेहतरी जरूर होती रहती है। हो सकता है कि लगातार करते रहने से उस काम में लगने वाले अपने समय और श्रम बचा पाउं। लेकिन यह बेहतरी भी करने से ही आएगी। अतः यह कहा जा सकता है कि किसी काम को कर पाने की सामर्थ्य का मतलब उस काम को कर पाना है। यदि हम कर पाते हैं तो कहेंगे कि हम इस काम को करना जानते हैं। अन्यथा कहा जाएगा कि हम में उस काम को कर पाने की सामर्थ्य नहीं है।

कौशल या व्यवहारिक ज्ञान से जुड़े कामों की एक और विशेषता है। इन कामों को कर पाने की सामर्थ्य को अच्छा या खराब अथवा बेहतर या बदतर तो जरूर कहा जा सकता है लेकिन इन्हें सत्य अथवा असत्य नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए, मैं कहूं कि, ''राधा को लकड़ी से टेबिल बनाना आता है।'' मैं राधा के द्वारा बनाई लकड़ी की टेबिल देख सकता हूं और यह पता लगा सकता हूं कि उसे वास्तव में टेबिल बनाना आता है या नहीं। साथ ही मैं यह भी देख सकता हूं कि उसने टेबिल को कितनी नफासत से बनाया है। यदि साफ–सुथरी और करीने से बनाई है तो मैं कहूंगा कि राधा को अच्छे से टेबिल बनाना आता है। और यदि टेबिल में नफासत नहीं है, जहां–तहां लकड़ी कटाई आड़ी–टेढ़ी है और फेबिकोल भी इधर–उधर चिपका हुआ है तो मैं कहूंगा कि अभी राधा को टेबिल बनाना अच्छे से नहीं आता। मैं यह नहीं कह सकता कि, ''राधा को लकड़ी से सत्य टेबिल बनाना आता है या राधा को लकड़ी से असत्य टेबिल बनाना आता है।'' अर्थात् सामर्थ्य में अच्छे या खराब अथवा बेहतर या बदतर का मामला हो सकता है लेकिन सत्य–असत्य का नहीं होता।

हम जिन काम/क्रियाओं को कर सकते हैं उनको भी कुछ वर्गों में बांट सकते हैं। जैसे–

• हाथ उठाना, भागना (दौडना), कूदना, नाचना, गाना, खाना आदि। मूलतः ये सभी शरीर की क्रियाएं हैं। इनमें हम या तो शरीर के अंगों का संचालन करते हैं या फिर शरीर को गति देते हैं।

• कुछ दूसरे काम ढोल बजाना, साईकिल चलाना, पत्थर फेंकना, बैटिंग करना आदि में हम शरीर की क्रियाएं (शरीर के अंगों का संचालन) करते हैं और किसी वस्तु या उपकरण को भी काम में लेते हैं।

• हम कुछ काम मिट्टी से मटका बनाना, लकड़ी की मेज बनाना, क्रेन से भारी वस्तु उठाना जैसे भी करते

हैं। इनमें भी हम शरीर की क्रिया करते हैं और उपकरण भी काम में लेते हैं एवं किसी पदार्थ (मिट्टी, लकड़ी) का रूप या स्थान भी बदलते हैं।

इन सब (अगल–अलग तरह के काम/क्रियाओं को कर सकने) को कौशल या दक्षताएं भी कहते हैं। इनको ज्ञान का रूप भी माना जाता है। **यह ज्ञान किसी चीज के बारे में शब्दों में अभिव्यक्त ज्ञान नहीं है।** दूसरे शब्दों में इसे इस प्रकार कहा जा सकता है, इन कामों को सिर्फ शब्दों में अभिव्यक्त करने से काम को कर सकने या नही कर सकने को नहीं जाना जा सकता। इसे एक उदाहरण से समझते हैं– मान लीजिए, कोई व्यक्ति आरी से लकड़ी काटने का शब्दों में वर्णन करने लगे कि, ''एक आरी लो। उस आरी को लकड़ी के ऊपर रखो और फिर आरी के हत्थे पर जोर लगाते हुए, आरी को आगे–पीछे खींचो।'' हो सकता है, वर्णन करने वाला इससे भी सूक्ष्म तरीके से लकड़ी काटने की प्रक्रिया का वर्णन करे। लेकिन क्या इस वर्णन को सुनकर सीखने वाले व्यक्ति को लकड़ी काटना आ जाएगा? संभवतः आप कहेंगे कि कम से कम ऐसे तो नहीं ही आएगा। इसलिए हम कह सकते हैं कि कौशल या दक्षताओं को यदि कोई व्यक्ति सीखना चाहता है तो शब्दों में किया हुआ वर्णन उसका मददगार तो हो सकता है, पर अकेले इस वर्णन से वह काम नहीं सीख सकता।

कौशलात्मक ज्ञान में हमें किसी तथ्य का ज्ञान नहीं होता है। तथ्य के ज्ञान का मतलब है, कौशल या दक्षता में इस तरह का ज्ञान भाषा में अभिव्यक्त करते हुए इस प्रकार कहा जा सके कि, ''यह पत्ती है'' या ''आज आसमान में बादल छाये हैं'' आदि–आदि। तथ्यों के ज्ञान को हम सत्य या असत्य कह सकते हैं। यदि जिस पत्ती के बारे में कहा जा रहा है, ''यह पत्ती है'', वास्तव में यह 'पत्ती' है, कुछ और नहीं है, तो हम कहेंगे कि यह ज्ञान सत्य है और यदि यह पत्ती न होकर तिनका या कंकड़ है तो हम कहेंगे कि यह ज्ञान असत्य है। अन्ततः कहा जा सकता है कि कौशल या दक्षताओं अथवा व्यवहारिक ज्ञान कुछ कर सकने की सामर्थ्य के बारे में बताता है और ज्ञान के इस रूप को व्यावहारिक ज्ञान, कौशल या दक्षता कहा जा सकता है। इनके बारे में सत्य–असत्य की बात नहीं की जा सकती। इन्हें अच्छा–बुरा, बेहतर या बदतर कहा जा सकता है।

लेकिन कौशल के ज्ञान के साथ एक अन्य चीज भी जुड़ी है जिसके बारे में यहां विचार करना उचित होगा। बहुत से कौशल ऐसे हैं जिनमें कुछ करने की सामर्थ्य के अलावा, उनका सैद्धान्तिक पक्ष भी जुड़ा होता है। इसका एक उदाहरण, दलिया बनाने अथवा भोजन पकाने का लिया जा सकता है। आपने देखा होगा आजकल बहुत सी पुस्तकें भोजन पकाने की विधियों पर बाजार में उपलब्ध हैं। बहुत से लोग भोजन स्वादिष्ट कैसे पकाएं या एक ही चीज को अलग–अलग जायके का कैसे बनाया जाए, इसका शास्त्र गढ़ने में लगे हुए हैं। संभव है इस तरह की पुस्तकों में किस देश में कौनसा खाना, कैसे पकाया जाता है या विभिन्न देशों या समाजों में दलिया कैसे पकाया जाता है, इसके वर्णन भी हों। यानी इन पुस्तकों में भोजन पकाने के तरीके और उससे जुड़ी तमाम जानकारियां हों। यह भी संभव है कि कुछ लोग इन्हें खरीदकर और पढ़कर स्वादिष्ट खाना पकाना सीखते भी हों। लेकिन किसी भोजन के बारे में कितना ही उम्दा वर्णन पढ़ लें, अन्ततः उन्हें उस भोजन को स्वयं पकाकर ही तैयार करना होगा। यानी कि स्वयं के द्वारा पका सकने की सामर्थ्य इसमें भी जरूरी है।

कुछ प्रश्न–

- ***आप ऐसे कुछ उदाहरणों के बारे में सोचे जिससे यह पता चले कि आप किसी कार्य को पहले से करना जानते थे तथा उस कार्य के बारे में जानकारी/वर्णन/सिद्धान्त का ज्ञान कार्य को और अच्छे से करने में सहायता मिली।***

(उदाहरण के लिए मै अपने कपड़े ठंडे पानी में धोता था। मुझे बहुत मेहनत करनी पड़ती थी और समय भी बहुत लगता था। फिर मेरे साथी ने बताया कि गर्म पानी से कपडे जल्दी व कम समय में अच्छे से साफ हो जाते है। अब में गर्म पानी से कपडे असानी से धोने लगा।)

- ***आपके अनुसार कौशलात्मक ज्ञान की कौन–कौन सी विशेषताएं हैं? लिखिए।***

इसी तरह हम 'गा पाने की सामर्थ्य' या संगीत के क्षेत्र में भी यह भेद देख सकते हैं। हम सभी जानते हैं कि संगीत के बारे में बहुत सी किताबें उपलब्ध हैं। इन किताबों में संगीत के उद्‌भव, विकास, अलग–अलग रागों का वर्णन, किस व्यक्ति ने किस राग को बनाया और रागों में सुरों का संयोजन कैसे होता है, संगीत के विभिन्न घराने और उनका संगीत की दुनिया में योगदान, आदि विषयों की जानकारी हो सकती हैं। चाहे इन पुस्तकों में बड़ी सूक्ष्मता के साथ यह लिखा हो कि किसी राग को कैसे गाना चाहिए, कब किस सुर को लगाना चाहिए आदि। यह संभव है कि बहुत से लोग इसके प्रकांड विद्वान हों। उन्हें संगीत का समग्र इतिहास भी पता हो और वे संगीत सुनकर आपको बता भी दें कि कौनसा राग गाया जा रहा है और कितनी कुशलता से गाया जा रहा है। लेकिन यह भी संभव है कि यदि इन विद्वानों से कुछ गाने के लिए कहा जाए तो ये अपने हाथ खड़े कर दें और यदि गाने लगें तो सुनने वाला तंग आकर वहां से भागने की सोचनें लगें। अर्थात् यह संभव है कि इस तरह के ज्ञान के होने के साथ 'गा पाने का कौशल' इन विद्वानों के पास नहीं हो। इस उदाहरण से हम समझ सकते हैं कि गा पाने का कौशल और इस विषय का शास्त्र सम्मत ज्ञान, दोनों अलग–अलग हैं।

दूसरी तरफ, संगीत के उदाहरण में, यह संभव है कि अनेक व्यक्ति बहुत अच्छा गाते हों और उन्हें संगीत के इतिहास, रागों के विकास आदि के बारे में नहीं पता हो या जिन विद्वानों की हमने ऊपर बात की है, उनकी तुलना में बहुत कम पता हो। लेकिन इसके बावजूद वे गाने में उस्ताद हों। गाते वक्त वे श्रोताओं को मंत्रमुग कर दें। इसी तरह हम देख सकते हैं कि खाना पकाने के शास्त्र के बारे में किसी को कोई जानकारी नहीं हो और इसके बावजूद वह अच्छा खाना पकाने में माहिर हो। हमारे घरों में, हमारी मां, बहिन और पिता इसके उदाहरण हो सकते हैं। यदि इनसे पूछा जाए, क्या आप पाककला शास्त्र के बारे में जानते हैं, तो वे आपका मुंह ताकने लगेंगे।

इसमें तीसरी संभावना यह भी है कि कोई व्यक्ति संगीत के कौशल यानी गा पाने के सामर्थ्य में भी कुशल हो और वह संगीत के इतिहास, विकास एवं रागों आदि के बारे में भी गहराई से जानता हो। लेकिन हमारी इस चर्चा में ध्यान देने की बात यह है कि किसी सामर्थ्य के बारे में विकसित शास्त्र का ज्ञान होना अलग बात है और उस सामर्थ्य पर महारत हासिल होना अलग बात है। यदि गा पाने के सामर्थ्य के बारे में चर्चा करें तो उस व्यक्ति को कुशलता के साथ गाना आना चाहिए। और दूसरी बात यह है कि यह सामर्थ्य किन्हीं ग्रंथों के अध्ययन से हासिल नहीं की जा सकती। गा पाने के लिए व्यक्ति को स्वयं अभ्यास करना होगा और वास्तव में उसे अपने गले से सुरों को निकालना सीखना ही होगा। इसी तरह दलिया पकाने के बारे में भी यह सही है कि दलिया पकाना जानने के लिए भी स्वयं को दलिया पकाना ही होगा। सिर्फ पाक शास्त्र की पुस्तक को पढ़कर दलिया बनाना नहीं सीखा जा सकता। कुछ लोगों को इस उदाहरण में समस्या लग सकती है। वे कह सकते हैं कि पुस्तक को पढ़कर भी दलिया बनाना सीखा जा सकता है। यहां यह नहीं कहा जा रहा कि पुस्तक पढ़ने से दलिया बनाना सीखने में मदद नहीं मिलती, बल्कि यह कहा जा रहा है कि दलिया बनाने के लिए स्वयं व्यक्ति को पकाने की सामर्थ्य विकसित करनी होगी, केवल पुस्तक पढ़ने से दलिया बनाना नहीं आ सकता। उसको दलिया बनाना होगा। इसके लिए उसे शारीरिक क्रिया करनी होगी और बिना शारीरिक क्रिया करे, दलिया नहीं बनाया जा सकता। लेकिन साथ ही दूसरी तरफ यह आमतौर पर देखा जा सकता है कि किसी व्यक्ति ने किताब में एक शब्द भी नहीं पढ़ा हो कि दलिया कैसे बनाया जाता है, इसके बावजूद वह बहुत स्वादिष्ट दलिया बना सकता है। अतः पुस्तकीय ज्ञान के बिना दलिया बनाने को एक सामर्थ्य मानना होगा। अर्थात् पुस्तकीय ज्ञान से स्वंस्त्र एक कौशल मानना होगा।

मीश्का ने भी अपनी अम्मा को दलिया पकाते देखा और उसे लगा कि यह तो बहुत ही आसान काम है। इससे आसान और क्या हो सकता है, लेकिन जैसे ही वह दलिया पकाने लगा तो उसे पता चला कि, नहीं, यह देखकर सीखा जाने वाला काम तो नहीं है। कौशल के ज्ञान में हम किसी कार्य के बारे में क्या जानते हैं, इससे

ज्यादा यह जानना होता है कि उसे किया कैसे जाता है। किसी काम के बारे में यह जानना कि वह 'क्या' है और यह जानना कि वह 'कैसे' किया जाता है, ये दोनों चीजें कौशलात्मक ज्ञान में अलग–अलग होती हैं।

किसी चीज के बारे में यह जानना कि वह क्या है और यह जानना कि वह कैसे किया जाता है, इनमें एक रिश्ता भी है। दोनों के इस रिश्ते पर हम आगे विस्तार से चर्चा करेंगे। इनके रिश्ते पर आने से पहले हम ज्ञान एक अन्य प्रकार 'परिचयात्मक ज्ञान' पर चर्चा करेंगे कि यह क्या होता है और हम इसे प्राप्त कैसे करते हैं ?

कुछ प्रश्न–

- ***कौशलात्मक ज्ञान प्राप्त करने का सबसे बेहतर तरीका आप किसे मानते हैं और क्यों?***
  1. ***बार बार कर के देखना (practice)***
  2. ***देख कर सीखना (copy)***
  3. ***दिए गए निर्देशों के अनुसार कार्य करना (follow instructions)***

2.3.2 परिचयात्मक ज्ञान

ऊपर बने तीसरे बॉक्स के वर्ग 2 के वाक्यों को देखिए। ''बुद्धिप्रकाश ऐश्वर्या राय को जानता है।'' ''मैं जानता हूं कि मुझे सिरदर्द है'', ''वह जानता है कि उसे भूख लगी है''। इसमें इसी तरह के कुछ और वाक्य भी जोड़ सकते है : मैं जानता हूं कि जिस चीज पर बैठकर अभी मैं लिख रहा हूं, यह टेबिल है'', ''राधा जॉन अब्राहम को जानती है'', ''राम रायपुर को अच्छी तरह जानता है'' अथवा ''मैं जानता हूं कि इस समय, मैं सिरदर्द के बारे में सोच रहा हूं'' अथवा ''मैं सोच रहा हूं कि मैं किन–किन चीजों के बारे में जानता हूं''। इन सब वाक्यों में सामान्य बात यह है कि जो जानता है–बुद्धिप्रकाश, मैं एवं राधा, आदि–अर्थात् जानने वाला, किसी चीज के बारे में जानते हैं और जिस चीज को जानते हैं उससे उनका सीधा परिचय है। लेकिन क्या इन सभी चीजों के बारे में जानना, एक ही तरह से हो रहा है? यह कहा गया है कि इस प्रकार जानने में जानने वाले का उस चीज से सीधा परिचय हो रहा है, जिसे वह जानता है। लेकिन ''बुद्धिप्रकाश ऐश्वर्या राय को जानता है'' और ''मैं जानता हूं कि मुझे सिरदर्द हो रहा है'', क्या ये दोनों तरह का जानना एक ही समान है ? इसे विस्तार से समझने की जरूरत है।

किसी व्यक्ति को जानने का मतलब है उस व्यक्ति से मिले होना, उसे पहचानना। यदि हम किसी व्यक्ति से नहीं मिले हैं तो क्या हम यह कह पाएंगे कि, हम उस व्यक्ति को जानते हैं? आप कहेंगे कि यह मुमकिन नहीं है। लेकिन यह बात जितनी सरल दिख रही है, उतनी सरल है नहीं। हम अनेक बार यह कहते हैं कि, ''हां, हम मनमोहन सिंह को जानते हैं''। हालांकि हम जानते हैं कि हम कभी उससे नहीं मिले हैं। यदि हमें कोई एक फोटो दिखाए और पूछे, ''बताओ ये कौन है ?'' हम कहें, ''ये तो मनमोहन सिंह हैं।'' फिर यह जानना किस तरह का हुआ? इस बात को समझने के लिए यह जानना जरूरी होगा कि परिचयात्मक ज्ञान हमें होता कैसे है? और किन किन चीजों का हो सकता है?

यह माना जाता है कि किसी ज्ञान के परिचयात्मक ज्ञान होने के लिए उस व्यक्ति अथवा वस्तु से, जिसके बारे में कहा जा रहा है, जानने वाले का सीधा परिचय होना चाहिए। लेकिन फिर भी यह सवाल तो हमारे सामने है ही कि किसी व्यक्ति या वस्तु से यह सीधा परिचय होता कैसे है?

सीधा परिचय प्राप्त करने के कुछ तरीकेः–

2.3.2.1 इन्द्रिय अनुभव

व्यक्तिओं अथवा वस्तुओं से एक प्रकार का सीधा परिचय हमें इन्द्रिय अनुभव से होता है। मान लीजिए, मैं कहूं, ''मैं जानता हूं कि जिस चीज पर बैठकर अभी मैं लिख रहा हूं, यह टेबिल है।'' यहां टेबिल से मेरा परिचय सीधा हो रहा है। अर्थात् टेबिल मुझे साक्षात् दिख रही है। मेरी पांचों ज्ञानेन्द्रियां इसके बारे में मुझे अलग–अलग अनुभव दे रही हैं। मेरी ऑख से मैं इसके आकार और रंग को जान पा रहा हूं। मेरे स्पर्श से मैं इसके चिकने और कठोर होने को जान रहा हूं। कानों से इसे बजाने पर होने वाली आवाज को सुन पा रहा हूं। इसी तरह इसकी गंध को भी जान सकता हूं। इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले इन सभी अनुभवों के माध्यम से ही मैं इस टेबिल को जान पा रहा हूं। मान लीजिए, किसी व्यक्ति के पांचों ज्ञानेन्द्रियां नहीं हों तो क्या वह इस टेबिल को जान पाएगा? इसी तरह का उदाहरण हम, ''राधा जॉन अब्राहम को जानती है'' के बारे में भी ले सकते हैं, इसका मतलब है कि वह उससे कभी मिली है, उससे हाथ मिलाया है या बात की है। यदि किसी व्यक्ति या वस्तु से इस प्रकार का साक्षात् नहीं हुआ है तो उसे कम से कम परिचयात्मक ज्ञान तो नहीं कहा जाएगा। इसी प्रकार से जब हमें कोई फोटो दिखाकर पूछता है कि, ''बताओ ये कौन है?'' जवाब में हम कहतें है कि ''ये तो मनमोहन सिंह हैं।'' इस प्रकार के जानने/पहचानने में व्यक्ति या वस्तु से सीधा परिचय तो नही हुआ बल्कि फोटो के माध्यम से हुआ। तो बताओ कि क्या इस प्रकार के जानने/पहचानने को परिचयात्मक ज्ञान कहेंगे या नही?

2.3.2.2 स्वयं के महसूस करने/अनुभव (बिना इंद्रिय अनुभव) द्वारा प्राप्त ज्ञान

हमने ऊपर कहा कि किसी व्यक्ति या वस्तु से साक्षात् होना ही परिचयात्मक ज्ञान है। इसका एक उदाहरण हमने इन्द्रिय अनुभव के माध्यम से होने वाले साक्षात् परिचय से लिया है। वस्तु से ऐसा परिचय जो सीधे और बिना किसी माध्यम के हो रहा है। लेकिन बहुत सी और चीजें भी हैं जिनका हमें साक्षात् ज्ञान होता है। मान लीजिए, अभी मुझे सिरदर्द हो रहा है। यह सिरदर्द भी मुझे सीधा ही महसूस होता है। इसमें तो किसी प्रकार का इन्द्रिय अनुभव नहीं है, बिना किसी अन्य माध्यम के भी हो रहा है। इसी प्रकार मेरे मन को अनेक बार महसूस होने वाली खुशी या किसी चीज को लेकर होने वाला दुख या अन्य भावनाएं भी मुझे सीधे महसूस होती हैं। उन्हें जानने के लिए मुझे किसी और तरह के ज्ञान अथवा माध्यम की जरूरत नहीं होती। तो क्या यह भी परिचयात्मक ज्ञान है? यदि हम साक्षात् होने और किसी अन्य माध्यम के बिना होने को परिचयात्मक ज्ञान का आधार मानते हैं तो यह परिचयात्मक ज्ञान ही है। शहर को जानने का भी एक अर्थ यह होगा की जानने वाला उसकी गलियों में घूमा है, उसके स्थानों, भवनों और सड़कों को पहचानता है। इसे परिचयात्मक ज्ञान कह सकते हैं, क्योंकि इसमें जिसे हम जानते हैं, उससे जानने वाले का सीधा परिचय है।

2.3.2.3 स्मृति द्वारा प्राप्त ज्ञान

यदि अभी तक की चर्चा से हम यह मानें कि साक्षात् होने वाला ज्ञान परिचयात्मक ज्ञान है तो इस तरह का साक्षात् तो हमें अपनी स्मृतियों के बारे में भी होता है। हम अनेक बार अपने अतीत की घटनाओं को भी साक्षात् महसूस करते हैं। उदाहरण के लिए, ''जब मैं 6 साल का था तब मैं घर वालों को बिना खबर लगे, अकेले नदी में तैरना सीखने चला गया। जब मेरे पिता को यह पता चला तो उन्होंने मुझे इस आशंका के चलते बहुत डांटा कि कहीं मैं डूबकर मर नहीं जाऊं। इसके बाद उन्होंने मुझे स्वयं अपने साथ ले जाकर तैरना सिखाया।'' इस घटना का मुझे स्मरण होता है, तो क्या यह भी परिचयात्मक ज्ञान है?

इस प्रकार से होने वाले ज्ञान के बारे में यह माना जाता है कि यह भी परिचयात्मक ज्ञान है। क्योंकि यह ज्ञान भी सीधे जानने वाले को हो रहा है और इस ज्ञान के होने के लिए किसी और माध्यम की जरूरत नहीं है। यह भी साक्षात् होने वाला ज्ञान है। अतः इसे भी परिचयात्मक ज्ञान की श्रेणी में माना जाता है।

2.3.2.4 आत्मसजगता द्वारा प्राप्त ज्ञान

एक अन्य सवाल इस संदर्भ में उठता है, हम सिर्फ वस्तुओं अथवा व्यक्तिओं के बारे में ही साक्षात् नहीं जान रहे होते हैं बल्कि अनेक बार हम अपने 'जानने' के बारे में भी साक्षात् जान रहे होते हैं। उदाहरण के लिए, ''मैं जानता हूं कि मैं चन्द्रमा को देख रहा हूं।'' यह थोड़ा जटिल उदाहरण है और इसमें दो बातें हैं। एक, मैं चन्द्रमा को इन्द्रिय अनुभव के जरिए जान रहा हूं और चन्द्रमा के बारे में मेरी इन्द्रियों से अनेक तरह के संवेदन प्राप्त हो रहे हैं, जैसे कि—चन्द्रमा का रंग सफेद है, चन्द्रमा गोल है और चन्द्रमा पर धब्बे हैं, आदि। दूसरे, जब मैं चन्द्रमा को देख रहा हूं तो मैं इस देखने की क्रिया के बारे में भी सचेत हूं। मैं सचेत हूं कि, ''मैं चन्द्रमा को देख रहा हूं।'' अर्थात् चन्द्रमा को देखते हुए मैं इस 'देखने' के बारे में भी जान रहा होता हूं। इसी प्रकार अनेक बार हम कहते हैं कि, ''मुझे भूख लग रही है।'' मैं यहां एक तरफ भूख को सीधे महसूस कर रहा हूं लेकिन साथ ही मैं इस बात के बारे में सचेत होता हूं कि, ''मुझे भूख लगी है।'' इसी प्रकार अनेक बार हम कहते हैं कि, ''मैं सोच रहा हूं......''। निश्चित ही इस सोचने में मैं किसी विषय पर सोच रहा हूं लेकिन मैं इस सोचने के बारे में भी सजग होता हूं और इस सजगता को जान रहा होता हूं। इस तरह की सजगता में हम अपनी मानसिक दुनिया के बारे में सचेत होते हैं। जिसे हम यहां आत्म सजगता का ज्ञान भी कह सकते हैं। इस तरह होने वाले ज्ञान को भी परिचयात्मक ज्ञान माना जाता है क्योंकि यह ज्ञान भी मुझे सीधे, बिना किसी अन्य माध्यम के साक्षात् हो रहा होता है।

कुछ प्रश्न—

- ***परिचयात्मक ज्ञान के ऐसे चार उदाहरण लिखिए जिसे आपने बच्चों के साथ कार्य के दौरान उपयोग किया हो।***
- ***परिचयात्मक ज्ञान प्राप्त करने के क्या विभिन्न प्रकार बताए गए हैं?***
- ***इंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान व स्मृति द्वारा प्राप्त ज्ञान में किस तरह अन्तर किया गया है?***

'को जानने' और 'के बारे में जाननें' में फर्क

अभी तक की चर्चा में ध्यान देने की बात यह है कि किसी 'चीज को जानने' और किसी 'चीज के बारे में जानने में' एक फर्क है। किसी 'चीज को जानने' के लिए उस चीज के साथ हमारा इन्द्रिय अनुभव या उस चीज का साक्षात् होना जरूरी होता है। लेकिन किसी 'चीज के बारे में जानने' में उस चीज के साक्षात् होने की जरूरत नहीं होती। इसे एक उदाहरण से समझते हैं, ''राधा जॉन अब्राहम को जानती है।'' इस वाक्य में यह निहित है कि राधा जॉन अब्राहम से मिली है। लेकिन दूसरी तरफ ऐसा हो सकता है, ''मोहन जॉन अब्राहम के बारे में जानता है'' अर्थात् मोहन कभी जॉन अब्राहम से मिला तो नहीं है लेकिन अखबारों में, पत्रिकाओं में पढ़कर और टीवी में देखकर उसके बारे में जानता है। यह संभव है कि मोहन जॉन अब्राहम के बारे में राधा से ज्यादा जानता हो कि वह किस तरह फिल्मी दुनिया में आया, उसने कितनी पढ़ाई और कहां से की है, वह जन्मा कहां है, उसके माता—पिता क्या करते हैं, कितने भाई—बहिन हैं और उसकी कौनसी फिल्में हिट रही हैं और कौनसी पिट गई हैं। अतः ''जॉन अब्राहम को जानने में'' और ''जॉन अब्राहम के बारे में जानने में'' फर्क है। जॉन अब्राहम 'के जानने' को परिचयात्मक ज्ञान कहा जाएगा लेकिन जॉन अब्राहम 'के बारे में' जानने को परिचयात्मक ज्ञान नहीं कहा जाएगा। अब सवाल उठता है कि, हमारा बहुत सा ज्ञान तो ऐसी चीजों के बारे में होता है जिन चीजों का हमें परिचय या साक्षात् नहीं हुआ होता। लेकिन फिर भी हम कहते हैं कि हम उस चीज के बारे में जानते हैं। मनमोहन सिंह को जानने का उदाहरण इसी तरह का है। इसे दूसरे उदाहरण से समझते हैं, कोई व्यक्ति कभी अमेरिका नहीं गया लेकिन वह अमेरिका के बारे में बहुत सी बातें जानता है या कोई व्यक्ति हिमालय पर्वत पर कभी नहीं गया हो लेकिन फिर भी वह हिमालय के बारे में जानता हो। फिर इस तरह के जानने क्या कहेंगे ?

इसी से जुड़े कुछ और सवाल हैं, यदि हम अपने परिचयात्मक ज्ञान को किसी व्यक्ति को लिखकर या सुनाकर बताएं तो क्या यह उस जानने वाले व्यक्ति का परिचयात्मक ज्ञान नहीं होगा ? दूसरे शब्दों में, किसी अन्य व्यक्ति से सुनकर या कहीं पढ़कर हमें जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसे किस प्रकार का ज्ञान माना जाएगा ? इस बारे में हम तथ्यात्मक ज्ञान पर चर्चा करते हुए जानेंगे।

कुछ प्रश्न–

• ***''मै सचिन तेंडुलकर को जानता हूं '' और ''मैं सचिन तेंडुलकर के बारे में जानता हूं।'' इन दो कथनों में क्या अंतर है?***

• ***"मीश्का का दलिया" कहानी के आधार पर कौशलात्मक और तथ्यात्मक ज्ञान मे अंतर बताएँ।***

2.3.3 तथ्यात्मक ज्ञान (वर्णनात्मक ज्ञान)

तथ्यात्मक ज्ञान पर चर्चा करने से पहले यह समझने की जरूरत है कि किसी भी इंसान के पास सिर्फ कौशल / दक्षताएं / व्यवहारिक ज्ञान एवं परिचयात्मक ज्ञान ही तो नहीं होता। हम सभी कौशल / दक्षताओं / व्यवहारिक ज्ञान एवं परिचयात्मक ज्ञान के अलावा और बहुत सी बातें जानते हैं। हम जानते हैं कि, ''पश्चिमी राजस्थान में बहुत तेज गर्मी पड़ती है'', ''हिमालय पर सदा बर्फ जमी रहती है'', ''पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है'' और हम जानते हैं कि, ''महात्मा गांधी दक्षिण अफ्रीका गए थे'', आदि–आदि। क्या ऊपर कहे वाक्यों को कौशलात्मक या परिचयात्मक ज्ञान की श्रेणी में रखा जा सकता है? अभी तक की चर्चा के आधार पर कहा जा सकता है कि इन वाक्यों को इन दोनों ही श्रेणियों में नहीं रखा जा सकता। कम से कम मैं यह कह सकता हूं कि मेरे लिए यह ज्ञान परिचयात्मक ज्ञान और कौशलात्मक ज्ञान की श्रेणी में नहीं आता। संभव है कोई दक्षिण अफ्रीका या हिमालय पर गया हो और उसे इन चीजों का परिचयात्मक ज्ञान हुआ हो। लेकिन इन विषयों के बारे में हम सभी जानते हैं और यदि कोई व्यक्ति इनके बारे में चर्चा करता है तो हम कहते हैं, ''हां, यह सत्य है।'' यदि यह परिचयात्मक ज्ञान की श्रेणी में नहीं आता तो फिर यह ज्ञान है किस प्रकार का?

इस चर्चा पर आने से पहले एक बार हम बॉक्स–3 में लिखे वर्ग 3 के वाक्यों को समझने का प्रयास करते हैंः ''बुद्धिप्रकाश जानता है कि पदार्थ के तीन रूप होते हैं।'' ''मैं जानता हूं 3 + 4 = 7 होते हैं'', ''मैं जानता हूं कल सोमवार है''। इन सब वाक्यों में एक ज्ञाता हैः बुद्धिप्रकाश, मैं और वह। ज्ञाता कुछ जानता है कि ''पदार्थ के तीन रूप होते हैं'', ''3 + 4 = 7'', ''कल सोमवार है''। ज्ञाता जो जानता है वह कोई तथ्य है : जैसे ''पदार्थ के तीन रूप होते हैं'', यहां पदार्थ के बारे में यह तथ्य है कि उसके तीन ही रूप होते हैं। इसका भाषा के माध्यम से वर्णन है और यह तथ्य किसी दावे के रूप में रखा जाता है। इस तरह के ज्ञान को हिन्दी में ''विवरणात्मक ज्ञान'' कहने का भी रिवाज है। अंग्रेजी में इसे "knowledge that...." और "factual knowledge" भी कहते हैं।'' बहुधा "propositional knowledge" कहते हैं।

> Proposition knowledge को अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे knowledge that, factual knowledge, ''विवरणात्मक ज्ञान''। "Proposition" का अर्थ होता है वाक्य में किया गया दावा।

"Proposition" का अर्थ होता है वाक्य में किया गया दावा। हम जानते हैं कि हमारे द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले सभी वाक्यों में किसी चीज के सत्य या असत्य होने का दावा नहीं होता है। उदाहरण के लिए, जब हम किसी से कहते हैं, ''यहां आओ'', ''बात मत करो'', ''मेहरबानी करके वह पानी की बोतल मुझे दे दो'' आदि। इन वाक्यों में या तो किसी व्यक्ति को आदेश दिया जा रहा है या किसी से निवेदन किया जा रहा है। किसी चीज के सच या झूठ होने का दावा इसमें नहीं किया गया है। इन वाक्यों में कोई "Propositions" नहीं है। ऐसे वाक्य हम अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में प्रयोग करते हैं जिनमें कोई proposition न होः ''किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए'', ''दूसरों को दुःख नहीं

देना चाहिए''। इन वाक्यों में क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए; इसकी सलाह है। इन वाक्यों में किसी तरह के ज्ञान का कोई दावा नहीं है। इनके सत्य या असत्य होने का सवाल नहीं उठ सकता। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति हमसे कहे कि, ''किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए'' या कहे कि, ''दूसरों को दुःख नहीं देना चाहिए'', तो हम क्या कहेंगे? हम कहेंगे कि, ''यह सही है कि किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए'' या हम कहेंगे कि, ''दूसरों को दुःख देना गलत है''। आमतौर पर हम इस तरह के वाक्यों के लिए सही या गलत के सवाल उठाते हैं या उचित–अनुचित के सवाल उठाते हैं। ''क्या करना चाहिए'' अथवा ''क्या नहीं करना चाहिए'', ऐसे वाक्य में मानवीय व्यवहार से जुड़े सवालों के बारे में सही व्यवहार या गलत व्यवहार अथवा उचित व्यवहार या अनुचित व्यवहार के प्रश्न तो उठते हैं लेकिन इनको कोई सत्य या असत्य नहीं कहता। हम शायद ही कहें कि, ''किसी की निंदा करना असत्य व्यवहार है।'' इसे एक अन्य उदाहरण से समझें, ''मोहन ने रेशमा को पीटा।'' इस वाक्य के बारे में हम कह सकते हैं कि मोहन ने गलत किया या यह भी कह सकते हैं कि मोहन का रेशमा को पीटना उचित नहीं था। लेकिन हम यह नहीं कहेंगे कि, ''मोहन ने रेशमा को असत्य पीटा।'' दरअसल बात जब व्यवहार या कर्म की हो तो वहां सही–गलत या उचित–अनुचित का प्रयोग हमें ज्यादा सटीक लगता है।

कुछ वाक्य ऐसे होते हैं जो सत्य या असत्य हो सकते हैं। जिनमें कुछ जानने का दावा होता है, जिनमें किसी तथ्य की अभिव्यक्ति होती है। जैसेः ''भारत की जनसंख्या 100 करोड़ से ज्यादा है'', ''मनमोहन सिंह के दाढ़ी है'', ''भौंकने वाले कुत्ते काटते नहीं हैं'', ''सभी समकोण बराबर होते हैं'', ''पत्तियों का रंग हरा होता है''। इन सब वाक्यों में जो दावा किया गया है उसे Proposition कहते है। Proposition वाक्य को नहीं कहते, वाक्य में किए गए दावे को कहते हैं। हम ऊपर लिखे इन वाक्यों के सत्य या असत्य होने की बात भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, पहला वाक्य सत्य है कि भारत की जनसंख्या 100 करोड़ से ज्यादा है। इसी तरह अन्य वाक्यों को भी सत्य अथवा असत्य कहा जा सकता है।

एक ही दावे को दो अलग–अलग वाक्यों में भी अभिव्यक्त किया जा सकता है : ''पत्तियों का रंग सदा हरा होता है'', "the colour of leaves is always green", "leaves are always green". ये तीनों वाक्य एक ही दावा करते हैं, अतः वाक्य तो तीन हैं लेकिन proposition एक ही है।

अब बात यह है कि तथ्यात्मक ज्ञान में हमेशा कोई दावा होता है, जो भाषा में अभिव्यक्त होता है और जो सत्य या असत्य हो सकता है। इन ज्ञान के दावों को एक वाक्यकार या फॉर्मूला वाक्य से अभिव्यक्त किया जा सकता है।

1. बुद्धिप्रकाश जानता है कि पदार्थ के तीन रूप होते हैं।
2. मैं जानता हूं कि 3 + 4 = 7 होते हैं।
3. मैं जानता हूं कि कल सोमवार है।

इसमें, जैसा कि पहले कहा गया है, एक ज्ञाता है। चाहे वह कोई भी हो, उसे हम ''ज्ञ'' के सामान्य नाम से इंगित कर सकते हैं। और कोई दावा है, तो हम सभी दावों के लिए केवल सामान्य शब्द ''द'' लिखकर काम चला सकते हैं। इस प्रकार इन वाक्यों का सामान्य रूप यह बनता हैः''ज्ञ'' जानता है कि''द''।

''ज्ञ'' की जगह अलग–अलग ज्ञाता और ''द'' की जगह अलग–अलग दावे रखते जाएं तो नये–नये वाक्य बनते जाएंगे। वे सब वाक्य तथ्यात्मक ज्ञान के दावों की अभिव्यक्ति होंगे।

1. राम जानता है कि सीता बाहर गई है।
2. मोहन जानता है कि सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।
3. भोला जानता है कि छतरी काम की चीज है।
4. चालाक चन्द जानता है कि अधिकतर लोग दूसरों पर भरोसा करते हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***ऊपर दिए गए वाक्यों में ज्ञाता व दावे को पहचान कर लिखिए।***
- ***पॉच ऐसे वाक्य बनाइए जो कि तथ्यात्मक ज्ञान हों?***

''ज्ञ'' जानता है कि ''द''

अतः कहा जा सकता है कि तथ्यात्मक वाक्य होने के लिए किसी भी दावे का भाषा में बंधा होना जरूरी है। ऐसे दावों को किसी के सामने अभिव्यक्त किया भी जा सकता है लेकिन यह जरूरी नहीं है कि किसी दूसरे के सामने अभिव्यक्त किया ही जाए। मान लीजिए, मैं अपने मन में सोचूं और किसी से कहूं नहीं कि, ''सूरज निकल आया है''। यदि मैंने अपने मन में भी इसे वाक्य के रूप में संजो लिया है तो इसे वाक्य में अभिव्यक्त दावा ही माना जाएगा। अतः यह तथ्यात्मक ज्ञान की श्रेणी में आ जाएगा। इसी तरह मुझे काफी देर से सिरदर्द हो रहा है और इसे भी मैं अपने मन में वाक्य के रूप में संजो लूं तो यह भी वाक्य में किया गया दावा हो जाएगा और तथ्यात्मक ज्ञान की श्रेणी में आ जाएगा।

प्रश्नः मैं अपने मन में सोचूं और किसी से कहूं नहीं कि, ''सूरज निकल आया है'' तब आप बताइए कि इस वाक्य में ज्ञाता कौन है तथा वह किस बात का दावा कर रहा है?

इस चर्चा के बाद हम ऊपर वर्णित ज्ञान के तीन प्रकारों के बीच के संबंध को समझने का प्रयास करेंगे। यह देखेंगे कि क्या ज्ञान के ये तीन प्रकार एक–दूसरे से अलहदा (अलग) रहते हैं या इनमें कोई संबंध है? क्या परिचयात्मक ज्ञान कभी तथ्यात्मक ज्ञान की श्रेणी में आ सकता है? क्या कौशलात्मक ज्ञान कभी तथ्यात्मक ज्ञान की श्रेणी में आ सकता है? यदि दूसरी तरह से कहें तो, क्या ज्ञान के ये प्रकार एक–दूसरे से अन्तःसंबंधित हैं और एक–दूसरे के लिए आवश्यक हैं या अलग–अलग खानों में एक–दूसरे से स्वतंत्र बने रहते हैं?

2.4 कौशल, परिचयात्मक ज्ञान और वर्णनात्मक ज्ञान (तथ्यात्मक ज्ञान) में अंर्तसंबंध

लगभग सारा इंसानी ज्ञान इन तीन प्रकारों में रखा जा सकता है। इन तीनों की कुछ खासियत है, जो ज्ञान की जांच से संबंधित हो सकती है। उसकी प्राप्ति से संबंधित हो सकती है और सृजन, संप्रेषण से संबंधित हो सकती है उसका भी बहुत बड़ा हिस्सा इसमें आ जाता है। वास्तव में मूल्यों संबंधी ज्ञान को छोड़कर लगभग सभी कुछ आ जाता है।

हमने ऊपर ज्ञान के अलग–अलग प्रकार किए हैं। इन पर दर्शन (ज्ञान मीमांसा) में पूरी तरह सहमति नहीं है। अतः यहां विभिन्न प्रकारों के आपसी संबंध पर कुछ बात करना ठीक रहेगा।

2.4.1 कौशल और तथ्यात्मक ज्ञान का संबंध

कौशल और तथ्यात्मक ज्ञान के बीच किस तरह का संबंध है, इसे समझने के लिए हमारे सामने दो प्रश्न मुख्य रूप से खड़े होते हैं। एक, क्या कौशल के लिए तथ्यात्मक ज्ञान की जरूरत है? दो, क्या तथ्यात्मक ज्ञान के लिए कौशल की जरूरत है? इन सवालों को यदि हम दूसरी तरह से रखकर देखें तो समस्या में कुछ अधिक स्पष्टता आएगी। एक, मान लीजिए, किसी इंसान के पास कौशल नहीं हो तो क्या वह तथ्यात्मक ज्ञान अर्जित कर सकता है? दो, यदि किसी इंसान के पास तथ्यात्मक ज्ञान नहीं हो तो क्या वह कौशल अर्जित कर सकता है?

एक सामान्य बात तो यह है कि ऐसे इंसान की कल्पना लगभग नामुमकिन है जिसके पास किसी तरह का कौशल न हो या जिसके पास किसी भी तरह का तथ्यात्मक ज्ञान न हो। लेकिन पहली दृष्टि में ऐसा लगता है

कि इन दोनों तरह के ज्ञान की परस्पर निर्भरता नहीं है। ये एक–दूसरे से स्वतंत्र रह सकते हैं। यानी किसी व्यक्ति के पास यदि किसी तरह का कौशल है तो यह कल्पना की जा सकती है उस कौशल से जुड़े किसी तरह के तथ्यात्मक ज्ञान की जरूरत नहीं है। दूसरे, यदि किसी व्यक्ति के पास तथ्यात्मक ज्ञान है तो उस तथ्यात्मक ज्ञान के होने के लिए किसी तरह के कौशल की आवश्यकता नहीं है। हालांकि यह संभव है कि किसी व्यक्ति के पास कौशल भी हो और उससे जुड़ा तथ्यात्मक ज्ञान भी हो। जैसा कि हमने ऊपर संगीत के उदाहरण में देखा है कि यह संभव है, कोई व्यक्ति गा पाने की सामर्थ्य में माहिर हो लेकिन उसके पास संगीत के शास्त्र का ज्ञान न के बराबर हो। दूसरे यह भी देखा कि किसी के पास संगीत के शास्त्र का ज्ञान तो हो लेकिन गा पाने की सामर्थ्य में शून्य हो। यह भी संभव है कि किसी के पास दोनों हों। अर्थात् वह संगीत शास्त्र का ज्ञाता भी हो और गा पाने की सामर्थ्य में भी माहिर हो। अतः कहा जा सकता है कि ये दोनो स्वतंत्र रह सकते हैं। किसी एक के होने के लिए दूसरे का होना अनिवार्य नहीं है।

2.4.2 कौशल (करने के ज्ञान) को तथ्यात्मक ज्ञान में तब्दील करने की संभावना

हमने देखा कि तथ्यात्मक ज्ञान के लिए यह जरूरी है कि उसे भाषा में संजोया या अभिव्यक्त किया जाए। कौशल के ज्ञान को तथ्यात्मक ज्ञान में तब्दील करने से एक सवाल जुड़ा हुआ है, यदि किसी व्यक्ति के पास कोई कौशल है या वह कुछ करना जानता है, तो क्या वह उसे भाषा में अभिव्यक्त कर सकता हैं?

यह संभव है कि व्यक्ति उसे भाषा में अभिव्यक्त कर दे। उदाहरण के लिए, एक कुम्हार मटके या मिट्टी से बर्तन बनाने का कौशल रखता है और वह अनेक वर्षों से बनाता भी रहा है। यदि उससे कहा जाए कि इस कौशल के बारे में भाषा में अभिव्यक्त करके बताओ, तो वह क्या–क्या अभिव्यक्त करके बता सकता है? निश्चित ही वह कहेगा, ''मिट्टी के बर्तन बनाने के लिए मिट्टी लानी होती है। फिर मिट्टी को कूटकर पानी से भिगोना होता है। कुछ समय इन्तजार के बाद मिट्टी में लोच लाने के लिए उसे गूंथना होता है। जब मिट्टी में लोच आ जाती है तो उसे चाक पर चढ़ाकर जो भी बर्तन बनाना होता है वह बनाते हैं। बर्तन के धूप में सूख जाने के बाद उसे आग में पकाते हैं।''

कोई कुम्हार इसे और विस्तार से बता सकता है। कोई अन्य कुम्हार इसे और अधिक विस्तार एवं सूक्ष्मता से बता सकता है। अतः यह तो कहा जा सकता है कि कौशल के बारे में भाषा में बात की जा सकती है। लेकिन किसी भी कौशल में अनेक बारीकियां होती हैं। चाहे कोई कितनी भी सूक्ष्मता से उन बारीकियों को भाषा में अभिव्यक्त करने का प्रयास करे लेकिन पूरी तरह उन्हें अभिव्यक्त किया जाना संभव नहीं है। इसी से जुड़ा एक सवाल है कि क्या कर्ता को करने में होने वाली समस्त प्रक्रिया का पता होता हैं?

यह कहना मुश्किल है कि कर्ता को किसी काम के करने में होने वाली समस्त प्रक्रियाओं का पता होता है। यह संभव है कि किसी को कुछ कम तो किसी को कुछ ज्यादा पता हों लेकिन समस्त प्रक्रियाओं के पता होने का दावा नहीं किया जा सकता। इसके लिए साईकिल चलाने का उदाहरण लिया जा सकता है। यदि साईकिल चलाने की प्रक्रिया के बारे में किसी से पूछा जाए तो वह क्या कहेगा ? ''पहले एक साईकिल लेते हैं। साईकिल को थोड़ा तेज चलाकर उसके पैड़ल पर पैर रखकर सीट पर बैठ जाते हैं। सीट पर बैठने के बाद पैड़ल चलाते हैं। हैंडिल सीधा रखते हैं। यदि साईकिल को मोड़ना हो तो स्पीड कम करके मोड़ते हैं। रोकना हो तो ब्रेक का इस्तेमाल करते हैं।'' साईकिल चलाते वक्त हम जितनी चीजें एक साथ कर रहे होते हैं उन सब पर ध्यान दे पाना मानव मन के लिए संभव नहीं है, साथ ही अपने अंग संचालन में जो क्रियाएं हमें करनी पड़ती हैं उनको वास्तव में हम करते कैसे हैं (पैड़ल चलाने में हमारी पूरी टांग कैसे काम करती है?)? यह कहना मुश्किल है कि वास्तव में इन क्रियाओं को हम करते कैसे हैं?

यह मान लेते हैं कि कोई व्यक्ति साईकिल चलाने की प्रक्रिया का इससे भी सूक्ष्म वर्णन कर सकता है।

लेकिन क्या इस प्रक्रिया में होने वाली हर चीज का वर्णन किया जा सकता है? यदि कोई ऐसा प्रयास करे भी तो संपूर्ण प्रक्रिया का वर्णन करना बहुत ही मुश्किल होगा और यह कभी भी संपूर्ण नहीं होगा। एक भौतिक वैज्ञानिक के लिए इस वर्णन में यह ज्यादा महत्वपूर्ण होगा कि कौनसा बल लग रहा है और कितना लग रहा है, घर्षण कैसे स्पीड को कम करता है, आदि–आदि। साईकिल धावक के लिए अन्य चीजें महत्वपूर्ण होंगी। इन्हीं कारणों से हरेक का ध्यान साईकिल चलाने की प्रक्रिया में अलग–अलग चीजों पर होगा। इसीलिए कोई भी इन प्रक्रियाओं को पूर्णता के साथ अभिव्यक्त भी नहीं कर पाएगा। अतः कौशल के ज्ञान को तथ्यात्मक में पूरी तरह तब्दील नहीं किया जा सकता।

कुछ प्रश्न–

- ***सही व गलत का निशान लगाइये।***

    1. कौशलात्मक ज्ञान व तथ्यात्मक ज्ञान स्वतंत्र रह सकते है।

    2. तथ्यात्मक ज्ञान के लिए यह जरूरी नही है कि उसे भाषा में संजोया जाए।

    3. किस भी प्रकृति का संपूर्ण वर्णन करना मुश्किल होता है।

- ***कौशलात्मक ज्ञान पूरी तरह तथ्यात्मक ज्ञान में नही बदल पाने के क्या कारण बताएं गए है?***

- ***हमारे आस–पास ऐसे कई व्यक्ति होते हैं जो कौशलात्मक ज्ञान में महारत रखते हैं व तथ्यात्मक ज्ञान की दृष्टि से थोडे कमजोर होते है। क्या आपको लगता है कि वे भी हमारी सीखने मे मदद कर सकते हैं। कैसे?***

2.4.3 कौशल (करने का ज्ञान) के लिए तथ्यात्मक ज्ञान की आवश्यकता

हमने देखा कि कौशल को तथ्यात्मक ज्ञान में पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता लेकिन एक सवाल यह है कि क्या कुछ करना आने के लिए किसी तरह का तथ्यात्मक ज्ञान होना जरूरी है? इसे एक उदाहरण से समझें, यदि मैं साईकिल चलाना जानना चाहता हूं, क्या इसके लिए मुझे किसी तरह के तथ्यात्मक ज्ञान की जरूरत है? दूसरा उदाहरण कुम्हार का लिया जा सकता है। क्या मिट्टी से मटका बनाने के लिए किसी तरह के तथ्यात्मक ज्ञान की जरूरत है? यदि हम इन दोनों उदाहरणों को देखें तो कह सकते हैं कि साईकिल क्या है, चलाना क्या होता है, मिट्टी क्या है, मटका क्या होता है; आदि चीजों के बारे में कोई आरंभिक तथ्यात्मक ज्ञान हुए बिना सीखने वाला का काम नहीं चलेगा। लेकिन उसके बाद विधि आदि के बारे में तथ्यात्मक ज्ञान की कोई बहुत जरूरत नहीं लगती। मान लीजिए, यदि किसी कुम्हार ने अपने ज्ञान को भाषा में नहीं संजोया है, इसके बावजूद वह अच्छे मटके बना सकता है। यदि आप किसी कुम्हार से पूछें कि तुम मटके कैसे बनाते हो तो संभवतः वह विस्तार से भाषा में अभिव्यक्त नहीं कर पाए। हम साईकिल चलाने से पहले या बाद में आमतौर पर साईकिल चलाने संबंधी किसी भी ज्ञान को भाषा में नहीं संजोते। मन में बस एक इच्छा होती है, साईकिल चलाना शुरू करते हैं और धीरे–धीरे हम साईकिल चलाना सीख जाते हैं। लेकिन इससे ही जुड़ा एक अन्य सवाल है क्या करने आने में तथ्यात्मक ज्ञान होने से मदद मिल सकती है?

इस सवाल के जबाव में यही कहा जा सकता है कि कौशल की बेहतरी के लिए तथ्यात्मक ज्ञान मदद तो कर सकता है लेकिन ऐसा नहीं हो सकता कि सिर्फ तथ्यात्मक ज्ञान के बलबूते कौशल सीखे जा सकें। यदि कोई धावक बहुत तेज गति से साईकिल चलाना चाहता है तो हवा के प्रतिरोध के बारे में, घर्षण के बारे में, मानव शरीर के बारे में उसका तथ्यात्मक ज्ञान उसकी बहुत मदद कर सकता है। बल्कि कहा जा सकता है कि बिना इस तरह के तथ्यात्मक ज्ञान से वह बहुत तेज साईकिल चलाने में उन्नति न कर पाएगा।

अतः कहा जा सकता है कि, कौशल के लिए अनिवार्यतः तथ्यात्मक ज्ञान की जरूरत नहीं होती। एक हद तक कौशल के ज्ञान को तथ्यात्मक ज्ञान में तब्दील किया जा सकता है लेकिन संपूर्ण कौशल को तथ्यात्मक ज्ञान में तब्दील नहीं किया जा सकता। तथ्यात्मक ज्ञान कौशल की बेहतरी में मदद कर सकता है लेकिन सिर्फ तथ्यात्मक ज्ञान के बलबूते कौशलात्मक ज्ञान नहीं सीखे जा सकते।

क्या कौशल के सीखने से तथ्यात्मक ज्ञान में बढ़ोतरी होती है?

यह एक महत्वपूर्ण सवाल है। बहुत बार लोग ऐसा मान बैठते हैं कि कौशल सीखने से उन चीजों के बारे में तथ्यात्मक (या सैद्धान्तिक ज्ञान) नहीं बढ़ता। वास्तव में बिना कौशलों के तथ्यात्मक ज्ञान का बनना बहुत ही सीमित रहता है। जब हम मटका बनाते हैं, साईकिल चलाते हैं, टाइपिंग सीखते हैं, या कुछ भी कौशल अर्जित करते हैं तो जिन चीजों के साथ हम काम कर रहे होते हैं उनके बारे में बहुत से अनुभव संचित कर रहे होते हैं। इस तरह से अर्जित अनुभव बहुत साफ और गहरे होते हैं। तो जब हम इन पर सोचना शुरू करते हैं तो बहुत सी आनुभविक सामग्री हमारे पास मौजूद होती है और हमारे चिंतन को दिशा देने के लिए तैयार होती है। अतः हमारे तथ्यात्मक ज्ञान को बढ़ाने में कौशलात्मक ज्ञान बहुत मददगार हो सकता है।

कुछ प्रश्न–

• उदाहरण देते हुए यह बताए कि तथ्यात्मक ज्ञान किस तरह से कौशलात्मक ज्ञान प्राप्त करने में सहायता कर सकता है?

2.4.4 कौशल (करने का ज्ञान) और परिचयात्मक ज्ञान में संबंध

यदि हम कौशल और परिचयात्मक ज्ञान के संबंध को समझना चाहते हैं तो पहला सवाल यही उठता है कि क्या करने के ज्ञान या कौशल के विषय से सीधा परिचय जरूरी है? यदि इस सवाल पर विचार करें तो कौशल और परिचयात्मक ज्ञान के बीच स्पष्ट रूप से संबंध देखा जा सकता है। मान लीजिए, हम साईकिल चलाना सीखना चाहते हैं। क्या यह संभव है कि बिना साईकिल से परिचय या साक्षात् के हम साईकिल चलाना सीख जाएं? सभी मानेंगे कि इसके लिए साईकिल से परिचय होना अनिवार्य शर्त है। लेकिन एक अन्य सवाल उठता है कि क्या करने का ज्ञान सीधे परिचय के अलावा किसी तरीके से प्राप्त किया जा सकता है?

यह संभव नहीं है कि कौशलात्मक कार्य उस वस्तु से बिना परिचय के संभव हो जाएं। मान लीजिए, कुम्हार को मटका बनाना हैं। हर क्षण उसका परिचय उन समस्त चीजों और प्रक्रियाओं से होगा जिनके जरिए वह कार्य संपन्न होना है। अतः कौशलात्मक कार्यों के लिए परिचयात्मक ज्ञान होना अनिवार्य है। परिचय से बचा नहीं जा सकता। सवाल यह भी उठता है कि क्या कौशल या 'करने के ज्ञान' को प्राप्त करने की प्रक्रिया में बहुत सारा परिचयात्मक ज्ञान लाजमी तौर पर प्राप्त होता है ? यदि हम किसी कार्य को करते हैं तो अनिवार्य रूप से बहुत सारा परिचयात्मक ज्ञान हमें मिलता है। उस परिचय से हमें कोई रोक नहीं सकता। मान लीजिए, मैं मटका बनाना सीखना चाहता हूं तो मिट्टी के स्पर्श, गंध, लोच, उसके चिपकने, नर्म होने, सूखी होने आदि परिचयों से मुझे कोई रोक नहीं सकता। ये तो होंगे ही। अतः कहा जा सकता है कि कौशलात्मक ज्ञान में परिचयात्मक ज्ञान बहुत नजदीक से जुड़ा है।

कुछ प्रश्न–

• क्या कौशलात्मक ज्ञान बिना परिचयात्मक ज्ञान के संभव है?

• यदि आपको एक नई कमीज (शर्ट) सीलना चाहते है। तो बताइए की कमीज सीलने की कौशल प्राप्त करने के लिए किन किन परिचयात्मक ज्ञान की आवश्याकता होगी?

2.4.5 परिचयात्मक ज्ञान को तथ्यात्मक में बदलना

हमने देखा कि परिचयात्मक ज्ञान इन्द्रिय अनुभव या साक्षात् होने वाला ज्ञान है। मान लीजिए, मैं अभी टेबिल को देख रहा हूं। इस टेबिल के बारे में बहुत से इन्द्रिय अनुभव मुझे प्राप्त हो रहे हैं। यह जरूरी नहीं है कि मैं इन इन्द्रिय अनुभवों को अपने लिए या किसी दूसरे व्यक्ति के लिए भाषा में अभिव्यक्त करूं। लेकिन उन्हें भाषा में अभिव्यक्त किया जाना संभव है। मान लीजिए, मैं टेबिल को देख रहा हूं। मैं कह सकता हूं कि, यह भूरे रंग की है, यह कठोर है, यह चिकनी है, इसे बजाने में आवाज आती है और यह चौकोर है; आदि। लेकिन इसी से जुड़ा एक महत्वपूर्ण सवाल है कि क्या समस्त तथ्यात्मक ज्ञान सीधे परिचय से ही प्राप्त होता हैं?

यह नहीं कहा जा सकता कि समस्त तथ्यात्मक ज्ञान सीधे परिचय से ही प्राप्त होता है। बहुत सा तथ्यात्मक ज्ञान परिचयात्मक ज्ञान से प्राप्त होता है। लेकिन यह जरूर कहा जा सकता है कि तथ्यात्मक ज्ञान अन्ततः परिचयात्मक ज्ञान पर आधारित होता है। इसे उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं। मान लीजिए, मैं जानता हूं कि हिमालय पर सदा बर्फ जमीं रहती है। मैंने हिमालय भी नहीं देखा और उस पर जमीं बर्फ भी नहीं देखी। लेकिन इस वाक्य, ''हिमालय पर सदा बर्फ जमीं रहती है'', को मैं तभी समझ सकता हूं जब बर्फ से मेरा सीधा परिचय हो, किसी ऊंचे पहाड़ से मेरा सीधे परिचय हो, आदि। यदि हमारे पास बर्फ और पहाड़ की अवधारणा नहीं होंगी तो हम इस वाक्य को नहीं समझ सकते। अतः तथ्यात्मक ज्ञान के लिए कुछ परिचयात्मक ज्ञान का आधार जरूरी है। लेकिन एक सवाल पुनः यह खड़ा होता है कि क्या समस्त परिचयात्मक ज्ञान को तथ्यात्मक ज्ञान में तब्दील किया जा सकता हैं?

बहुत हद तक परिचयात्मक ज्ञान को तथ्यात्मक ज्ञान में तब्दील किया जा सकता है। लेकिन पूरी तरह से परिचयात्मक ज्ञान को अभिव्यक्त कर पाना अनेक बार संभव नहीं होता। मान लीजिए, मैं रात के अंधेरे में चन्द्रमा को देख रहा हूं। चन्द्रमा के बारे में बहुत से इन्द्रिय अनुभव हो रहे हैं। मैं उन्हें अभिव्यक्त भी कर सकता हूं। जैसे कि, चन्द्रमा दूधिया सफेद है, चन्द्रमा से प्रकाश निकल रहा है, वह गोल है और उसमें कुछ धब्बे नजर आ रहे हैं, आदि। लेकिन इसके अलावा देखते हुए मुझे बहुत सी अनुभूति हो रही हैं। मान लीजिए, मेरा मन उसे देखकर आनन्दित हो रहा है, मेरे मन में छाये बोझ से मैं मुक्त हो रहा हूं। इस तरह की और भी बहुत सी चीजें हो सकती हैं, जिनको भाषा में अभिव्यक्त करना मेरे लिए मुश्किल हो। कोई साहित्यकार संभवतः मेरे वर्णन से कहीं ज्यादा गहनता से उस अनुभूति का वर्णन करने में सक्षम हो। फिर भी अपनी समस्त अनुभूतियों को वह अभिव्यक्त कर पाए, यह आवश्यक नहीं है। अतः हरेक अनुभूति को जो मुझे हो रही है, उसे भाषा में अभिव्यक्त कर पाना मुश्किल ही होगा।

कुछ प्रश्न–

• बच्चा जब स्कूल मे प्रवेश लेता है तब उसके पास कई तरह का परिचयात्मक ज्ञान होता है जैसे वस्तु के आकार, रंग, स्वाद, रिश्ते आदि। यदि आप अपनी कक्षा में बच्चों को 2+6=8 बताना/सीखाना चाहते हैं तो बताइए कि आप अपनी कक्षा में बच्चों के किन–किन परिचयात्मक ज्ञान का उपयोग करेगे?

2.4.6 ज्ञान के प्रकारों पर विमर्श (चर्चा) का शिक्षा से संबंध

दरअसल शिक्षा में बहुत सी अभिवृत्तियों, रुझानों, मूल्यों और आदतों के साथ ज्ञान अर्जित करने की बात की जाती है। यदि ज्ञान अर्जित करने की प्रक्रिया स्कूल में चल रही है तो यह समझना आवश्यक है कि हम जिस ज्ञान की बात कर रहे हैं, वह है किस प्रकार का? वह कैसे अर्जित होगा? इन दोनों चीजों की समझ हमारे शिक्षण के तरीकों को प्रभावित करेगी और इनकी समझ से बच्चों को बेहतर रूप से सिखाने में मदद मिलेगी। इसे एक उदाहरण से समझते हैं। किसी ज्ञान को परिचयात्मक ज्ञान के बिना सिखाया जाना संभव नहीं है, अतः

बच्चों के लिए पहले उन चीजों से परिचित करवाने के लिए इन्द्रिय अनुभव देने होंगे। मान लीजिए, हम बच्चे को बताना चाहते हैं कि हर पौधे में जड़ें होती हैं। जड़ें कई प्रकार की होती हैं। यह संभव है कि इसे समझाने के लिए हम व्याख्यान पद्धति का इस्तेमाल करें। लेकिन हम जानते हैं कि यदि बच्चे को जड़ों और उसके प्रकारों के बारे में बताया जाना है तो इन दोनों ही विषयों से बच्चों को परिचित करवाना आवश्यक है। बिना उनके सीधे अनुभव के इन्हें बेहतर रूप से सिखाया नहीं जा सकता। अतः शिक्षक जिस ज्ञान के अर्जित करने की प्रक्रिया में बच्चे को संलग्न किए हुए हैं, उसके लिए ज्ञान के प्रकार को समझना होगा।

इसी तरह कौशल से अर्जित होने वाले ज्ञान के बारे में भी यह सत्य है कि यदि हम बच्चों को किन्हीं कौशलों में निपुण करना चाहते हैं तो यह काम भी बिना उस काम में बच्चों को संलग्न किए सिखाना संभव नहीं है। मान लीजिए कि हम चाहते हैं कि बच्चे लकड़ी या मिट्टी से कुछ वस्तुएं या खिलौने बनाना सीखें। इसके लिए भी व्याख्यान शैली मदद करने में सफल नहीं होगी। ऐसे काम सिखाने के लिए बच्चों का उन वस्तुओं से परिचय भी करवाना होगा और साथ ही उन्हें अपने प्रयासों से कुछ करने के अवसर भी देने होंगे। शिक्षक को यह भी समझना होगा कि इस तरह के कौशलात्मक कार्यों में अनिवार्य रूप से बच्चे कुछ गलतियां करेंगे और इन्हें बिना अभ्यास के नहीं सीखा जा सकता। इन कार्यों पर एक ही बार में महारत की उम्मीद करना भी नाइंसाफी होगी। अभी तक हमने देखा कि बच्चों को किन्हीं कौशलों में निपुण करना चाहते हैं तो उस काम में बच्चों को संलग्न किए बिना सिखाना संभव नहीं है । किसी चीज को सिखाने के लिए इंद्रियों (परिचयात्मक ज्ञान) की सहायता से सीखना उपयुक्त हो सकता है। परन्तु क्या यह संभव है कि बच्चों को दिया जाने वाला सभी ज्ञान कौशलात्मक ज्ञान हो या फिर परिचयात्मक ज्ञान ही हो उदाहरण के लिए यदि हम बच्चों को सिखाना (बताना) चाहते हैं कि सूर्य पृथ्वी से लगभग 148 मीलियन कि.मी. दूर है या फिर यह सिखाना (बताना) चाहते है कि द्वितीय विश्व युद्ध सन् 1939 को प्रारंभ हुआ था। तो इस प्रकार का ज्ञान ना तो कौशलात्मक ज्ञान है और न ही परिचयात्मक ज्ञान परंतु इस प्रकार के ज्ञान का उपयोग नए ज्ञान के निर्माण के लिए कर सकता है।

अतः कहा जा सकता है कि यदि शिक्षक ज्ञान के प्रकारों को उचित प्रकार से समझ लेते हैं तो उसे (बच्चों को) जो सिखा रहें हैं उसके महत्व को समझने में मदद मिल सकती है। यह समझना आसान होगा कि किस चीज को सिखाएं और किस चीज को छोड़ें। एक चीज के सिखाने से कौनसी दूसरी चीज भी सीखी जा सकती है, इसे समझने में मदद मिलती है।

किसी चीज को सिखाने में और किन चीजों की जरूरत है इसको समझने में मदद मिल सकती है। किसी चीज को सिखाने की आवश्यक शर्तें क्या हैं, ये समझने में मदद मिल सकती है। अलग–अलग चीजों को सिखाने के तरीकों में कुछ भेद हो सकता है, इन्हें समझने में मदद मिल सकती है।

कुछ प्रश्न–

• ज्ञान के प्रकारों की समझ रखना एक शिक्षक की शिक्षण अधिगम प्रकिया को किस प्रकार प्रभावित (लाभकारी या सुधार) करता है? उदाहरण सहित उत्तर लिखें।

2.5 साराश

इस अध्याय में निम्न कार्य किए–

- ***ज्ञान को आम बोलचाल की भाषा तथा विशिष्ट अर्थ में समझने का प्रयास किया।***
- ***ज्ञान के तीन प्रकारों कौशलात्मक, परिचयात्मक तथा तथ्यात्मक पर चर्चा कर उनके प्राप्त करने के विभिन्न तरीको पर चर्चा की।***

•जाना कि कौशलात्मक ज्ञान का तात्पर्य स्वयं के द्वारा कार्य कर पाने वाले ज्ञान से है।

•जाना कि परिचयात्मक ज्ञान निम्न तरीकों से प्राप्त किया जा सकता है इन्द्रिय अनुभव द्वारा, स्वंय के महसूस करना, स्मृति के द्वारा, तथा आत्मसजगता द्वारा।

•जाना कि तथ्यात्मक ज्ञान में कोई दावा होता है जिसे वाक्यों (भाषा) में व्यक्त किया जाता है।

•ज्ञान के विभिन्न प्रकारों के बीच अंतःसंबंध (अंतर व सामान्ता) को समझने का प्रयास किया।

•यह समझने का प्रयास किया गया कि किस तरह से ज्ञान के प्रकारों की समझ एक शिक्षक के शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को बेहतर बनाने में सहयोगी हो सकता है।

2.6 अभ्यास के लिए कुछ प्रश्न

1. मान लीजिये, आप एक स्वेटर बुनना सीखना चाहते हैं। इसके लिए कौन–कौन से परिचयात्मक और तथ्यात्मक ज्ञान की आवश्यकता होगी?

2. पांच साल पहले की घटना का याद आना ज्ञान के किस प्रकार का उदाहरण है और क्यों?

3. यदि एक शिक्षक को अपनी कक्षा में बच्चों को पेड़–पौधों की जड़ों के बारे में सिखाना है तो ज्ञान के किस प्रकार का इस्तेमाल करते हुए सबसे ज्यादा उपयुक्त तरीके से सिखा पायेगा। कारण सहित बताएं।

4. छत्तीसगढ़ के एक शिक्षक को जम्मू–कश्मीर के भूगोल और पर्यावरण के बारे में अपनी कक्षा के बच्चों को सिखाना है तो वह ज्ञान के किस प्रकार का इस्तेमाल करेगा? कारण सहित बताएं।

5. किन आधारों पर हम किसी ज्ञान को तथ्यात्मक ज्ञान कह सकते हैं?

6. ज्ञान के किस प्रकार में सत्य या असत्य के प्रश्न खड़े नहीं कर सकते और क्यों?

7. क्या सिर्फ तथ्यात्मक ज्ञान होने से कौशल का ज्ञान हो जाएगा? अपने उत्तर के पक्ष में कारण दीजिए।

8. निम्नांकित उदाहरणों को ज्ञान के प्रकारों के आधार पर उचित वर्ग में रखें तथा वर्गीकरण का संक्षेप में कारण भी बताएँ।

   i) सुधीर कम्प्यूटर चलाना जानता है।
   ii) कल सोमवार था।
   iii) मुझे बहुत प्यास लगी है, यह मै जानता हूँ।
   iv) महात्मा गाँधी का जन्म 1869 में हुआ था।
   v) रीना इडली बनाना जानती है।

11. ''मै जानता हूँ कि मै चन्द्रमा को देख रहा हूँ।'' इस वाक्य में छिपे ज्ञान के प्रकार को पहचानकर बताएँ कि यह कौन सा ज्ञान है और क्यों।

12. कौशल या व्यावहारिक ज्ञान से आप क्या समझते हैं? आपके शिक्षण में यह किस तरह सहायक हो सकता हैं?

13. ज्ञान के प्रकारों का जानना हमारे शिक्षण में किस तरह सहायक हो सकता है?

14. ''हमारा समस्त ज्ञान प्रत्यक्ष से ही अर्जित होता है।'' इस कथन पर अपने विचार लिखें।

15. परिचयात्मक ज्ञान क्या होता है? और इसके कितने प्रकार बताए गए हैं?

अध्याय – 3
ज्ञान और प्रमाण

पाठ की रूपरेखा

3.1 परिचय

3.1.1 उद्देश्य

3.2 ज्ञान और शिक्षा

3.3 ज्ञान और प्रमाण

3.3.1 प्रत्यक्ष

3.3.2 अनुमान

3.3.3 उपमान

3.3.4 शब्द

3.4 सारांश

3.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

3.1 परिचय

इस इकाई को दो भागों मे देखेगें। पहले भाग में हम यह समझने का प्रयास करेगें कि ज्ञान की प्रकृति क्या है? क्या ज्ञान किसी वस्तु की तरह देने–लेने की चीज है? इसे समझने के लिए पिछले अध्याय में पढे गए ज्ञान के प्रकारों की सहायता लेगें। दूसरे भाग में ज्ञान के प्रमाणो की बात करेगें। इस भाग में हम भारतीय दर्शन की एक शाखा न्याय दर्शन के चार प्रमाणों (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द) की चर्चा करेंगें।

3.1.1 उद्देश्य

इस अध्याय को पढने के बाद आप

1. ज्ञान की प्रकृति के बारे मे चर्चा कर पाएंगें।
2. ज्ञान के लिए विभिन्न प्रकार के प्रमाणों (स्त्रोतों/साधनों) पर विचार कर पाएंगें।
3. अपने आम जीवन में ज्ञान के प्रमाण (प्रत्यक्षए अनुमानए उपमान और शब्द) के महत्व को समझेगें।
4. अध्ययन अध्यापन कार्य में इन प्रमाणों का समूचित उपयोग कर पाएंगे।

भाग 1

अक्सर लोगों को यह कहते सुना जाता है कि शिक्षा में बच्चों को 'ज्ञान दिया' जाता है। इस इकाई में सबसे पहले हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि 'ज्ञान देने' का क्या अर्थ है? क्या ज्ञान कोई ऐसी चीज है जिसे 'दिया' जा सकता है? क्या हम ज्ञान को कॉपी,

किताब या पेंसिल की तरह किसी को दे सकते हैं? यदि ऐसा करना मुमकिन होता तो शिक्षा का काम कितना आसान हो गया होता और बच्चों को सालों–साल स्कूल आने की जरूरत भी नहीं होती।

कुछ प्रश्न–

- ***आप एक शिक्षक के रूप में जब यह कहते हैं कि कक्षा 5वीं के बच्चों को पर्यावरण इस लिए पढना चाहिए ताकि बच्चों को अपने (आसपास क) पर्यावरण के बारें में ज्ञान प्राप्त हो। तब आप बच्चों को क्या–क्या सीखना/बताना/समझाना चाहेगें?***
- ***जब आप कहते है कि बच्चों को संस्कृत पढाना चाहिए जिससे बच्चे भारत के प्राचीन भाषा के बारे मे ज्ञान प्राप्त कर सकें। तब आप बच्चों से किस–किस तरह के ज्ञान को प्राप्त करने की अपेक्षा रखते है?***

यदि ऐसा माना जाता है कि ज्ञान दिया जाता है तो यह समझना आवश्यक है कि देने की प्रक्रिया में होता क्या है। अर्थात् जब हम किसी को कोई चीज देते हैं तो क्या होता है? यदि यह माना जाए कि 'देना' दो व्यक्तिओं के बीच होने वाले आदान–प्रदान की प्रक्रिया है तो यह भी मानना होगा कि इस प्रक्रिया में एक व्यक्ति देने वाला और एक लेने वाला होता है। इसे एक उदाहरण से समझने का प्रयास करते हैं। मान लीजिए, ''सुमन ने राजेश को एक पेंसिल दी।'' इस उदाहरण में भी हम देख सकते हैं कि एक व्यक्ति देने वाला है और दूसरा लेने वाला। इसके साथ ही एक वस्तु है जो दी जा रही है। इस उदाहरण में यह भी स्पष्ट है कि जो वस्तु दी जा रही है वह देने के बाद देने वाले के पास नहीं रहती; वह लेने वाले के पास चली जाती है। यदि हम इस उदाहरण पर गौर करें तो क्या ज्ञान भी इसी तरह दी जा सकने वाली कोई चीज है? उपरोक्त उदाहरण के बारे में सवाल उठाया जा सकता है कि ज्ञान किसी ठोस वस्तु की भांति तो होता नहीं है। अतः इसे वस्तु की तरह दिया भी नहीं जा सकता।

कुछ प्रश्न–

सोचें और लिखें

- ***ज्ञान होता क्या है?***
- ***ज्ञान किस तरह की चीज है?***
- ***ज्ञान देने का अर्थ क्या है?***

इसे विस्तार से समझने के लिए आगे हम ज्ञान की प्रकृति और ज्ञान के प्रकारों से जोड़कर देखने का प्रयास करेंगे। एक उदाहरण से इसे समझने की कोशिश करते हैं। हम अक्सर कहते हैं, ''अमुक व्यक्ति को खेती का ज्ञान है।'' या ''अमुक व्यक्ति को गणित का ज्ञान है।'' या ''अमुक व्यक्ति शिक्षा का जानकार है।'' या ''अमुक व्यक्ति राजनीति का जानकार है।'' आदि–आदि। ये सभी कथन ज्ञान होने की बात करते हैं और इन सभी कथनों में कुछ बातें सामान्य हैं। एक, प्रत्येक उदाहरण में एक व्यक्ति है जो कि जानता है या जानने वाला है। अर्थात् ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि कोई न कोई जानने वाला जरूर होना चाहिए, जिसे ज्ञाता भी कहा जाता है।

क्या हम बिना ज्ञाता के ज्ञान की बात कर सकते हैं? हम सभी मानेंगे कि किसी तरह के ज्ञान के लिए ज्ञाता होना अनिवार्य है। लेकिन एक सवाल यह भी है कि ज्ञाता कैसा होना चाहिए या इसकी क्या विशेषताएं होती हैं? क्या हम कह सकते हैं कि पेड़ या पत्थर को अमुक विषय का ज्ञान है? ऐसा शायद ही कोई कहेगा। क्योंकि पत्थर और पेड़ तो चेतन ही नहीं हैं। वे तो जड़ पदार्थ हैं। ज्ञान किसी चेतन प्राणी को ही हो सकता है। लेकिन क्या किसी भी चेतन प्राणी को ज्ञान होता है? अर्थात् क्या बकरी, मोर या उल्लू को ज्ञान हो होता है?

इस बारे में थोड़ा विवाद हो सकता है और कुछ लोग कह सकते हैं कि ''हां, इन प्राणियों को भी ज्ञान होता है और ये भी आपस में बहुत–सी बातों का परस्पर संप्रेषण करते हैं।'' एक हद तक यह बात सही भी है। सभी प्राणी किसी खतरे की आशंका को भांप लेते हैं और खतरा प्रकट होने पर ये एक–दूसरे को संप्रेषित करते हैं। आप सभी ने यह तो सुना ही होगा कि जब जंगल में चीता एक जगह से दूसरी जगह जाता है तो कुछ पक्षी और जानवर विभिन्न तरह की आवाजें निकालते हैं ताकि बाकी जानवर सचेत हो जाएं। ऐसे में कोई कह सकता है कि यदि इन्हें ज्ञान नहीं होता तो यह सब कैसे संभव होता? इस मायने में इन्हें भी ज्ञान होता है, यह सही है और इसमें भी कम से कम चेतन होने की एक शर्त तो पूरी हो रही है। लेकिन पशु–पक्षिओं के ज्ञान की और भी समस्याएं हैं। यह माना जाता है कि पशु–पक्षिओं को एक सीमा तक ही ज्ञान हो सकता है। वे अपने मौजूदा ज्ञान से लगातार नए ज्ञान का निर्माण नहीं कर सकते जबकि इंसानी ज्ञान इस तरह की सीमाओं में नहीं बंधता। ज्ञान की हमारी चर्चा के संदर्भ में एक तो हम इंसानी ज्ञान की बात कर रहे हैं और साथ ही ऐसे ज्ञान की बात कर रहे हैं जिसे इंसानी भाषा में अभिव्यक्त किया जा सके। अतः इस संदर्भ में हम कह सकते हैं कि प्रत्येक जानने की क्रिया में एक सचेतन इंसान का होना अनिवार्य है।

कुछ प्रश्न–

- ***मनुष्य को होने वाले ज्ञान तथा अन्य जीव जन्तुओं को होने वाले ज्ञान में क्या अंतर है ?***

दूसरे, ज्ञान के लिए किसी विषय का होना भी आवश्यक है जिसे ज्ञेय भी कहते हैं। विषय या ज्ञेय का मतलब कोई ऐसी चीज जिसके बारे में जाना जाता है। उपरोक्त उदाहरणों में हमने देखा कि खेती, गणित या शिक्षा या राजनीति वे विषय हैं जिनके बारे में ज्ञाता को ज्ञान है। क्या यह संभव है कि बिना विषय के ज्ञान संभव हो? अर्थात् ज्ञाता तो हो लेकिन कोई विषय नहीं हो और ज्ञाता को ज्ञान हो रहा हो?

कुछ प्रश्न–

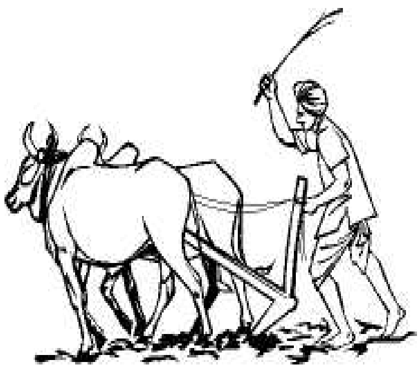

चित्र में देखकर बताइए कि

1. चित्र में ज्ञाता कौन है?

2. ज्ञाता को किन किन चीजों का ज्ञान है?

3. उस ज्ञान कों किस प्रकार से प्राप्त किया होगा?

हम देख सकते हैं कि ज्ञाता और ज्ञेय दोनों ही चीजें ज्ञान के लिए आवश्यक हैं। लेकिन फिर भी सवाल यह है कि आखिर ज्ञान क्या है ? हम उपरोक्त उदाहरणों से देख सकते हैं कि ज्ञान ज्ञाता से स्वतंत्र कोई चीज नहीं है। दूसरे शब्दों में, ज्ञान ज्ञाता को ही होता या हो रहा होता है और यह ध्यान दिए जाने योग्य है कि ज्ञान ज्ञाता के मन में होता है जो कि ज्ञेय वस्तु के संपर्क में आने के बाद ही होता है। यदि ज्ञेय वस्तु हो और ज्ञाता नहीं हो तो हम नहीं कहेंगे कि ज्ञान होगा। मान लीजिए, जंगल में पेड़ गिरा और किसी ने उसके गिरने की

आवाज नहीं सुनी और न ही उसे गिरते हुए देखा है तो क्या पेड़ गिरने का ज्ञान होगा? यह सही है कि जंगल में पेड़ गिरने की घटना तो हुई लेकिन उसका किसी को ज्ञान नहीं हो पाएगा। इस मायने में हम कह सकते हैं कि ज्ञान ज्ञाता से किसी विषय या वस्तु के संपर्क में आने से होता है और यह ज्ञान ज्ञाता के मन में होता है। इस मायने में ज्ञान ज्ञाता की एक मनः स्थिति होती है और ज्ञान में परिवर्तन के साथ इस मनःस्थिति में भी परिवर्तन होता है।

इसे उदाहरण से समझें, एक व्यक्ति यह मानता है कि सभी प्राणियों को भगवान ने बनाया है। लेकिन वह आगे जाकर विज्ञान में जीवों की उत्पत्ति के संदर्भ में डार्विन के सिद्धान्त से परिचित होता है और उसे डार्विन का सिद्धान्त पहले वाले सिद्धान्त से ज्यादा उचित लगता है और वह इसे सही मानने लगता है तो ऐसी स्थिति में यह परिवर्तन कहीं बाहर नहीं होकर उस व्यक्ति या ज्ञाता के मन में होता है। अतः कहा जा सकता है कि ज्ञान होना एक प्रकार की मानसिक क्रिया है और उसमें होने वाले बदलाव भी मानसिक ही होते हैं।

यहां यह समझना जरूरी है कि आखिर हमें ज्ञान होता कैसे है ? इसे समझने के लिए हम किसी वस्तु के ज्ञान का उदाहरण लेते है, जैसे कि पेड़। जब पेड़ ज्ञाता के संपर्क में आता है तो इस की एक छवि ज्ञाता के मन में निर्मित होती है। किसी वस्तु की छवि में बहुत सी चीजें हो सकती हैं। जैसे कि, पेड़ के आकार बारे में हमारे मन में बनी छवि। इस छवि में पेड़ का रंग, रूप, उसकी बनावट आदि हो सकती हैं। किसी वस्तु के बारे में इस तरह से छवि बनने को अवधारणा का बनना भी कहते हैं। लेकिन पेड़ के बारे में और भी नई अवधारणाएं समय के साथ–साथ और हमारी जानकारी में वृद्धि के साथ बन सकती हैं। जैसे कि, उसकी उम्र कितनी होती है, उसका फल कैसा होता है, वह फल किस मौसम में देता है आदि–आदि। ये सभी अवधारणाएं ज्ञाता के मन में बन रही होती हैं और बहुत सी अवधारणाओं में जब आपसी संबंध बनता है तो यह उस वस्तु के बारे में एक ज्ञान का रूप लेता है। इस ज्ञान में भी समय के साथ वृद्धि होती रहती है। समय के साथ हम पेड़ के बारे में यह भी जानते हैं कि यह किस तरह के वातावरण में पैदा होता है, किन–किन देशों में पाया जाता है और अलग–अलग जगह पर इस पेड़ को लेकर प्रचलित मान्यताएं आदि। लेकिन यह सभी हमारे मन में होने वाले परिवर्तन हैं। अतः कहा जा सकता है कि ज्ञान किसी भौतिक वस्तु की तरह तो नहीं है और न ही उसे भौतिक वस्तु की तरह किसी को दिया जा सकता है। यदि ऐसा है तो आरंभ में जो कहा गया था कि अक्सर लोग कहते हैं कि शिक्षा के माध्यम से 'ज्ञान देते' हैं, इस दावे का क्या करें? आगे हम ज्ञान के प्रकारों के माध्यम से इस दावे की और जांच करेंगे। पिछली इकाई में हमने ज्ञान के अर्थ और ज्ञान के प्रकारों पर चर्चा की है। इस इकाई में हमने ज्ञान के तीन प्रकारों–कौशल या कौशलात्मक ज्ञान, परिचयात्मक ज्ञान और तथ्यात्मक या वर्णनात्मक ज्ञान– की बात की है। अभी हम ज्ञान के इन तीन प्रकारों के उदाहरणों के माध्यम से यह समझने का प्रयास करेंगे कि क्या ज्ञान 'देने' या 'दी जा सकने' वाली कोई वस्तु अथवा चीज है?

पिछली इकाई में ज्ञान को एक प्रकार कौशल या कौशलात्मक ज्ञान माना गया है। कौशल का अर्थ किसी काम को बेहतर तरीके से कर पाने की क्षमता से लिया जाता है। कौशल के एक उदाहरण के रूप में हम साईकल चलाने या तैरने को ले सकते हैं। हम कब कहेंगे कि किसी व्यक्ति या बच्चे को साईकल चलाना आता है? यदि वह साईकल पर बैठकर बिना गिरे, बिना टकराए, संतुलन बनाए हुए भीड़–भाड़ वाले इलाके में एक जगह से दूसरी जगह तक पहुंच जाता है तो हम कहेंगे कि इसे साईकल चलाना आता है। सवाल यह भी है कि क्या इस तरह से साईकल चलाना अचानक आ जाता है या इस तरह साईकल चला पाने का कौशल अर्जित करने में कुछ समय लगता है? मान लीजिए, यदि किसी स्कूल या कोचिंग में कोई शिक्षक बच्चे से यह कहता रहे कि पहले साईकल को सीधी खड़ी करके पकड़ो, फिर उसे थोड़ा दौड़ाते हुए उसकी सीट पर बैठकर पैडल चलाने लगो और हैंडिल सीधा रखो तो क्या इस तरह का वर्णन सुनकर साईकल चलाना सीखा जा सकता है? आप याद करके देखो कि आपने साईकल चलाना कैसे सीखा एवं आपको इसे सीखने में कितना समय लगा और इसे सीखने के लिए क्या–क्या किया?

इसका आशय यह है कि कौशलात्मक ज्ञान को अर्जित करने के लिए व्यक्ति को स्व–प्रयत्न एवं अभ्यास करना होता है और यह धीरे–धीरे अर्जित होता है। इसमें ज्यादा बेहतरी हासिल करने में समय लगता है। संभवतः इसे अर्जित करने में दूसरे लोग कुछ हद तक मदद कर सकते हैं। लेकिन इसे अर्जित करने के लिए स्व–प्रयत्न और अभ्यास सीखने वाले व्यक्ति को स्वयं ही करना होता है। अनेक बार किसी दूसरे व्यक्ति की मदद की जरूरत हो भी सकती है और अनेक बार व्यक्ति खुद अपने प्रयासों से भी इसे अर्जित करने में सक्षम हो जाता है। दूसरे व्यक्ति उसे बेहतर तरीके से करने या समस्या आने पर उसे सुलझाने में मदद करने का काम कर सकते हैं। कौशलात्मक ज्ञान के जितने भी उदाहरण सोचे जाएं उन्हें ऐसे ही हासिल किया जाता है। व्यक्ति को इस तरह का ज्ञान बैठे–बैठे, अचानक या इल्हाम से अर्जित नहीं हो सकता। यदि कौशलात्मक ज्ञान अर्जित करने का इससे अलग कोई उदाहरण आपको सूझता है तो बताएं।

यदि इस उदाहरण से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कौशलात्मक ज्ञान किसी वस्तु की तरह या सिर्फ बोलकर नहीं 'दिया' जा सकता। यह अपने प्रयत्नों और अभ्यास से अर्जित किया जाता है। पेंसिल देने वाले उदाहरण में हम यह भी देख सकते हैं कि पेंसिल देने वाले से लेने वाले के पास चली जाती है और वह देने वाले के पास नहीं रहती। लेकिन ज्ञान के मामले में सिखाने वाले का ज्ञान सीखने वाले के पास पेंसिल की तरह नहीं जाता। सिखाने वाले के पास सिखाने के बाद भी उतना ही ज्ञान बचा रहता है। यहां ज्ञान देने की बात न होकर ज्ञान प्राप्त करने में मदद करने की ज्यादा उचित लगती है।

ज्ञान का दूसरा प्रकार परिचयात्मक ज्ञान है। हमने पिछली इकाई में देखा कि परिचयात्मक ज्ञान सीधे इन्द्रियानुभव या संवेदन से प्राप्त होता है। अर्थात् व्यक्ति की पांच ज्ञानेन्द्रियों के संपर्क में किसी वस्तु के आने पर अथवा किसी प्रत्यक्ष अनुभव से हमें जो ज्ञान होता है वह परिचयात्मक ज्ञान होता है। उदाहरण के लिए, गर्म, ठण्ड़ा, स्वाद, ध्वनि, गंध, रंग या आकार आदि का ज्ञान पांच ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से होता है। सिर दर्द, भूख आदि का ज्ञान इन्द्रियों के माध्यम से तो नहीं होता लेकिन ये भी व्यक्ति को सीधे ही होता है। परिचयात्मक ज्ञान तत्काल बिना किसी अन्य माध्यम के होने वाला सीधा अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान है। क्या किसी व्यक्ति को गर्म या ठण्ड़े या रंग आदि का ज्ञान बिना किसी प्रत्यक्ष अनुभव के कराया जा सकता है? क्या इस तरह का ज्ञान किसी और तरीके से कराया जा सकता है? ज्ञान का यह ऐसा प्रकार है जो प्रत्यक्ष रूप से या सीधे व्यक्ति को होता है। अतः कहा जा सकता है कि परिचयात्मक ज्ञान को भी कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को वस्तु की तरह नहीं दे सकता बल्कि परिचयात्मक ज्ञान तो सब का अलग–अलग ही होता है। उदाहरण के लिए, हमें यहां बैठे हुए बाहर खड़े पेड़ का रंग जिस तरह का दिख रहा है दूसरे को कुछ भिन्न प्रकार का दिख रहा हो सकता है। किसी अन्य व्यक्ति को वह एकदम कैसा दिख रहा है इसके बारे में पता भी नहीं किया जा सकता। अतः यह ज्ञान तो स्वयं व्यक्ति को ही अर्जित करना होता है इसलिए परिचयात्मक ज्ञान के बारे में भी 'ज्ञान देने' की बात उचित नहीं बैठती।

कुछ प्रश्न–

- ***अधूरे वाक्यों को पूरा करें***

  1. विषय या ज्ञेय का मतलब है ऐसी चीज ....

  2. प्रत्येक जानने की किया में एक ....

  3. यदि ज्ञेय वस्तु हो व ज्ञाता नहीं हो ....

- ***कौशलात्मक ज्ञान व परिचयात्मक ज्ञान के दो–दो अदाहरण अीलिए।***
- ***ज्ञान दिया नही जा सकता ऐसा कहने के लिए लेखक ने क्या तर्क दिया?***
- ***एक ऐसा बच्चा जो पूर्णरूप से देख नही सकता उसे हाथी के बारे में बताने या समझाने के लिए आप क्या–क्या करेगें?***

ज्ञान का तीसरा प्रकार तथ्यात्मक या वर्णनात्मक ज्ञान है। पिछली इकाई में हमने देखा कि तथ्यात्मक ज्ञान

में किसी चीज अथवा घटना को जानने का दावा किया जाता है। उदाहरण के लिए, ''छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर है'' या ''आज तापमान 45 डिग्री सेल्सियस है, या ''भारत 1947 में आजाद हुआ''। अर्थात् तथ्यात्मक ज्ञान में हम किसी तथ्य को जानने का दावा करते हैं। यह ज्ञान, सिद्धान्तः भाषा में अभिव्यक्त किया जाता है और इसके बारे में यह सवाल उठता है कि जो कहा जा रहा है वह सत्य है अथवा नहीं। सामान्यतः शिक्षा के माध्यम से इस प्रकार के ज्ञान के परस्पर आदान–प्रदान की बात की जा सकती है। हम देखते हैं कि अक्सर हमारे स्कूलों में कुछ इस तरह के ज्ञान की ही बातें की जाती हैं। सामान्यतः पुस्तकों में इसी तरह के ज्ञान की भरमार होती है और शिक्षक भी बच्चों से इसी तरह के तथ्यात्मक ज्ञान को 'जानने' का आग्रह करते हैं। इससे लग सकता है कि तथ्यात्मक ज्ञान तो जरूर किसी को 'दिया' जा सकता है। लेकिन इस आदान–प्रदान की भी प्रकृति क्या है? क्या यह भी किसी वस्तु की तरह दिया जा सकता है?

ज्ञानों के इस विभाजन में हम देखते हैं कि तथ्यात्मक ज्ञान एक हद तक परिचयात्मक ज्ञान के बल पर टिका होता है। परिचयात्मक ज्ञान भाषा में अभिव्यक्त होने के बाद तथ्यात्मक ज्ञान की श्रेणी में आ जाता है। परिचयात्मक ज्ञान अधिकांशतः सरल अवधारणाओं पर आधारित होता है जिसे अनेक बार कहकर या भाषा में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, यदि कोई यह कहे कि पीला रंग क्या होता है? इसे बिना इन्द्रियानुभव के समझा पाना असंभव है। इसे सिर्फ महसूस करके या इन्द्रियानुभव से ग्रहण करके ही समझा जा सकता है। हमारी बहुत सी बुनियादी अवधारणाएं परिचयात्मक ज्ञान के आधार पर बनती हैं और ज्ञान का शीश महल खड़ा करने में उनकी अत्यावश्यक भूमिका होती है। तथ्यात्मक ज्ञान के लिए भी यह आवश्यक है कि जिस व्यक्ति के साथ अन्तःक्रिया की जा रही है उसके पास वे बुनियादी अवधारणाएं होनी चाहिए जिसके माध्यम से वह इन तथ्यों को समझ सके। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति के पास आज की अवधारणा, तापमान की अवधारणा, 45 की अवधारणा और डिग्री सेल्सियस की अवधारणाएं नहीं होंगी तो शायद वह 'आज तापमान 45 डिग्री सेल्सियस है' इस तथ्यात्मक ज्ञान को ग्रहण नहीं कर पाएगा। यदि हम गौर करें तो पाएंगे कि तथ्यात्मक ज्ञान अन्तः परिचयात्मक ज्ञान से बनी बुनियादी अवधारणाओं पर ही निर्भर करता है और ये अवधारणाएं व्यक्ति को स्वयं बनानी होती हैं। इन अवधारणाओं के किसी अन्य व्यक्ति के मन में होने भर से और बता देने से काम नहीं चलता। उसे स्वयं ये अवधारणाएं अपने मन में बनानी होती हैं। अतः तथ्यात्मक ज्ञान को भी किसी व्यक्ति को किसी वस्तु की तरह नहीं दिया जा सकता।

कुछ प्रश्न–

- ***''हमारा देश 15 अगस्त 1947 को आजाद हुआ था'' यह एक तथ्यात्मक ज्ञान है। इसे जानने के लिए आपको किस परिचयात्मक ज्ञान की आवश्यकता होगी?***

अभी तक हमने ज्ञान अर्जन की प्रक्रिया एवं ज्ञान के प्रकारों पर चर्चा की है। हमने ऊपर देखा कि ज्ञान के तीनों प्रकारों में ज्ञान मुख्यतः व्यक्ति को स्वयं निर्मित करना होता है। ज्ञान का निर्माण व्यक्ति की स्वयं की सक्रियता, स्वयं के पूर्व ज्ञान के आधार पर ही होता है। अतः कहा जा सकता है कि 'ज्ञान देने' या किसी से 'ज्ञान लेने' का सवाल तीनों प्रकार के ज्ञानों में उचित नहीं ठहरता। परस्पर अन्तःक्रिया के माध्यम से ज्ञान निर्मित होता है और यह अन्तःक्रिया प्रकृति या परिवेश से सीधे हो सकती है अथवा व्यक्तिओं के मध्य हो सकती है। यह जरूर कहा जा सकता है कि कोई व्यक्ति या शिक्षक बच्चों को ज्ञान अर्जित करने में मदद कर सकता है और वह एक उत्प्रेरक की भूमिका में हो सकता है।

ज्ञान की बात करते हुए ज्ञान के सत्य अथवा असत्य की चर्चा को अलग नहीं किया जा सकता। ज्ञान हम उसी को कहते हैं जो सत्य हो, या कम से कम, हम जिसे सत्य मानते हैं। यदि हमें ज्ञान की असत्यता का पता चलता है तो हम उसे ज्ञान मानना बंद कर देते हैं। अतः कहा जा सकता है कि ज्ञान में सत्यता का दावा होता है।

3.2 ज्ञान और शिक्षा

ऊपर हमने ज्ञान के तीन प्रकारों की बात की है। यदि ज्ञान का प्रयोग इन तीनों अर्थों में किया जाए तो यह बात उचित प्रतीत होती है कि शिक्षा के माध्यम से ज्ञान अर्जित या प्राप्त किया जाता है। लेकिन क्या हम शिक्षा के माध्यम से सिर्फ ज्ञान अर्जित करने की ही बात करते हैं? अक्सर यह कहा जाता है कि अच्छी शिक्षा वही है जो बच्चे को– सीखने में आत्म–निर्भर बनाए, प्राकृतिक सौन्दर्य को सराहना की काबलियत विकसित करे, अच्छा इंसान बनाए, दूसरों की मदद करना एवं मेल–मिलाप से रहना सिखाए, सत्य के प्रति आस्था विकसित करे, अनुचित को अनुचित कहने का साहस पैदा करे, मेहनत से सफलता अर्जित करने में विश्वास पैदा करना सिखाए, आदि–आदि। बहुत–सी और ऐसी ही बातें हो सकती हैं जिनके बारे में यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षा द्वारा ये गुण या क्षमताएं विकसित होनी चाहिए। सभी लोग इस बात से सहमत होंगे कि स्कूल में शिक्षा के माध्यम से ज्ञान अर्जित करने के अलावा बच्चों में कुछ आदतों, व्यवहारों, रुचियों, रुझानों एवं मूल्यों आदि के विकास की बात भी की जाती है। यह सवाल पुनः चिन्तन का विषय है कि किन आदतों, व्यवहारों, रुचियों, रुझानों एवं मूल्यों के विकास पर जोर दिया जाना चाहिए। हम अभी यहां इस संदर्भ में चर्चा नहीं करेंगे। हालांकि इनमें जो कुछ भी तय किया जाए लेकिन यह सही है कि ज्ञान के अलावा भी शिक्षा के माध्यम से सीखने या क्षमताएं विकसित करने की बात की जाती है। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि शिक्षा के संदर्भ में सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण हिस्सा ज्ञान वाला है। इनकी अपेक्षा होगी कि स्कूल में बच्चे ज्ञान प्राप्त करें, उन्हें ज्ञान हो अथवा वे जानें। इस इकाई में हम शिक्षा के 'ज्ञान प्राप्त करने' या 'जानने' वाले हिस्से पर चर्चा करेंगे।

कुछ प्रश्न–

- ***सोचें और बताएं कि नीचे लिखे वाक्यों (आप किस प्रकार के ज्ञान) में से किस वाक्य के लिए सत्य–असत्य, सही–गलत या अच्छा–खराब जैसे शब्दों का उपयोग करते है–***

    1. जब आप राम को सायकल चलाते हुए देखते हैं।

    2. जब मधु आपसे कहे कि ''राम को सायकल चलाना आता है''।

    3. जब घर में किसी व्यक्ति को खाना बनाते हुए देखते हैं।

    4. जब कक्षा में कोई बच्चा यह कहता है 2 + 2 = 4।

    5. जब आप खाना चख कर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं।

    6. जब कमला किसी वस्तु कों देखकर कहती है कि ''यह फूल है''।

शिक्षा से ज्ञान प्राप्त करने एवं जानने वाले हिस्से को समझने के लिए हम तीन उदाहरण लेते हैं:

1. पेंसिल छीलना सिखाना।

2. विभिन्न प्रकार की पत्तियों का अवलोकन करना सिखाना।

3. ये बताना कि ''सभी पत्तियों में शिराएं होती हैं।''

जैसा कि हमने ऊपर देखा किसी काम को कर पाने की क्षमता को कौशल कहते हैं। पेंसिल छीलने को कौशल या कौशलात्मक ज्ञान कहेंगे। हम कैसे जानेंगे कि अमुक बच्चे को पेंसिल छीलना आता है? कोई बच्चा पेंसिल छीलना सीखा अथवा नहीं, और कितना सीखा यह जानने के लिए उससे पेंसिल छिलवाकर देखा जा सकता है। यदि वह पेंसिल छील पाता है तो हम कहेंगे कि इसे पेंसिल छीलना आता है और यदि नहीं छील

पाता है तो कहेंगे कि छीलना नही आता। जब उसने पेंसिल छीली तो यह भी कहा जा सकता है कि उसने पेंसिल अच्छी छीली अथवा खराब छीली। लेकिन क्या बच्चे के पेंसिल छीलने के कार्य को सत्य या असत्य भी कहा जा सकता है? क्या हम यह कह सकते हैं कि बच्चे ने असत्य पेंसिल छीली है? शायद ही कोई ऐसा कहेगा और यदि कोई ऐसा कहे भी तो हम कहेंगे कि यह कुछ गड़बड़ बात कर रहा है। अर्थात् पेंसिल छीलने के कार्य के मामले में सत्य या असत्य होने का सवाल नहीं उठता।

लेकिन कौशल से जुड़े कार्यों के संदर्भ में एक भिन्न प्रकार से सत्य–असत्य का सवाल उठ सकता है। हमने देखा कि पेंसिल छीलने के कार्य को सत्य अथवा असत्य नहीं कहा जा सकता। उसे अच्छा या खराब तो कहा जा सकता है। अर्थात् सत्य–असत्य का दावा पेंसिल छीलने के कार्य या पेंसिल छीलने के कौशल के बारे में नहीं है। लेकिन यदि पेंसिल छीलने के बारे में भाषा में कोई दावा करे तो सत्य–असत्य का सवाल उठ सकता है। उदाहरण के लिए, यदि राकेश संजय से कहे, ''सुमन को पेंसिल छीलना आता है।'' इस वाक्य के माध्यम से किए जा रहे दावे को सत्य या असत्य कहा जा सकता है। संजय कह सकता है कि ''सुमन को पेंसिल छीलना आता है।'' यह वाक्य सत्य अथवा असत्य हो सकता है। लेकिन यहां सत्य–असत्य का विवरण राकेश की कही बात के बारे में हैं, सुमन की पेंसिल छीलने की क्रिया के बारे में नहीं।

अब हम दूसरे उदाहरण को लेते हैं, विभिन्न प्रकार की पत्तियों का अवलोकन करना सिखाना। पत्तियों के अवलोकन को भी कौशल कहा जा सकता है और इस कौशल में और बहुत से कौशल शामिल हैं। उदाहरण के लिए, पत्तियों को तोड़ना, इन्हें सही तरह से देखना, जो देखा उसे ठीक से लिख पाना, आदि। पत्तियों का अवलोकन ठीक से किया भी जा सकता है और नहीं भी किया जा सकता। अवलोकन के कार्य को भी पेंसिल छीलने की तरह सत्य या असत्य नहीं कहा जा सकता। पत्तियों के अवलोकन में यह भी शामिल है कि पत्तियों की पहचान हो। पत्ती मांगने पर बच्चा किसी पौधे का तना नहीं उठाकर ले आए, अर्थात् बच्चे के पास पत्ती की अवधारणा हो। अवलोकन में जो देखा उसे दूसरों को बताने के लिए भाषा में अभिव्यक्त भी करना होता है। अवलोकन में जो भी हम देखते और महसूस करते हैं वह परिचयात्मक ज्ञान है। इनकी भी सत्यता–असत्यता की जांच का सवाल नहीं उठता। वह तो हमें महसूस होता है या अनुभव होता है। लेकिन जैसे ही इस परिचयात्मक ज्ञान को भाषा में अभिव्यक्त करते हैं वह तथ्यात्मक ज्ञान की श्रेणी में चला जाता है और वहां सत्य अथवा असत्य के सवाल उठने लगते हैं। जब किसी पत्ती के बारे में किसी ने कहा कि यह चिकनी है, हरी है और इसके बीच में मोटी शिरा है, वैसे ही यह तथ्यात्मक ज्ञान हो जाता है। यदि कोई यह देखना चाहे कि आपने पत्ती को ठीक से देखा है या नहीं अथवा पत्ती के अवलोकन में जो देखा है उसका वर्णन ठीक से किया है या नहीं, तो पत्ती के बारे में कही गई बातें या तो सत्य होंगी अथवा असत्य। या इसी प्रकार कोई बहुत सी पत्तियों को देखकर कहे कि ''सभी पत्तियों में शिराएं होती हैं।'' तो पत्तियों के बारे में कुछ जानने का दावा करते हैं यह दावा सत्य या असत्य हो सकता है।

इस प्रकार किए गए दावों की सत्यता–असत्यता को जांचने की आवश्यकता पड़ती है। मान लीजिए, हमने कहा कि ''सभी पत्तियों में शिराएं होती हैं।'' अब इस दावे को जांचने के लिए प्रमाणों की आवश्यकता होगी। प्रमाण की आवश्यकता ज्ञान के 'सार्वजनिक' या 'सामाजिक' होने की वजह से भी हो सकती है और अनेक बार स्वयं व्यक्ति के लिए भी। सार्वजनिक या सामाजिक होने से मतलब ऐसा विश्वास जिसे एक ही नहीं अनेक व्यक्ति मानते हैं। उदाहरण के लिए, ''पत्तियों में शिराएं होती हैं'', ये किसी एक के मानने की बात नहीं है। यदि कल कोई कहे कि पहाड़ों पर पेड़ होने का कारण आकाश गंगा है और वह कहे कि मैं तो इसे मानता हूं, और मेरे लिए यह सत्य ज्ञान है। इस बात पर कोई भी विश्वास नहीं करेगा। उससे पूछा जाएगा कि इसके लिए प्रमाण क्या है? यदि वह कहे कि मैं प्रमाण–व्रमाण में यकीन नहीं करता लेकिन मैं इसे सत्य मानता हूं, तो उस व्यक्ति की बात को कोई तवज्जो नहीं देगा। लेकिन फिर भी यदि कोई व्यक्ति कहेगा तो यह तो पूछना ही होगा कि बताइए कि यह सब आपको पता कैसे चला?

दूसरे, अनेक बार स्वयं व्यक्ति के विश्वास को परखने के लिए भी प्रमाण की जरूरत होती है। मान लीजिए, मैंने अपने कमरे के बाहर एक ध्वनि सुनी और वह ध्वनि किसी चीज के फटने की थी। मुझे ध्वनि सुनाई पड़ी और मैंने सोचा कि मटका फूटा होगा। लेकिन मटका ही फूटा है, इसे भी जांचने की आवश्यकता होगी। ये भी हो सकता है कि कोई गुब्बारा फूटा हो। अतः किसी भी विश्वास को, जिसे हम ज्ञान मानते हैं, परखने के लिए प्रमाणों की आवश्यकता होती है।

कुछ प्रश्न–

- ***अच्छी शिक्षा के बारे में क्या कहा गया है?***
- ***परिचयात्मक ज्ञान कब तथ्यात्मक ज्ञान की श्रेणी में चला जाता है? एक उदाहरण देकर बताइए जब परिचयात्मक ज्ञान तथ्यात्मक ज्ञान की श्रेणी मे चला गया है।***

भाग 2

3.3 ज्ञान और प्रमाण

हम अपने रोजमर्रा के जीवन में बहुत सी चीजों को मानकर चलते हैं। अनेक चीजों पर हमें कभी भी संदेह नहीं होता जबकि अनेक पर स्वयं के मन में अथवा दूसरे लोगों द्वारा उठाए जाने वाले सवालों के माध्यम से संदेह पैदा होता है। लेकिन हम जो मानकर चलते हैं वह सत्य है, इसको हम तय कैसे करते हैं?

कुछ प्रश्न–

- ***नीचे कुछ उदाहरण दिए गए है। आप इन वाक्यों में से किसे आप सत्य मानेगे और किसे असत्य तथा इन्हें सत्य या असत्य मानने का क्या आधार हैं?***

1. पृथ्वी पर इंसानों के अलावा भी बहुत से जीव पाए जाते हैं।

2. इस दुनिया में बहुत से रंग होते हैं।

3. प्रेमचन्द ने गोदान नाम का उपन्यास लिखा था।

4. दुनिया में चमत्कार होते हैं।

5. कल भी सूरज उगेगा।

6. अमृता शेरगिल की पेंटिग 'तीन औरतें' बहुत सुन्दर है।

7. महात्मा गांधी की हत्या की गई थी।

8. सभी सजीव सांस लेते हैं और वृद्धि करते हैं।

9. 2 + 2 = 4 होते हैं।

10. यदि ए और बी बराबर हैं और बी और सी बराबर हैं तो ए और सी भी बराबर होंगे।

11. भारत में मध्यकाल में मुगल बादशाह अकबर हुआ था।

12. सभी प्राणियों में आत्मा होती है और आत्मा अजर–अमर होती है।

अब हम ऊपर दिए गए उदाहरणों पर अलग–अलग चर्चा कर यह जानने व समझने का प्रयास करेंगे वह

सत्य है या असत्य। पहले बिन्दु पर हम कहेंगे कि हमने इंसानों के अलावा बहुत से जीव इस धरती पर देखे हैं। हमने कुत्ता, घोड़ा, गधा, कबूतर, मोर, मछली, दीमक आदि–आदि देखे हैं। दूसरे बिन्दु पर हम कहेंगे कि रंग भी हमने देखे हैं। तीसरे बिन्दु पर हम कहेंगे कि प्रेमचन्द का गोदान हमने पढ़ा है और उस किताब को देखा है। इसी तरह हम देख सकते हैं कि हमारे बहुत से विश्वास ऐसे हैं जो सीधे–सीधे हमारे व्यक्तिगत अनुभवों से जुड़े हैं। बहुत से विश्वास इस तरह के हो सकते हैं कि अभी तक हमारे अनुभव में ऐसा ही होता आया है। उदाहरण के लिए, ''कल भी सूरज उगेगा।'' हमने अभी तक यही देखा है कि हर रोज सुबह, सूरज उगता है। आज तक इससे उल्टा अनुभव नहीं हुआ। अतः हम मानकर चलते हैं कि कल भी ऐसा ही होगा। यहां हम आज तक के अपने अनुभव से कल के लिए निष्कर्ष निकाल रहे हैं।

दूसरे तरह के विश्वास वे हैं जो कि हम दूसरे लोगों के माध्यम से जानते हैं। सभी सजीव सांस लेते हैं, इस विश्वास में कुछ अनुभव हमारा भी हो सकता है, हम स्वयं सांस लेते हैं और हमने सांस कुछ सजीवों को सांस लेते हुए देखा है लेकिन बहुत से वैज्ञानिकों ने सजीवों पर प्रयोग करके भी यह बताया हैं। ''महात्मा गांधी की हत्या की गई थी।'' अथवा ''भारत में मध्यकाल में मुगल बादशाह अकबर हुआ था।'' इन बातों को हम सत्य मानते हैं और मानने का आधार इतिहासकारों द्वारा दिए गए साक्ष्य हैं। क्योंकि ये दोनों घटनाएं अतीत में घटी हैं और हम प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए उस समय में नहीं हो सकते थे।

इसी तरह बहुत सी बातों के बारे में हम तर्क के द्वारा सत्य अथवा असत्य के दावे को जांचते हैं। ''2 + 2= 4 होते हैं।'' अथवा ''यदि ए और बी बराबर हैं और बी और सी बराबर हैं तो ए और सी भी बराबर होंगे।'' इस तरह के दावों को हम तर्कबुद्धि के सहारे से जांचते हैं।

लेकिन उपरोक्त सूची में कुछ ऐसे दावे भी हैं जिनके बारे में सत्य–असत्य तय कर पाना इतना आसान नहीं लगता। हम निम्न दो दावों की सत्यता को कैसे जांचेंगे–''दुनिया में चमत्कार होते हैं।'' अथवा सभी प्राणियों में आत्मा होती है और आत्मा अजर–अमर होती है।'' इनके लिए क्या प्रमाण होगें? इसके लिए आगे हम न्याय दर्शन के संदर्भ में यह देखेंगे कि हमें जो भी ज्ञान होता है वह कैसे होता है।

भारतीय दर्शन परंपरा में ज्ञान के अनेक प्रकार एवं उनकी प्राप्ति के अनेक साधन माने गए हैं। यह माना जाता है कि इंसान को होने वाला ज्ञान यथार्थ भी हो सकता है और अयथार्थ भी। अर्थात् ज्ञान का विषय जैसा है उसका उसी रूप में ज्ञान यथार्थ ज्ञान कहलाता है एवं विषय से भिन्न अथवा विपरीत ज्ञान का होना अयथार्थ ज्ञान कहलाता है। उदाहरण के लिए, चूने के पानी को दूध समझ लेना अयथार्थ ज्ञान होगा जबकि चूने के पानी को चूने का पानी समझना यथार्थ ज्ञान होगा। भारतीय दर्शन परंपरा में यथार्थ ज्ञान को प्रमा तथा अयथार्थ ज्ञान को अप्रमा भी कहा जाता है। प्रमा अथवा यथार्थ ज्ञान के लिए तीन चीजों का होना आवश्यक है। एक, प्रमाता, अर्थात् यथार्थ ज्ञान को जानने वाला जिसे हमने पूर्व ज्ञाता भी कहा है। दूसरा, प्रमेय, अर्थात् विषय जिसका ज्ञान होता है और जिसे हमने पूर्व में ज्ञेय कहा है। तीसरा और अन्तिम, प्रमाण अर्थात् ज्ञान का साधन। यदि शाब्दिक रूप में समझें तो प्रमा (यथार्थ ज्ञान) के करण (साधन) को ही प्रमाण कहा जाता है।

निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि ऐसा ज्ञान जिसे इंसान सत्य मानता है उसके लिए किसी न किसी तरह के प्रमाण होते हैं। इस भाग में हम भारतीय दर्शन की एक शाखा न्याय दर्शन के चार प्रमाणों की चर्चा करेंगे। ये हैं–प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। यह समझने का प्रयास करेंगे कि न्याय दर्शन इन्हें कैसे देखता है।

प्रमाणों पर चर्चा से पहले भारतीय दर्शन परंपरा के बारे में कुछ सामान्य बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। भारतीय दर्शन परंपरा में मुख्य रूप से नौ दार्शनिक मत माने जाते हैं। ये दर्शन हैं–बौद्ध, जैन, चार्वाक, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा एवं वेदान्त। किसी भी भारतीय दर्शन का इतिहास ऐसा नहीं है जो सिर्फ प्रवर्तक

तक सीमित रहा हो। कालान्तर में प्रत्येक दर्शन में अनेक शाखाएं–उपशाखाएं अस्तित्व में आई एवं एक ही दर्शन में हमें लम्बी परंपरा मिलती है। दर्शन की उसी शाखा के साथ थोड़ी मत भिन्नता के साथ आगे कुछ दार्शनिकों ने काम किया और उनके चिन्तन को उसी शाखा के तहत देखा जाता है। न्याय दर्शन पर चर्चा करते हुए भी इस बात का ध्यान रखने की जरूरत है। न्याय दर्शन के प्रर्वतक गौतम ऋषि माने जाते हैं। गौतम ऋषि के बाद अनेक दार्शनिक हुए हैं जिन्होंने न्याय दर्शन के विकास में योगदान किया है। और इसीलिए ज्ञान के प्रमाणों की समझ में भी कई जगह भेद मिलता है। यहां हम आरंभिक परिचय के लिए सरल सा परिचय दे रहे हैं–

3.3.1 प्रत्यक्ष

हम जिस दुनिया में रहते हैं उसके बारे में हमारे पास बहुत सा ज्ञान होता है। हम जानते हैं कि हमारे आसपास बहुत से पेड़–पौधे, जीव–जन्तु, पहाड़ आदि हैं और दूर ही सही, हम जानते हैं कि चांद–तारे भी हैं। कमरे में बैठे हुए हमें बहुत सी आवाजें सुनाई पड़ती हैं। सर्दी में हवा ठण्डी और गर्मी में लू के थपेड़े लगते हैं। खाने की बहुत सी चीजों के स्वाद भी हम आए दिन लेते हैं। बहुत सी वस्तुओं के आकार–प्रकार आदि भी हमें मालूम होते हैं। इसी तरह की अन्य बहुत सी बातें हम जानते हैं। क्या हमने कभी सोचा है कि कैसे हम इन चीजों के बारे में जान पाते हैं?

आमतौर पर हम देखते हैं कि भले ही इन्द्रियों से जानी जा सकने वाली वस्तुओं के बारे में कोई विश्वसनीय व्यक्ति बताए तो भी हम चाहते हैं कि स्वयं अपने अनुभव से उस वस्तु को जानें। स्वयं के अनुभव से जान लेने के बाद फिर उसे जानने के लिए किसी अन्य साधन की जरूरत नहीं रहती। स्वयं के अनुभव के बाद उस वस्तु के बारे में होने वाले ज्ञान में एक किस्म की आधिकारिकता और विश्वसनीयता महसूस होती है।

ऊपर कही बातों के बारे में हम सभी कह सकते हैं कि इन सब का हमें अनुभव होता है। लेकिन अनुभव का क्या अर्थ है और ये होते कैसे हैं?

किन चीजों के बारे में हम अपने अनुभवों से जान सकते हैं? हम जानते हैं कि हमारे अधिकांश अनुभव हमारी पांच ज्ञानेन्द्रियों– आंख, कान, नाक, त्वचा एवं जीभ– के माध्यम से होते हैं। जब कोई वस्तु हमारी किसी ज्ञानेन्द्रिय के संपर्क में आती है तब जाकर उसके गुणों, रूप अथवा आकार के बारे हमें पता चलता है। उदाहरण के लिए, जब मैं अपनी टेबिल को छूता हूं तो छूने पर वह मुझे कठोर और चिकनी महसूस होती है। जैसे ही मेरी त्वचा के संपर्क में टेबिल आती है तो मुझे टेबिल के कठोर और चिकनी होने का ज्ञान होता है। इसी तरह टेबिल को खटखटाने पर आवाज भी आती है और उसे भी मैं अपने कानों से सुन सकता हूं। इस तरह किसी वस्तु के ज्ञानेन्द्रियों के संपर्क में आने से होने वाले ज्ञान को भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान कहा जाता है और प्रत्यक्ष को ज्ञान अर्जन के प्रमुख साधन के रूप में माना जाता है।

न्याय दर्शन में भी सबसे प्रमुख प्रमाण प्रत्यक्ष को माना गया है। आम बोलचाल में प्रत्यक्ष के प्रयोग से ऐसा महसूस होता है कि प्रत्यक्ष ज्ञान सिर्फ आंख के माध्यम होने वाले ज्ञान तक ही सीमित है। लेकिन वस्तुतः प्रत्यक्ष ज्ञान पांच ज्ञानेन्द्रियों और हमारी आन्तरिक अनुभूतियों के माध्यम से होने वाला समस्त ज्ञान है। पहले हम ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से होने वाले प्रत्यक्ष ज्ञान की चर्चा करेंगे और उसके बाद आन्तरिक अनुभूतियों के बारे में।

न्याय दर्शन का मानना है कि प्रत्यक्ष इन्द्रियों के माध्यम से साक्षात् होने वाला ज्ञान है और जिसमें किसी अन्य माध्यम अथवा साधन की जरूरत नहीं होती। अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान होने के लिए पहले से किसी प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। यह असंदिग्ध ज्ञान होता है अर्थात् इस पर संदेह नहीं किया जा सकता। यदि प्रत्यक्ष के माध्यम से होने वाले ज्ञान के बारे में किसी प्रकार का संदेह की संभावना होगी तो उसे यथार्थ ज्ञान नहीं माना जाएगा। यह ज्ञान इन्द्रियों के संपर्क में किसी पदार्थ अथवा वस्तु के आने से उत्पन्न होता है। हमारे आसपास की चीजों अथवा बाहरी दुनिया के बारे में होने वाला अधिकांश ज्ञान प्रत्यक्ष के माध्यम से होता है। हरेक

इंसान को होने वाला प्रत्यक्ष ज्ञान ऊपर से देखने में लग सकता है कि बहुत ही सामान्य है लेकिन यदि हम ध्यान दें तो इसमें कुछ खास चीजें निहित हैं जिन्हें साधारण बातचीत में हम लगभग ध्यान नहीं देते। मान लीजिए, मैं इस समय अपने कमरे की खिड़की से पेड़ों को देख पा रहा हूं, पक्षियों की आवाज सुन पा रहा हूं, बारिश होने पर मिट्‌टी की गंध महसूस कर पा रहा हूं, झोंके से आने वाली ठण्डी हवा महसूस कर पा रहा हूं और बूंदों की टप–टप भी सुन पा रहा हूं। इन सभी घटनाओं में ऐसी क्या चीजें हैं जो कि सामान्य हैं अथवा जिनके होने से यह प्रत्यक्ष ज्ञान संभव हो पा रहा है? यदि इन उदाहरणों पर ध्यान दें तो हम पाएंगे कि प्रत्यक्ष ज्ञान होने के लिए कुछ अनिवार्य शर्तें हैं। इनमें से पहली अनिवार्य शर्त है– इन्द्रियों का होना। कोई भी व्यक्ति यह नहीं कहेगा कि इन्द्रियों के बिना प्रत्यक्ष ज्ञान संभव हो पाएगा।

प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए दूसरी शर्त है, किसी ज्ञेय पदार्थ अथवा वस्तु का होना। क्या हम बिना ज्ञेय पदार्थ अथवा वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान की कल्पना कर सकते हैं? यदि सिर्फ ज्ञानेन्द्रियां हों लेकिन उसके आसपास किसी तरह की वस्तुएं अथवा पदार्थ नहीं हों तो क्या प्रत्यक्ष ज्ञान संभव होगा? अतः प्रत्यक्ष के लिए पदार्थों का होना आवश्यक है। इसके अलावा तीसरी शर्त है–इन्द्रियों एवं पदार्थ का संयोग होना। मान लीजिए, किसी दीवार के पीछे कोई वस्तु रखी है और उस वस्तु से न तो कोई गंध आ रही है, न ही कोई आवाज आ रही है तो क्या हमें उस वस्तु का ज्ञान हो पाएगा? अतः प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए विषय का ज्ञानेन्द्रियों के साथ संपर्क या संयोग होना जरूरी है।

लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञान होने का मामला इतना सरल नहीं है। इसके साथ ही कुछ और चीजें हैं जिनके बिना प्रत्यक्ष ज्ञान संभव नहीं होगा। मान लीजिए, मैं अपने कमरे में तल्लीन होकर कोई रोचक कहानी पढ़ रहा हूं। तमाम चीजें मेरी ज्ञानेन्द्रियों के संपर्क में हैं जैसे कि कि पंखा चल रहा है और बाहर विभिन्न आवाजें भी हो रही हैं और रसोई में खाना भी पक रहा है। क्या मेरे आसपास घट रही इन सभी चीजों का मुझे ज्ञान होगा? इसे दूसरे तरह से कहें तो, क्या वस्तुओं के ज्ञानेन्द्रियों के संपर्क में होने मात्र से ज्ञान हो जाएगा?

इस समस्या के संदर्भ में यह माना गया है कि प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए सचेत रूप से मन का जुड़ाव भी उतना ही आवश्यक है। अर्थात् यदि मेरे आसपास होने वाली घटनाओं पर मेरा ध्यान नहीं होगा तो उनका ज्ञान भी मुझे नहीं होगा। अतः प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए मन का जुड़ाव होना जरूरी है। इसमें यह भी समस्या है कि जब मैंने कहा कि पंखा चल रहा है, बाहर आवाजें आ रही हैं और रसोई में खाना भी पक रहा है; तो इन सभी चीजों के बारे में भी मुझे तभी पता चलेगा जब मैं इन पर ध्यान केन्द्रित करूंगा। इसी से जुड़ी एक अन्य समस्या यह है कि क्या एक समय में कोई व्यक्ति अपनी पांचों ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होने वाले सभी इन्द्रिय संवेदनों के प्रति सचेत हो सकता है? दूसरे शब्दों में, क्या एक समय में पांचों ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त हो रहे इन्द्रिय संवेदनों का ज्ञान हो सकता है? एक समय में एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों का अपने–अपने विषयों से संपर्क या संबंध होने पर भी उन सब विषयों का एक साथ प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो पाता। जिस इन्द्रिय संवेदन के प्रति हमारा मन सचेत होता है उसी का ज्ञान हमें उस समय में हो पाता है। क्योंकि एक समय में मन का संपर्क एक ही इन्द्रिय से हो सकता है और बिना मन के साथ संपर्क के इन्द्रिय ज्ञान ग्रहण नहीं हो सकता। इसका अर्थ हुआ कि प्रत्येक प्रत्यक्ष ज्ञान में मन का संपर्क आवश्यक है।

कुछ प्रश्न–

- ***अधूरे वाक्यों को पूरा करें***
    1. हमारे अधिकांश अनुभव हमारी पांच ....
    2. न्याय दर्शन का मानना है कि ....
    3. प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए पहली अनिवार्य शर्त है .... और दूसरी
- ***प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए सचेत रूप से मन का जुडाव भी जरूरी है। ऐसा क्यों कहा गया है?***

न्याय दर्शन के प्रारंभ में प्रत्यक्ष ज्ञान को सिर्फ इन्द्रिय अनुभव तक ही सीमित माना जाता था और जैसा कि पहले भी कहा गया है कि ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से होने वाला साक्षात् ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान की श्रेणी में आता है और जिसके होने के लिए किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। जिस प्रकार आकाश में सूरज के ज्ञान के लिए अथवा टेबिल पर रखी किताब के ज्ञान के लिए किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती लेकिन क्या हमें होने वाले सुख–दुख, इच्छाओं, दर्द की अनुभूति एवं खिन्नता आदि के अनुभव के लिए भी किसी तरह के अन्य ज्ञान की आवश्यकता होती है? क्या इनका ज्ञान भी हमें साक्षात् नहीं होता? न्याय दर्शन में यह माना गया कि इस तरह होने वाला ज्ञान भी प्रत्यक्ष ज्ञान ही है। इनका सभी चीजों का ज्ञान भी हमें साक्षात् होता है और इसके लिए इन्द्रियों की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। बिना किसी अन्य ज्ञान की सहायता के तुरंत ग्रहण होने वाले ज्ञान और इन्द्रियों के बिना साक्षात् होने वाले ज्ञान की धारणा के साथ ही ईश्वर और आत्मा में यकीन करने के कारण न्याय दर्शन को यह मानना पड़ता है कि आत्मा और परमात्मा का ज्ञान भी प्रत्यक्ष होता है। आत्मा और परमात्मा का ज्ञान के लिए किसी अन्य साधन की जरूरत नहीं होती।

न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान के भेद किए गए हैं। एक प्रकार का भेद **लौकिक** और **अलौकिक प्रत्यक्ष** का किया गया है। जब इंद्रिय का संयोग किसी वस्तु के साथ होता है अथवा मानसिक अनुभूतियों का मन के साथ संयोग होता है तो वह लौकिक प्रत्यक्ष होता है। जैसे कि हमें अपनी टेबिल पर रखी किताब का या बाहर खड़े पेड़ का ज्ञान होता है या सुख, दुख आदि का ज्ञान होता है। अलौकिक प्रत्यक्ष में हम किसी वस्तु से संपर्क के साथ–साथ उनके सामान्य लक्षण को भी जान रहे होते हैं। क्योंकि सामान्य का लक्षण किसी इन्द्रिय के माध्यम से संभव नहीं है। इसी तरह अलौकिक प्रत्यक्ष में यह भी माना जाता है कि भूत एवं भविष्य, गूढ़ एवं सूक्ष्म तथा नजदीक एवं दूर की समस्त वस्तुओं का ज्ञान होता है । न्याय दर्शन में यह माना जाता है कि इस तरह का ज्ञान ऐसे व्यक्तिओं को होता है जिन्होंने योगाभ्यास किया होता है। न्याय दर्शन मानता है कि आत्मा और परमात्मा का ज्ञान भी योगियों को होता है।

हम विस्तार में नहीं जाएंगे लेकिन न्याय दर्शन में लौकिक प्रत्यक्ष के पुनः भेद किए गए हैं। एक प्रकार है **निर्विकल्पक प्रत्यक्ष** और दूसरा है **सविकल्पक प्रत्यक्ष** एवं तीसरा है **प्रत्यभिज्ञा**। प्रत्यक्ष ज्ञान का अविकसित अथवा विकसित रूप इस भेद का आधार है। प्रत्यक्ष के अविकसित रूप को निर्विकल्पक प्रत्यक्ष कहते हैं और विकसित रूप को सविकल्पक प्रत्यक्ष कहते हैं। इन्द्रिय संपर्क में आने के बाद जब किसी वस्तु की स्पष्ट प्रतीति हमें नहीं होती लेकिन हमें फिर भी वस्तु के रंग–रूप आदि के बारे में जो धुंधला सा ज्ञान होता है वह निर्विकल्पक प्रत्यक्ष होता है। अर्थात निर्विकल्पक प्रत्यक्ष में हमारी इन्द्रियों को कुछ महसूस तो हो रहा है, पर न तो हम ठीक से इस बारे में सचेत हैं कि जो महसूस हो रहा है वह कैसा है, न ही इस बारे में कि वह क्या है। जैसे धुंधलके में अपने घर से बाहर किसी आकृति पर पहली नजर पड़ने पर हम महसूस करते हैं कि कोई लम्बी हिलती–डुलती सी चीज नजर आ रही है। लेकिन मन में कोई विकल्प नहीं बनते कि यह इंसान है या गाय है या भूत है। न ही इस आकृति के बारे में साफ छवि हमारे में बनती है। क्योंकि कोई विकल्प नहीं बनता अतः इसे निर्विकल्प प्रत्यक्ष कहते हैं। लेकिन जैसे ही कुछ क्षण पश्चात् उस वस्तु का हमें स्पष्ट भान होता है तब वह सविकल्पक ज्ञान हो जाता है। सविकल्प प्रत्यक्ष में हम वस्तु के रंग/रूप/ध्वनि आदि के बारे में जान पाते हैं कि वह हमें कैसी महसूस हो रही हैं। साथ ही इसे इस हिलती–डुलती आकृति को इंसान के रूप में पहचान भी लेते हैं। प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष तब बनता है जब हम उसे किसी पहले देखी चीज के रूप में पहचान लें। शुरू में जिसे धुंधली आकृति के रूप में देखा वह निर्विकल्प प्रत्यक्ष था, फिर जब आकृति साफ हो गई और पहचाना कि इंसान है तो सविकल्प प्रत्यक्ष बना और जब उसे उसी आदमी के रूप में पहचाना जो आज सुबह बाजार में झाड़ू बेचते हुए दिखा था तो वह प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष हुआ।

हालांकि हमने देखा कि प्रत्यक्ष के माध्यम से हमें अपने आसपास की दुनिया के बारे में बहुत सा ज्ञान मिलता है। लेकिन प्रत्यक्ष की कुछ सीमाएं भी हैं। पहली सीमा तो यही है कि इसके लिए वस्तु का इन्द्रिय के संपर्क में होना जरूरी है। ऐसी वस्तुएं जो कि इन्द्रिय संपर्क में नहीं हैं उनका ज्ञान प्रत्यक्ष के माध्यम से नहीं हो सकता। दूसरे प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय के संपर्क की स्थिति भी एक जैसी नहीं होती। त्वचा के स्पर्श के लिए वस्तु का एकदम नजदीक होना जरूरी है। अर्थात् जब तक किसी वस्तु का स्पर्श नहीं मिलेगा तब तक उसके बारे में ज्ञान नहीं होगा। आंख के माध्यम से हम अपेक्षाकृत दूर तक देख सकते हैं लेकिन इसकी भी एक सीमा है। आंख से भी हम निश्चित दूरी तक ही देख सकते हैं। कान से भी हम प्रत्येक आवाज और दूर से होने वाली आवाजों को नहीं सुन सकते। जीभ के लिए भी चखने के लिए वस्तु का संपर्क आवश्यक है और हरेक चीज का प्रत्येक व्यक्ति चखकर भी ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। और इसी प्रकार नाक की भी सीमा है। प्रत्यक्ष की एक सीमा यह भी है कि यह किसी वस्तु का समग्रता में ज्ञान नहीं करा सकता। उदाहरण के लिए, यदि हम टेबिल के सामने बैठे हैं तो हम टेबिल का एक ही हिस्सा देख सकते हैं। पूरी टेबिल को एक साथ नहीं देख सकते। यदि हमारी नजर से छुपे टेबिल के हिस्से को हम देखना चाहते हैं तो यह संभव है कि हम दूसरी तरफ चले जाएं और वह हिस्सा देख लें लेकिन फिर भी पहले वाला हिस्सा तो नहीं ही दिखेगा। अतः किसी वस्तु को एक साथ समग्रता में भी प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता।

हालांकि न्याय दर्शन में माना गया है कि भूत एवं भविष्य, सूक्ष्म एवं गूढ़ तथा नजदीक एवं दूर स्थित वस्तुओं का ज्ञान प्रत्यक्ष के माध्यम से होता है। लेकिन उसकी शर्त है कि वह योगाभ्यास करने वाले लोगों के लिए संभव है। यदि इसे सत्य मान भी लें तो यह तो तय है कि इस तरह का ज्ञान आम व्यक्ति का ज्ञान नहीं होगा। जबकि किसी भी तरह के ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि उसे आम व्यक्ति प्राप्त कर सके। लेकिन आम व्यक्ति भी तो अतीत के बारे में ज्ञान रखता है और न सिर्फ अपने अतीत का बल्कि समाज के अतीत का ज्ञान भी उसे होता है। अतः अतीत के ऐसे सामान्य ज्ञान को जो कि योगाभ्यास की सीमा में बंधा नहीं है, प्रत्यक्ष के माध्यम से कैसे जाना जा सकता है?

कुछ प्रश्न–

- ***प्रत्यक्ष प्रमाण की कौन कौन सी सीमाएँ है?***

हालांकि न्याय दर्शन मानता है कि वस्तु का यथार्थ ज्ञान ही सही ज्ञान अथवा प्रमा होता है। लेकिन इसके बावजूद अनेक मामलों में यथार्थ ज्ञान के होने को तय कर पाना भी आसान नहीं होता है। उदाहरण के लिए, हमें हर रोज यह प्रतीत होता है कि सूरज का उदय एवं अस्त हो रहा है यानी ऐसा लगता है कि जैसे सूरज पृथ्वी का चक्कर काट रहा है। क्या हम इसे सत्य अथवा यथार्थ ज्ञान मानेंगे?

इसीलिए दुनिया के बारे में ज्ञान अर्जित करने के लिए तमाम दर्शनों में प्रत्यक्ष के अलावा भी प्रमाण माने गए हैं। आगे हम अनुमान प्रमाण की चर्चा करेंगे।

3.3.2 अनुमान

प्रचलित भाषा में अनुमान का अर्थ अटकल लगाने, अंदाजा लगाने से लिया जाता है। यदि आपसे यह पूछा जाए कि बाहर खड़े पेड़ में कितनी पत्तियां हैं या आसमान में कितने तारे हैं? इस सवाल का जबाव देने के लिए हम क्या करेंगे? यदि हम इन सवालों को टालना नहीं चाहते तो हमें इनका एक तरह का जबाव तो देना होगा। उन जबावों के बारे में कोई कह सकता है कि ये अटकल या अंदाजा भर हैं। संभव है कि हमारी अटकल सत्य के करीब हो और यह भी सत्य है कि सत्य से कोसों दूर हो। इस तरह अटकल लगाने में सत्य तक पहुंचने

का कोई ठोस आधार हमारे पास नहीं होता। ज्ञान के प्रमाण के रूप में अनुमान का अर्थ इस तरह कि अटकल लगाना नहीं है। इसके लिए एक दूसरा उदाहरण लेते हैं, यदि कोई हमारा ध्यान कहीं दूर उठते हुए धुंए की तरफ दिलाए तो हम कह उठते हैं कि वहां आग लगी है। यदि जो दिख रहा है वह सचमुच धुआँ ही है धूल का गुबार आदि नहीं। क्या हमारे द्वारा धुएं को देखकर आग होने के नतीजे तक पहुंचने पर कोई संदेह करेगा? हम आए दिन इस तरह की अटकलें भी लगाते हैं और किसी एक चीज को देखकर दूसरी चीज के बारे में पता लगाते हैं। जैसे कि हम दूर–दूर तक जमीन को गीला देखकर यह सहज ही मान लेते हैं कि बारिश हुई है या गिद्धों को उड़ता देखकर कह पड़ते हैं कि आसपास मरा हुआ जानवर पड़ा है या नदी में गंदला तेज बहता पानी देखकर मान लेते हैं कि कहीं ऊपर बारिश हुई है।

भारतीय दर्शन और न्याय दर्शन में एक चीज के ज्ञान से किसी ऐसी दूसरी चीज के ज्ञान पर पहुंचने को जिसे हम नहीं जानते, अनुमान कहते हैं। इस तरह का ज्ञान अटकल लगाने से भिन्न होता है और अनुमान के जरिए हम किसी ऐसे नतीजे पर पहुंचते हैं जिस पर हम सहज ही सत्य होने का विश्वास करते हैं। हालांकि जो व्यक्ति इस तरह एक चीज को देखकर दूसरे के बारे में अनुमान लगा रहा है; संभव है उससे यह पूछा जाए कि वह इस नतीजे पर कैसे पहुंचा तो वह इसका स्पष्ट जबाव नहीं दे पाए। लेकिन अनजाने ही सही वह अपनी तर्कबुद्धि या सहज बुद्धि से ज्ञान प्राप्ति के एक साधन–अनुमान– का इस्तेमाल कर रहा होता है।

न्याय दर्शन में अनुमान को बहुत ही महत्वपूर्ण प्रमाण माना गया है और इसे लेकर बहुत चिन्तन किया गया है। अब हम न्याय दर्शन की दृष्टि से अनुमान पर चर्चा करेंगे। न्याय दर्शन में यह माना जाता है कि अनुमान के माध्यम से हम निश्चयात्मक या असंदिग्ध ज्ञान पर पहुंचते हैं और यह ऐसा ज्ञान है जो ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से संभव नहीं है। अनुमान के द्वारा हम किसी अप्रत्यक्ष विषय के बारे में जानते हैं। उदाहरण के लिए, हमें कहीं दूर धुआँ दिखाई दिया और धुआँ देखकर यह अनुमान लगाया कि वहां आग है। यहां हमें धुएं का तो प्रत्यक्ष ज्ञान हो रहा है अर्थात् हमारी आंखे धुएं को देख पा रही है। लेकिन जिस चीज का अनुमान किया गया उसे उस समय हम किसी भी इन्द्रिय माध्यम से नहीं जान पा रहे हैं। इस उदाहरण में धुंए का ज्ञान प्रत्यक्ष हो रहा है और आग हमारे लिए अप्रत्यक्ष है अर्थात् किसी भी इन्द्रिय से हमें उसका ज्ञान नहीं हो रहा है। लेकिन सवाल यह उठता है कि हम इस तरह के निश्चय पर पहुंचते कैसे हैं?

न्याय दर्शन का मानना है कि **अनुमान में हम दो वस्तुओं के बीच के संबंध को देखते हैं और वह संबंध ऐसा होता है कि एक वस्तु के होने पर दूसरी का होना लाजमी होगा**। जैसे कि हमने पहले उदाहरण में धुएं और आग के संबंध को देखा है। क्या इस उदाहरण में ऐसा संभव है कि धुआँ तो हो लेकिन आग नहीं हो? यदि धुआँ होगा तो आग तो होगी ही। हम देखते हैं कि जब भी हम चूल्हे में आग जलाते हैं, जलाने की प्रक्रिया में आग के साथ धुआँ उठता है। क्या कभी चूल्हे में लकड़ी से आग जलाते हुए ऐसा हुआ है कि धुआँ तो उठा हो लेकिन वहां आग नहीं हो? यह संभव है कि आग तेज नहीं हो बस सुलग रही हो। अर्थात् यदि धुआँ है तो वहां आग का होना अनिवार्य है। दो चीजों के बीच इस तरह के संबंध को न्याय दर्शन में व्याप्ति कहा जाता है। इसका मतलब है कि एक चीज के होने पर दूसरी होगी ही। लेकिन क्या आग को देखकर धुआँ का अनुमान करना भी संभव है? उदाहरण के लिए, कहीं आग तो हो और वहां अनिवार्य रूप से धुआँ भी हो? शायद यह कहना मुश्किल होगा। क्योंकि अनेक बार आग बिना धुएं के भी हो सकती है। जैसे कि, आग का खिला हुआ कोयला या रसोई गैस की जलती हुई आग। इन दोनों उदाहरणों में आग तो है लेकिन धुआँ नहीं है और जब आग पूरी तरह से खिल चुकी होती है उस समय आग तो होती है लेकिन धुआँ नहीं होता। अर्थात् हम धुआँ को देखकर आग का अनुमान तो लगा सकते हैं लेकिन आग को देख कर धुआँ का अनुमान लगाना गलत होगा।

न्याय दर्शन में अनुमान के दो भेद बताए गए हैं। एक है स्वार्थ अनुमान और दूसरा है परार्थ अनुमान। स्वार्थ अनुमान का आशय है जिसे व्यक्ति स्वयं के लिए करता है। मान लीजिए, आप सुबह के वक्त घूमने या किसी काम से निकले। आपने आसपास की जमीन को दूर–दूर तक गीला देखा, पेड़ों को धुला–धुला देखा तो आप अनुमान लगाते हैं कि रात को बारिश हुई है। यहां आपने तुरंत अपने लिए यह अनुमान लगाया। अर्थात् दूसरों से इसे कहने की आवश्यकता नहीं है और इसलिए इसे क्रमबद्ध रूप से वाक्यों में व्यवस्थित नहीं करते। जबकि परार्थ अनुमान वह होता है जिसे हम दूसरों को बताते हैं। ऐसा करते हुए हम अनुमान को व्यवस्थित रूप से वाक्यों में क्रमबद्ध रूप में प्रकट करते हैं। यह आम बात है कि दूसरों को बताने और सहमत करने के लिए हमें बात को ज्यादा खोलकर और क्रमबद्ध रूप से कहना पड़ता है।

जिस तरह स्वार्थ अनुमान और परार्थ अनुमान का भेद किया गया है उसी प्रकार न्याय दर्शन में अनुमान के एक और भेद की बात की गई है। न्याय दर्शन में माना गया है कि जब हम वर्तमान की घटना को देखकर किसी भविष्य की घटना का अनुमान करते हैं। यह भी अनुमान का प्रकार है और इसे पूर्ववत अनुमान कहा जाता है। इसमें पहली घटना जो कि हमें दिखाई दे रही है उससे दूसरी घटना का अनुमान लगाया जाता है। उदाहरण के लिए, हम काले घने बादलों को देखकर यह अनुमान करें कि बारिश होगी। हम जानते हैं कि बारिश होने का अनिवार्य कारण बादल हैं। किसी भी सूरत में बादल के नहीं होने पर बारिश नहीं होगी। अतः हमने पहले कारण को देखा और उसके बाद उसके परिणाम का अनुमान लगाया। इसी तरह अनेक बार हम किसी घटना को देखकर उसके कारण का अनुमान भी करते हैं। इसे न्याय दर्शन में शेषवत अनुमान कहा जाता है। उदाहरण के लिए, दूर–दूर तक गीली जमीन को देखकर पहले हो चुकी बारिश का अनुमान करते हैं। यहां परिणाम यानी जमीन के गीली होने को पहले देखा और उससे बारिश का अनुमान लगाया। इन दोनों उदाहरणों में हम देख सकते हैं कि कार्य–कारण संबंध को देखा गया है। इसी तरह तीसरे प्रकार के अनुमान को न्याय दर्शन में सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहा जाता है। इसमें हम किसी घटना का प्रत्यक्ष नहीं करते बल्कि कुछ घटनाओं के आधार पर यह अनुमान करते हैं कि यदि ऐसा हो रहा है तो यह है। उदाहरण के लिए, हम चन्द्रमा को रोज देखते हैं। हमें उसकी गति का प्रत्यक्ष नहीं होता। लेकिन हम देखते हैं कि चन्द्रमा समय के अन्तराल पर अलग–अलग जगह पर दिखाई देता है। अतः चन्द्रमा गतिशील है। क्योंकि हम जानते हैं कि यदि किसी वस्तु का स्थान परिवर्तन हो रहा है तो वह गतिशील है चाहे वह चलता हुआ हमें न दिख रहा हो।

अनुमान को दूसरों के सामने किस रूप में प्रस्तुत करते हैं, इस बारे में न्याय दर्शन का मानना है कि इसे अभिव्यक्त करने के लिए पांच स्पष्ट वाक्यों में किसी के सामने रखा जाना चाहिए। इसे हम एक उदारहण के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे :

1. पहाड़ पर आग है।
2. क्योंकि वहां धुआँ है।
3. जहां–जहां धुआँ होता है वहां आग होती हैं; जैसे–चूल्हे, अंगीठी में।
4. पहाड़ पर वैसा ही धुआँ है।
5. अतः पहाड़ पर आग है।

अनुमान की प्रस्तुति को इस रूप में देखकर किसी को भी यह लग सकता है कि सामान्य रूप से शायद ही हम अनुमानों को इस तरीके से अभिव्यक्त करते हों लेकिन न्याय दर्शन का मानना है कि यदि दूसरों के सामने अनुमान को व्यक्त करना है तो यही उचित तरीका है। यदि अनुमान के ऊपर दिए गए उदाहरण को देखें तो

कुछ बातें नजर आती हैं। पहला वाक्य जिस विषय पर विचार किया जा रहा है उसे स्पष्ट रूप से सामने रखता है। दूसरे वाक्य में, पहले में जो कहा गया है उसका कारण बताया गया है कि आखिर ऐसा क्यों कहा जा रहा है। अर्थात् पहले वाक्य में कहा गया है कि पहाड़ पर आग है और ऐसा इसलिए कहा जा रहा है क्योंकि वहां धुंआ है। तीसरे वाक्य में एक धुंआ और आग के संबंध को बताते हुए एक सामान्य बात कही गई है और साथ ही उदाहरण भी दिया गया है। चौथे वाक्य में जो कहा गया है वह बताता है कि जो तीसरे वाक्य में चूल्हे और अंगीठी के लिए कहा गया है वह पहाड़ पर भी लागू होता है। और अन्तिम एवं पांचवें वाक्य में पहले चार वाक्यों में कही बातों के आधार पर निष्कर्ष है और यह पहले वाक्य का पुर्नकथन है।

इस उदाहरण में हम देख सकते हैं कि हमें धुंए का प्रत्यक्ष हो रहा है जिसके माध्यम से हम आग तक पहुंच रहे हैं। यह अनुमान प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित है। मान लीजिए, हमें धुंए का प्रत्यक्ष ही नहीं हो तो क्या हम आग का अनुमान कर पाएंगे? दूसरे, धुंए और आग के बीच ऐसा संबंध देखा गया है जो कि हमेशा ही पाया जाता है।

न्याय दर्शन अनुमान के प्रयोग के बारे में हमें आगाह भी करता है। उनका मानना है कि अनेक बार अनुमान का प्रयोग गलत तरीके से भी किया जाता है। अतः अनुमान करते हुए सावधानी करनी चाहिए। इसलिए न्याय दर्शन में ऐसी चीजों को भी चिन्हित किया गया है जिनसे अनुमान गलत लगाया जा सकता है। इस तरह की भ्रान्ति उत्पन्न करने वाली चीजों को न्याय दर्शन में हेत्वाभास कहा गया है। हेत्वाभास को समझने के लिए गलत अनुमान का एक उदाहरण लेते हैं–

1. कौआ बुद्धिमान प्राणी है।
2. क्योंकि उसके दो पैर है।
3. दो पैरों वाले प्राणी बुद्धिमान होते हैं, जैसे इंसान।
4. कौए के भी दो पैर हैं, इंसान की तरह।
5. अतः कौआ बुद्धिमान प्राणी है।

इस उदाहरण से हम सहज ही समझ सकते हैं कि इसमें क्या समस्या है। यहां जो सामान्य सिद्धांत माना गया है कि ''दो पैरों वाले प्राणी बुद्धिमान होते हैं'' वह ठीक नहीं है। अतः अनुमान से ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि जिस सामान्य सिद्धांत को अनुमान का आधार बनाया जा रहा है वह सत्य हो।

हमने देखा कि अनुमान ज्ञान का महत्वपूर्ण साधन है और इसे हम अनेक बार रोजमर्रा के जीवन में काम लेते हैं। लेकिन फिर भी इसकी कुछ समस्याएं हैं। जिस तरह प्रत्यक्ष का ज्ञान इन्द्रियों के संपर्क में आने वाली चीजों का ही हो पाता है और इन्द्रियों के संपर्क से बाहर रह गई चीजों का ज्ञान नहीं हो पाता उसी तरह बहुत से विषय ऐसे हैं जिनका ज्ञान हमें अनुमान से भी नहीं हो पाता। चन्द्रमा पर क्या है अथवा अंग्रेजों ने भारत पर किस तरह अपना शासन कायम किया; आदि इसके उदाहरण हैं। बहुत सा ज्ञान हम दो वस्तुओं की तुलना से प्राप्त करते हैं और अतीत का ज्ञान अथवा ऐसा ज्ञान जिसे हासिल करने के लिए महारत चाहिए वे सभी अनुमान के माध्यम से नहीं हो सकते। इस तरह के ज्ञान को अर्जित करने के लिए न्याय दर्शन ने दो अन्य प्रमाणों की चर्चा की गई है और ये हैं उपमान एवं शब्द प्रमाण। क्रमशः हम इन दो प्रमाणों की चर्चा करेंगे।

कुछ प्रश्न–

- ***अपने दैनिक जीवन से जुडे स्वार्थ अनुमान और परार्थ अनुमान के लिए एक–एक उपयोग लिखिए।***

3.3.3 उपमान

ऐसी बहुत सी चीजें जिनके बारे में हम पहले से नहीं जानते और उनके बारे में जानने के लिए बहुत से तरीके इस्तेमाल किए जाते हैं। ऊपर हमने प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणों के माध्यम से नई चीजों अथवा वस्तुओं के बारे में जानने पर चर्चा की है। लेकिन इनके अलावा भी हम बहुत सी वस्तुओं के बारे में दूसरों से सुनकर कुछ ज्ञान प्राप्त करते हैं और जब वह वस्तु साक्षात् हमारे सामने प्रकट होती है तो हम कहते हैं, अरे ! यह तो फलां चीज है। उदाहरण के लिए, किसी बातचीत के दौरान नीलगाय का जिक्र आए और मान लीजिए हम नीलगाय के बारे में नहीं जानते। उसके बारे में जानने की हमारी सहज जिज्ञासा होती है कि नीलगाय क्या और कैसी होती है? कोई जंगल में रहने वाला या जानकार व्यक्ति हमें बताए कि नीलगाय एक जानवर होता है और कुछ–कुछ गाय जैसा होता है। सिर पर सींग भी होते हैं। रंग गाय की तरह पूरा सफेद तो नहीं होता लेकिन कुछ नीले जैसा होता है और वह जंगल में रहती है आदि–आदि। इसके बाद जब कभी हम जंगल में जाते हैं और पहले बताए गए जानवर जैसा देखते हैं तो तुरंत हमारे मन में आता है कि यही नीलगाय है।

उपमान से प्राप्त होने वाला ज्ञान किसी ऐसी चीज के बारे में होता है जिसे हमने अभी तक नहीं देखा है और उसके बारे किसी परिचित चीज का वर्णन करते हुए बताया जाता है। जब हम बताई गई चीज को साक्षात् देखते हैं तो हम मान लेते हैं कि यह वही चीज है जिसके बारे में बताया गया है। न्याय दर्शन में इस तरह से ज्ञान प्राप्त करने के तरीके को उपमान कहा जाता है। उपमान में किसी एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ सादृश्य दिखाया जाता है और सादृश्य का मतलब उनके समान गुणों का वर्णन करके बताने से है। लेकिन उपमान से जिस चीज के बारे में बताया जाता है उसका प्रत्यक्ष होना भी जरूरी है। कहा जा सकता है कि अंततः यह भी प्रत्यक्ष ज्ञान पर ही निर्भर करता है।

शिक्षा में जानने के इस तरीका का खूब इस्तेमाल किया जाता है। बच्चों को ऐसी अनेक चीजों के बारे में उपमान के माध्यम से ही बताया जाता है जिसे उन्होंने अभी तक नहीं देखा है। जिस चीज के बारे में बताया जाता है उससे मिलती–जुलती चीज के साथ सादृश्य से अनजानी चीज के बारे में बताया जाता है। उदाहरण के लिए, बच्चों को समुद्र के बारे में बताना है और उन्होंने कभी टेलीविजन में भी समुद्र को नहीं देखा है तो तालाब के साथ सादृश्य स्थापित करते हुए बताते हैं। कहते है कि कल्पना करो कि, तालाब इतना बड़ा हो कि उसका कोई ओर–छोर ही न दिखे, तो समुद्र कुछ कुछ ऐसा होता है। हालांकि न्याय दर्शन मानता है कि सादृश्य बताते हुए सावधानी रखनी चाहिए। क्योंकि दो चीजों में बहुत सी विशेषताओं के समान होने के बाद भी यह जरूरी नहीं है कि जिस चीज के बारे में बता रहे हैं उसका ज्ञान हो जाए। उदाहरण के लिए, भैंस और गाय में बहुत सी समानताएं हैं लेकिन फिर भी हम भैंस को गाय नहीं कहते या गाय जैसा नहीं बताते। अतः उसी सादृश्य या समानता को बताया जाना चाहिए जो कि महत्त्वपूर्ण है।

प्रमाणों पर अभी तक हुई चर्चा के बाद यदि हम ध्यान दें तो उपमान की भी कुछ समस्याएं और सीमाएं नजर आती हैं। उपमान की एक समस्या तो यह है कि अन्तः उस वस्तु के प्रत्यक्ष पर ही निर्भर करता है जिसके बारे में बताया गया है। दूसरे, हरेक चीज का सादृश्य स्थापित किया जा सके यह जरूरी नहीं है। तीसरे, यदि ऐसी चीजों के बारे में ज्ञान अर्जित करना हो जिनका प्रत्यक्ष संभव नहीं हो तो क्या करेंगे ? मान लीजिए, हमें इग्लू यानी बर्फ के घर के बारे में बताना है और हमें पता है कि बहुत से इंसान अपने पूरे जीवन में इग्लू का प्रत्यक्ष नहीं कर पाएंगे तो इनके बारे में कैसे ज्ञान अर्जित किया जा सकेगा? या ऐसे और भी बहुत से विषय हो सकते हैं जिनके बारे में आम इंसान को कभी प्रत्यक्ष हो ही नहीं सकता। जैसे ध्वनि तरंगे, चुम्बकीय तरगे, परमाणु की संरचना आदि। अतः यह समस्या सामने आती है कि आखिर ऐसे विषयों के बारे में कैसे ज्ञान होता है? कुछ ऐसे ही विषयों के बारे में जानने के लिए न्याय दर्शन एक अन्य प्रमाण की बात करता है जिसे हम शब्द प्रमाण कहते हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***आप भी कक्षा में बच्चों के साथ काम करते समय उपमान प्रमाण का उपयोग करते होंगे। उपमान प्रमाण के ऐसे दो उदाहरण लिखिए जिसका उपयोग आपने अपने कक्षा में किया होगा?***

3.3.4. शब्द

हम सभी जानते हैं कि 'शब्द' का सामान्य प्रयोग भाषा में प्रयुक्त होने वाली ध्वनि समूह के लिए किया जाता है और जिसका कोई अर्थ हो। उदाहरण के लिए, कमल, रंग, महल और पेड़ आदि। ऐसे भी ध्वनि हो सकते हैं जिनके कोई अर्थ न हों ऐसे ध्वनि समूह को शब्द नहीं माना जाता या उसे निरर्थक शब्द कहते हैं। भारतीय दर्शन एवं न्याय दर्शन में शब्द को एक प्रमाण अथवा ज्ञान के साधन के रूप में माना गया है और इसका आशय शब्दों अथवा वाक्यों से होने वाले ज्ञान के रूप में लिया जाता है। वास्तव में न्याय दर्शन में शब्द का अर्थ भाषा है।

हम कैसे जान पाते हैं कि भारत ने 1947 में अंग्रेजों से आजादी हासिल की? हम कैसे जान पाते हैं कि चन्द्रमा की सतह उबड़–खाबड़ है? हम कैसे जान पाते हैं कि पृथ्वी गोल है और अपने अक्ष पर 24 घंटे में चक्कर काटती है? हम कैसे जान पाते हैं कि पृथ्वी की सतह से ऊपर उठते चले जाने के साथ–साथ पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बल कम होता चला जाता है?

निश्चित रूप से पहले सवाल के जबाव में कहेंगे कि हमने इतिहास पढ़ा है या हमें बताया गया है। दूसरे सवाल के जबाव में हम कहेंगे कि कुछ व्यक्ति चन्द्रमा की सतह पर गए हैं, उन्होंने देखा है और इसके अलावा कुछ उपग्रह भेजे गए हैं, उनके माध्यम से हमें पता चला है। तीसरे और चौथे सवाल के जबाव में कहा जा सकता है कि कुछ लोगों ने इसका अध्ययन किया है और उन्होंने ऐसी बात कही हैं।

हम अनेक ऐसी वस्तुओं के अस्तित्व के बारे में जानते हैं जिन्हें हमने स्वयं नहीं देखा है न ही जिनके बारे में हमने विचार किया है। ऐसी चीजों के बारे में हम प्रमाणिक लोगों या उस विषय के जानकार लोगों के कथनों पर विश्वास कर लेते हैं। लेकिन क्या सभी चीजों पर इतनी आसानी से विश्वास किया जा सकता है?

मान लीजिए, कोई सामान्य आदमी कहे कि उसने आकाश में एक कमल का फूल खिलते हुए देखा है। एक पुजारी पृथ्वी पर जीव की उत्पत्ति के बारे में बताने लगे कि एक दिन भगवान ने सोचा कि इस सृष्टि में कुछ जीव भी उत्पन्न कर दिए जाएं ताकि यह सूनी निर्जीव सृष्टि जीवनयुक्त हो जाएगी। एक राजनेता इतिहास पर भाषण देते हुए कहते है कि अंग्रेज भारत पर इसलिए हुकूमत स्थापित कर पाए क्योंकि उस समय लोगों की भगवान में आस्था कम होने लगी थी और और अधर्म का बोलवाला बढ़ गया था। इसलिए सबक सिखाने के लिए भगवान ने अंग्रेजों को भेजा। इतिहासकार बताने लगे कि खेती की बीमारियों का उपचार करने के लिए सभी किसानों को वैदिक काल का इतिहास पढ़ना चाहिए। एक गीतकार बताने लगे कि न्यूटन के सिद्धान्त दरअसल संगीत का ही दूसरा रूप हैं, तो क्या हम इनके द्वारा कही बातों पर यकीन करेंगे? यदि आपको ये बातें सही लगती हैं तो कारण सहित बताएं और यदि नहीं लगती हैं तब भी कारण बताएं?

शायद एक बात हम यह कहेंगे कि जिन विषयों पर लोग बोल रहे हैं वे उस विषय के जानकार लोग नहीं हैं। दूसरे, कोई यह कह सकता है कि जो चीजें कही गई हैं वे विश्वास करने लायक नहीं हैं। तीसरे कोई कह सकता है कि उन्होंने अभी तक इस विषय में जो जाना है वह इससे मेल नहीं खाता आदि। ये सभी बातें हम अपनी सहज बुद्धि से ही कहेंगे। लेकिन आगे हम देखेंगे कि न्याय दर्शन शब्द अथवा वाक्यों के माध्यम से होने वाले ज्ञान के बारे में क्या कहता है?

न्याय दर्शन का मानना है कि विश्वास योग्य व्यक्तियों, विषय के जानकार व्यक्तियों के कथनों से हमें ज्ञान होता है एवं ऐतिहासिक परंपरा तथा धर्मशास्त्रों की दिव्य वाणी के आधार पर बहुत ज्ञान प्राप्त होता है। लेकिन

न्याय दर्शन का मानना है कि समस्त शब्द–ज्ञान यथार्थ नहीं होता। अतः शब्द को प्रमाण तभी माना जाता है जब इसके द्वारा यथार्थ ज्ञान मिलता हो। ऐसे विश्वास योग्य व्यक्तियों के शब्दों अथवा कथनों को ही प्रमाण माना जाता है जिनको स्वयं यथार्थ ज्ञान है। ऐसे विश्वास योग्य व्यक्तियों को आप्त पुरुष भी कहा जाता है और इनके द्वारा कहे गए शब्दों या कथनों को आप्त वचन कहा जाता है। शब्द प्रमाण से होने वाला ज्ञान तभी संभव है जब कि आप्त पुरुष या विश्वास योग्य व्यक्ति द्वारा कहे गए शब्द अथवा वचन निश्चित अर्थ देने वाले हों। इस तरह के वचनों से होने वाला ज्ञान ही शब्द ज्ञान होता है। न्याय दर्शन में शब्द प्रमाण को दो प्रकार का माना जाता है। एक, विश्वास योग्य व्यक्ति या आप्त पुरुष द्वारा ऐसी वस्तुओं का ज्ञान जिनका प्रत्यक्ष हो सके और दूसरे तरह का, ऐसी वस्तुओं के बारे में ज्ञान जिनका प्रत्यक्ष नहीं हो सके। अर्थात् ऐसी वस्तुओं का ज्ञान जिनको हम प्रत्यक्ष के माध्यम से जान ही नहीं सकते। जैसे कि, आत्मा–परमात्मा, पाप–पुण्य आदि।

यह सही है कि किसी विषय के जानकार के द्वारा हमें बहुत सा ज्ञान मिलता है। हम देखते हैं कि स्कूल में और आए दिन इस प्रमाण का प्रयोग करते हैं। शिक्षक के द्वारा बताई गई बात पर इसी आधार पर यकीन करते हैं कि वे जो बता रहे हैं सही होगा। स्कूल की किताबों के बारे में भी हम सहज ही विश्वास करके चलते हैं कि जो लिखा है वह योग्य व्यक्तियों ने ही लिखा है। लेकिन फिर भी इसकी प्रमाणिकता संदेह के घेरे में आती है। हम कैसे तय करेंगे कि अमुक ज्ञान यथार्थ ज्ञान है और अमुक नहीं? मान लीजिए कि कोई धर्मग्रन्थ कहे कि पृथ्वी शेषनाग के फन पर टिकी है तो हम क्या करेंगे?

दूसरी बात ये है कि ज्ञान के संदर्भ में यह मानकर चलना पड़ेगा और ज्ञान का इतिहास भी हमें बताता है कि मानवीय ज्ञान स्थिर चीज नहीं है उसमें भी परिवर्तन होता रहता है। यदि लिखित शब्द जमाने पहले के विचारों के हैं या कहने वाले लोग हजार साल पुराने ज्ञान को भी ऐसे ही गा रहे हैं जैसे कि उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया है तो यह उचित नहीं होगा। दूसरे, इस पर सबसे ज्यादा संदेह लिखने वाले की सोच की वजह से होता है कि आखिर वह किस सोच के तहत लिख रहा है। तीसरे, शब्द पर यकीन करने की समस्या जो व्यक्ति इस तरह का ज्ञान दे रहा है उसके निहित स्वार्थों की भी है कि यह कैसे जानें कि इसमें उसके किसी तरह के निहित स्वार्थ नहीं हैं ।

न्याय दर्शन के प्रमाणों पर चाहे जो भी प्रश्न उठाए गए हों लेकिन यह सही है कि इंसानों को होने वाले ज्ञान के यही प्रमाण हैं जिन्हें सिर्फ न्याय दर्शन ही नही मानता है बल्कि बाकी सभी भारतीय दर्शन भी थोड़े बहुत फेर के साथ मानते हैं। इंसानों को होने वाला समस्त ज्ञान किसी एक प्रमाण से अर्जित नहीं होकर सभी प्रमाणों को मिलाकर होता है। लेकिन इसके बावजूद हम यह भी जानते हैं कि इन सभी का अलग–अलग या एक साथ उपयोग करते हुए हम भ्रान्त ज्ञान या मिथ्या ज्ञान का शिकार भी होते हैं। इनके उपयोग के संदर्भ में यही कहा जा सकता है कि इंसान को इनके माध्यम से ज्ञान अर्जित करते हुए सचेत रहने की आवश्यकता है। इंसान तभी सही ज्ञान की तरफ अग्रसर होता है जब वह अपने ज्ञान के प्रति पुनर्चिन्तन करता रहे और खुले मन से दूसरी तरह के ज्ञान को समझने के लिए तैयार रहे।

कुछ प्रश्न–

- ***आप ज्ञान के लिए प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द में से किस साधन को कक्षा में शिक्षण प्रकिया के लिए जरूरी मानतें है? और क्यों?***

इस अध्याय में हमने मूलतः न्याय दर्शन में ज्ञान के स्रोतों की बात की है। न्याय दर्शन के प्रमाण सत्य ज्ञान के स्रोत भी माने जाते हैं। हम जिंदगी में ज्ञान तो प्राप्त करते ही हैं। बहुत से काम करते हैं, बहुत सी बातें जानते हैं, हमारे पास बहुत सी सूचनाएं होती हैं। यह सब ज्ञान ही है। तो हम फिर ज्ञान को प्राप्त करने के तरीके, उसके स्रोत और उसके प्रमाणों का भी उपयोग तो रोजमर्रा की जिंदगी में करते ही हैं। लेकिन उन पर सोचने से, वे कैसे काम करते हैं, उनसे कितना सत्य ज्ञान प्राप्त हो सकता है। हम जो मानते हैं उसके प्रमाणों को कैसे समझें

आदि बातों पर विचार करने से हम शायद स्वयं ज्ञान प्राप्त करने में सावधान हो सकते हैं। ज्ञान प्राप्त करने में हमारी क्षमता बेहतर हो सकती है और दूसरों को जो हम जानते हैं वह प्रमाण के साथ ठीक से समझने में मदद मिलती है।

ज्ञान के बारे में तो सभी समाजों और संस्कृतियों ने सोचा है। तो बाकी दुनिया में भी ज्ञान कैसे प्राप्त होता है?, उसके प्रमाण क्या होते हैं? आदि पर उनके द्वारा विचार किया गया होगा। अगले अध्याय में हम पश्चिम में ज्ञान को कैसे देखा गया है, उसकी क्या शर्तें मानी गई हैं, इस पर विचार करेंगे।

3.4 सारांश

इस अध्याय में निम्न बातो पर चर्चा की

- ***ज्ञान किसी वस्तु की तरह लेने–देने की चीज़ नही है।***
- ***ज्ञान के लिए आवश्यक है कि कोई न कोई जानने वाला (ज्ञाता) हो तथा विषय (ज्ञेय) हो।***
- ***ज्ञाता के लिए सचेतन इंसान का होना अनिवार्य है जो की ज्ञान को इंसानी भाषा में व्यक्त कर सके और नए ज्ञान का निर्माण कर सके।***
- ***ज्ञान के तीन प्रकारों के उदाहरणों के माध्यम से समझने का प्रयास किया कि ज्ञान 'देने' या 'दी जा सकने' वाली कोई वस्तु नही है।***
- ***जब कोई व्यक्ति यह कहता है कि स्कूल में बच्चे ज्ञान प्राप्त करें तब उस व्यक्ति की स्कूल से क्या–क्या आपेक्षाएं होती है? उन आपेक्षाओं को ज्ञान के प्रकारों के रूप में समझने का प्रयास किया गया।***
- ***ज्ञान की प्राप्ति हेतु विश्वास और प्रमाण की आवश्यकता होती है। ज्ञान के लिए किसी बात या चीज पर विश्वास होना ही पर्याप्त नही है बल्कि उसका सत्य या सही होना भी आवश्यक है। सत्य–असत्य या सही–गलत के लिए हमें प्रमाण की आवश्यकता होती है।***
- ***भारतीय न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान के प्रमाण के लिए चार तरीके है– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द।***

3.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. यदि कोई व्यक्ति किसी चीज का ज्ञान प्राप्त कर रहा है तो इसके लिए किन–किन शर्तों का पूरा होना जरूरी है?
2. प्रत्यक्ष के होने के लिए किन–किन शर्तों का होना जरूरी है और क्यों?
3. क्या अनुमान प्रत्यक्ष के बिना संभव है? यदि नहीं तो क्यों? कारण सहित स्पष्ट करें।
4. ऐसे ज्ञान के तीन उदाहरण दें जो सिर्फ शब्द प्रमाण से ही अर्जित हो सकता है।
5. ऐसे ज्ञान के कोई तीन उदाहरण लिखें जिसे प्रत्यक्ष के द्वारा अर्जित नहीं किया जा सकता?
6. ''शिक्षक ने बच्चों को ज्ञान दिया।'' क्या इस वाक्य में आपको कोई समस्या लगती है? कारण सहित स्पष्ट करें।

7. अनुमान और उपमान में क्या अंतर है? कारण सहित स्पष्ट करें।

8. शिक्षण में उपमान प्रमाण का प्रयोग आप किस प्रकार करते हैं? उदाहरण सहित समझाएं।

9. ज्ञान के साधन के तौर पर प्रत्यक्ष की क्या सीमाएं है? लिखें।

10. न्याय दर्शन के अनुमान में और अंदाजा लगाने में क्या फर्क है? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

11. व्यवहारिक जीवन में अनुमान के प्रयोग और उसे दूसरों को समझाने के लिए व्यक्त करने में क्या फर्क है? दोनों का एक–एक उदाहरण देते हुए स्पष्ट करें।

12. यदि ज्ञान अर्जित करने के साधनों को सिर्फ शब्द प्रमाण तक सीमित कर दिया जाए तो इसका हमारे द्वारा अर्जित ज्ञान पर क्या प्रभाव पड़ेगा? कौनसा ज्ञान हम अर्जित कर पायेंगे और कौनसा नहीं?

13. मान लीजिये, किसी व्यक्ति के पास पांचों ज्ञानेन्द्रियां नहीं हैं तो क्या वह किसी तरह का ज्ञान अर्जित कर पायेगा? क्या वह अनुमान, शब्द और उपमान के माध्यम से ज्ञान अर्जित कर पाएगा? क्यों?

14. यदि हम यह मानते हैं कि हमारा समस्त ज्ञान प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाण के माध्यम से अर्जित होता है तो इसका हमारे सिखाने के तरीकों पर क्या असर पड़ेगा?

15. एक–एक उदाहरण देते हुए बताइये कि एक शिक्षक प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द और उपमान प्रमाण का उपयोग किन–किन चीजों के सिखाने में कर सकता है?

अध्याय – 4
पश्चिमी दार्शनिक और ज्ञान की शर्तें

पाठ की रूपरेखा

4.1 परिचय

  4.1.1 उद्देश्य

4.2 पश्चिमी दार्शनिक

  4.2.1 प्लेटो

  4.2.2 देकार्त

  4.2.3 जॉन लॉक

  4.2.4 बर्कले

4.3 ज्ञान की शर्तें

  4.3.1 ज्ञान की शास्त्रीय परिभाषा

  4.3.2 गेटियर की समस्याएँ

4.4 सारांश

4.5 अभ्यास के लिए प्रश्न

4.1 परिचय

पिछले अध्यायों में हमने 'ज्ञान देने' के संदर्भ में ज्ञान के मायने और ज्ञान के प्रकारों पर चर्चा करते हुए यह देखा कि ज्ञान किसी वस्तु की तरह नहीं है और इसीलिए ज्ञान को वस्तु की भांति दिया भी नहीं जा सकता। ज्ञान अर्जित करने के लिए हरेक व्यक्ति को अपने प्रयास करना होता हैं। दूसरे लोग ज्ञान को अर्जित करने में मददगार जरूर हो सकते हैं। न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने के साधनों पर संक्षेप में चर्चा के दौरान हमने देखा कि न्याय दर्शन मुख्य रूप से प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द को ज्ञान अर्जित करने के साधन के रूप में देखता है।

इस अध्याय को हम दो भागों में देखेंगें। पहले भाग में हम पाश्चात्य दर्शन के संदर्भ में ज्ञान संबंधी सवालों पर थोड़ा–बहुत विचार करेंगे कि पश्चिमी दर्शन में ज्ञान के बारे में क्या सोचा गया है? ज्ञान प्राप्ति के साधनों के बारे में क्या सोचा गया है? आदि। इसके लिए हम कुछ पाश्चात्य दार्शिनिकों के विचारों को जानेंगे। भाग दो में हम ज्ञान के शर्तों पर चर्चा करेंगे कि ज्ञान होने के लिए किन–किन शर्तों का होना जरूरी है।

4.1.1 उद्देश्य

इस अध्याय को पढने के बाद आप

1. जान पाऐगें कि पश्चिमी दर्शन में ज्ञान के बारे में क्या सोचा गया है?
2. प्लेटो देकार्त जॉन लॉक व बर्कले के ज्ञान के बारे में विचार को जान पाऍगे।
3. ज्ञान के लिए जरूरी कुछ शर्तों पर समझ बना पाएगें।

भाग 1

4.2 पश्चिमी दार्शनिक

इस दुनिया और इसके बारे में होने वाले ज्ञान के बारे में दुनिया की तमाम सभ्यताएं बहुत पहले से विचार करती रही हैं। समस्याएं लगभग वही थीं और हरेक सभ्यता में उन पर विचार हो रहा था। अतः इस दुनिया के बारे में अलग–अलग देशों और सभ्यताओं में हुए दार्शनिक चिन्तन को जानना एक दिलचस्प कहानी की तरह है।

हजारों साल पहले, जब विज्ञान आज की तरह अपने विकसित रूप में नहीं था, तब भी लोगों में इस दुनिया में होने वाली घटनाओं के बारे में जानने की दिलचस्पी थी। यह दिलचस्पी रोजमर्रा में होने वाली घटनाओं के बारे में भी थी। जैसे कि, दिन–रात कैसे होते हैं? बारिश कैसे होती है? पेड़–पौधे कैसे उगते और खत्म हो जाते है, आदि–आदि। दूसरी तरफ, कुछ ऐसे सवाल भी थे जो इस दुनिया के बारे में समग्रता में जानने से जुड़े थे। जैसे कि, इस दुनिया की उत्पत्ति कैसे हुई? क्या कुछ ऐसी सामान्य चीजें हैं जिनसे मिलकर यह दुनिया बनी है? इस दुनिया को किसने बनाया आदि–आदि। हम देख सकते हैं कि समय के साथ विज्ञान के हुए विकास के माध्यम से बहुत से सवालों का इंसान ने एक तरह का विश्वनीय ज्ञान अर्जित किया है। आज के समय में यह जाना जा चुका है कि दिन–रात कैसे होते हैं तथा बारिश कैसे होती है? इस दुनिया के बारे में बहुत से सवालों के बारे में विज्ञान हमें संतोषजनक जबाव दे चुका है। लेकिन फिर भी विज्ञान के दायरे से बाहर अभी बहुत से सवाल हैं जिन पर संभवतः समय के साथ कुछ प्रकाश पड़े। लेकिन कुछ सवाल इस दुनिया के बारे में होने वाले ज्ञान के बारे में भी थे। जैसे कि ज्ञान होता क्या है? हम अपने आसपास की दुनिया के बारे में जानते कैसे हैं? जानने के साधन क्या हैं और जिसे हम जान पाते हैं, वह सत्य है अथवा असत्य, इसे हम कैसे जान पाते हैं? इनके अलावा भी बहुत से सवाल हैं जिन पर दार्शनिक चिन्तन करते रहे हैं। ये सवाल इंसानों के आचरण स
संबंधित थे। जैसे कि दूसरों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए? क्या करना उचित है और क्या करना अनुचित है आदि–आदि? जितने भी सवाल ऊपर उठाए गए हैं इनमें से बहुत से सवालों के बारे में जानने के लिए हम विज्ञान की तरफ जाते हैं और बहुत से सवाल अभी भी दर्शन के क्षेत्र में बने हुए हैं।

पिछले अध्याय में हमने भारतीय दर्शन (न्याय दर्शन) के संदर्भ में ज्ञान संबंधी सवालों (ज्ञान प्राप्त करने के साधनों) पर विचार किया है। इस अध्याय में हम ज्ञान से जुड़े सवालों के बारे में कुछ पाश्चात्य दार्शनिकों–प्लेटो, देकार्त, लॉक, और बर्कले के मतों का सरल परिचय प्राप्त करेंगे।

4.2.1 प्लेटो

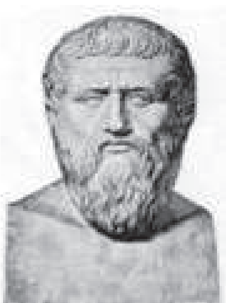

प्लेटो
(428 ई.पू–348ई.पू)

सुकरात का शिष्य प्लेटो उन महत्वपूर्ण प्राचीन दार्शनिकों में से एक है जिसने न सिर्फ पश्चिमी दुनिया की ज्ञान और चिन्तन परंपरा को बल्कि दुनिया भर की चिन्तन परंपरा को गहरा प्रभावित किया है। प्लेटो का जन्म 428 ईसा पूर्व हुआ था। प्लेटो का योगदान सिर्फ दर्शनशास्त्र के क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि उन्होंने राजनीति, शिक्षा, कानून और नीतिशास्त्र के क्षेत्र में भी गंभीर योगदान किया। प्लेटो ने तमाम दार्शनिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए अक्सर बातचीत की एक दिलचस्प शैली अपनाई। अपने ग्रन्थों में उन्होंने कुछ चरित्र गढ़े हैं और ये सभी चरित्र किसी समस्या पर अपने मत रखते हैं। प्लेटो ने समस्याओं पर बातचीत के लिए एक चरित्र अपने गुरू सुकरात को भी चुना है जो कि अन्य चरित्रों से सवाल करते हुए और उनके जबावों पर फिर सवाल करते हुए उनके जबावों की त्रुटियां दिखाता है और अपने मत को स्थापित करता है। वास्तव में यही शैली प्लेटो के गुरू सुकरात ने भी समस्याओं पर विचार विमर्श के लिए अपनाई थी।

आमतौर पर यह माना जाता है कि अनुभव से प्राप्त होने वाला ज्ञान इन्द्रियों पर निर्भर करता है अथवा ज्ञान इन्द्रिय प्रत्यक्ष से प्राप्त होता है और वही वास्तविक ज्ञान होता है। लेकिन प्लेटो और ऐसे बहुत से दार्शनिक हुए हैं जो इससे भिन्न मत रखते हैं। प्लेटो ज्ञान के बारे में जिस समस्या से जूझ रहे थे, वह ऐसे ज्ञान की खोज से जुड़ी थी जिसमें निश्चितता और स्थिरता हो। अर्थात् उसके अनुसार ज्ञान ऐसा होना चाहिए जिस पर संदेह न किया जा सके और जो समय के साथ नहीं बदले।

ज्ञान के संबंध में अक्सर यह सवाल उठता है कि यदि हमारा ज्ञान हर क्षण बदलता रहे तो क्या हम उसे ज्ञान कहेंगे? यदि ऐसा होता रहे तो शायद उसे ज्ञान कहने में समस्या होगी। सोचकर देखिए, जिसे अभी तक हम ज्ञान मानकर चल रहे हैं यदि वह अगले ही क्षण बदल जाए तो क्या होगा? उदाहरण के लिए, यदि कोई इस क्षण कहे कि मुझे अभी सामने जो दिख रहा है वह एक पेड़ है और अगले ही क्षण कहे, यह पेड़ नहीं कुछ और है। तो इससे क्या समस्या होगी? मान लीजिए, आप रोटी बनाने के लिए आटा गूंदना चाहते हैं। आपने आटा समझकर किसी चीज को थाली में ले भी लिया लेकिन जैसे ही आप पानी से उसे गूंदना शुरू करें, और आपको पता चले कि, ''अरे ! यह आटा नहीं, यह तो मिट्टी है।'' ऐसे स्थिति में क्या होगा? हम अनिश्चय के अंधकार में गोते लगाते रहेंगे और कुछ भी कर पाने से कतराते रहेंगे।

प्लेटो के सामने इस समस्या के प्रकट होने के दो कारण थे। एक, उनके पूर्ववर्ती कुछ दार्शनिक दुनिया को निरंतर परिवर्तनशील मानते थे। इसका एक मतलब यह हुआ कि यदि चीजें लगातार बदल रही हैं तो उनके बारे में होने वाला ज्ञान भी लगातार बदलता रहेगा। क्योंकि जब तक हम किसी चीज के बारे में ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे, अगले ही क्षण वह चीज बदल चुकी होगी और हमारा पहले वाला ज्ञान असत्य सिद्ध हो जाएगा। हम फिर से उस वस्तु का ज्ञान प्राप्त करेंगे वह वस्तु फिर बदल चुकी होगी। अर्थात् वस्तु के बदलने के साथ ही हमारा ज्ञान भी हर क्षण बदलता रहेगा।

कुछ प्रश्न–

- ***कुछ ऐसे उदाहरण सोचे कर लिखे जिसमें वस्तु के न बदलने या वस्तु में बदलाव न होने पर भी इन्द्रिय अनुभव बदलता हो।***

दूसरा कारण यह कि, यह कारण पहले कारण से ही जुड़ा हुआ है, यदि चीजें लगातार बदल रही हैं तो इन्द्रिय अनुभवों के माध्यम से प्राप्त होने वाला ज्ञान विश्वसनीय और सत्य नहीं रह जाएगा। उदारहण के लिए, मैं इस समय एक पेड़ को देख पा रहा हूं और वह पेड़ लगातार बदल रहा है। आज से एक साल पहले यह छोटा, कम घना था। लेकिन आज यह बड़ा और सघन है। कल इसमें और भी परिवर्तन होंगे। अर्थात् बदलते पेड़ के साथ हमारे ज्ञान में भी परिवर्तन आएंगे। अतः प्लेटो का मानना था कि इन्द्रिय अनुभव से होने वाला ज्ञान वास्तविक नहीं हो सकता। लेकिन इसके साथ ही बहुत से सवाल खड़े हो जाते हैं। यदि इन्द्रिय अनुभव से प्राप्त होने वाला ज्ञान वास्तविक नहीं है तो फिर कौनसा ज्ञान वास्तविक होगा और वह कैस प्राप्त होगा? साथ ही इन्द्रिय अनुभव से होने वाले ज्ञान का हम क्या करें? अर्थात् इन्द्रियों के माध्यम से होने वाले ज्ञान को फिर कैसे समझें? इन प्रश्नों के संदर्भ में हम आगे प्लेटो के विचारों को समझने का प्रयास करेंगे।

कुछ प्रश्न–

- ***प्लेटो ने इन्द्रिय अनुभव से होने वाले ज्ञान को वास्तविक ज्ञान क्यों नही माना है?***

प्लेटो के अनुसार वास्तविक ज्ञान वह है जो शुद्ध बुद्धि से प्राप्त होता है, जिसमें इन्द्रिय ज्ञान की कोई मिलावट न हो। बुद्धि से प्राप्त होने वाला ज्ञान निश्चित, स्थिर और असंदिग्ध होता है। बुद्धि से प्राप्त होने वाले ज्ञान को प्लेटो दो प्रकार का मानता है। एक, गणितीय ज्ञान और दूसरे, प्रत्ययों का ज्ञान। गणितीय ज्ञान के बारे में उनका मानना है कि यह शुद्ध बुद्धि से प्राप्त होने वाला ज्ञान है और इस पर संदेह की गुंजाइश नहीं है। उदाहरण के लिए, $2 + 2 = 4$ होते हैं। हम सभी इसे सत्य मानते हैं और इस पर संदेह नहीं करते। यह ज्ञान निश्चित है और इसमें किसी तरह का परिवर्तन नहीं होता। इस आधार पर प्लेटो कहते हैं कि गणित एवं ज्यामिति का ज्ञान वास्तविक ज्ञान है। इसके अलावा वे 'प्रत्ययों' के ज्ञान को भी वास्तविक ज्ञान मानते हैं। प्रत्यय को अंग्रेजी में 'Idea' अथवा 'Form' भी कहते हैं। प्लेटो के अनुसार ये प्रत्यय क्या हैं? इसे उदाहरण से समझते हैं। हमारे आसपास बहुत से जानवर हैं और मान लीजिए, इनमें से बहुत सी बिल्लियां हैं। सभी बिल्लियाँ एक–दूसरे से अलग हैं। इनमें से किसी एक के बारे में कहा जा सकता है, ''यह एक बिल्ली है।'' यहां 'बिल्ली' शब्द का क्या अर्थ है? प्लेटो के अनुसार यहां 'बिल्ली' का अर्थ किसी एक विशेष बिल्ली से कुछ अलग है। इस एक विशेष बिल्ली में कुछ ऐसे सामान्य लक्षण या सामान्य विशेषताएं इसमें हैं जो कि किसी भी बिल्ली में होंगे। मान लीजिए, कोई बिल्ली काली है और कोई सफेद, कोई मोटी है और कोई पतली फिर भी हम उसे 'बिल्ली' ही कहते हैं। उनका काला या सफेद होना मोटा या पलता होना तो विशेष बिल्ली का गुण हो सकता है, पर यह सभी बिल्लियों का सामान्य गुण नहीं है। अतः विशेष गुण (काला या सफेद होना मोटा या पलता होना) किसी चीज के बिल्ली होने की पहचान नहीं बन सकती। पर हम बिल्ली को देखते हैं तभी उसे बिल्ली के वर्ग में रख देते हैं; तो इन सभी विशेष बिल्लियों में कोई सामान्य गुण होना चाहिए जो सभी बिल्लियों में एक जैसा हो। बिल्लियों में पाए जाने वाले इन सामान्य लक्षणों को हम 'बिल्लीपन' कह सकते हैं और 'बिल्लीपन' का यह लक्षण सभी विशेष बिल्लियों में पाया जाता है। प्लेटो किसी वस्तु के इन्हीं सामान्य लक्षणों, जैसे कि, 'बिल्लीपन' को ही प्रत्यय कहते हैं। यह 'बिल्लीपन' न तो किसी विशेष बिल्ली की तरह कभी जन्मता और न ही कभी मरता है। यह न तो समय से बंधा है और न ही किसी स्थान से। प्लेटो के अनुसार यह शाश्वत है और यह आदर्श बिल्ली है। प्लेटो मानते हैं कि इस तरह 'बिल्लीपन' के प्रत्यय को ग्रहण कर पाना ही वास्तविक ज्ञान है और इस 'बिल्लीपन' का ज्ञान इन्द्रिय अनुभव से संभव नहीं है। वस्तुओं के ऐसे सामान्य लक्षणों को बुद्धि ही ग्रहण करती है। लेकिन प्लेटो क्यों इन्द्रिय अनुभव से प्राप्त ज्ञान को वास्तविक नहीं मानते और बुद्धि से प्राप्त ज्ञान को वास्तविक मानते हैं?

प्लेटो इन्द्रिय अनुभव से प्राप्त ज्ञान के बारे में कहते हैं, हम आंख और कान आदि से इन्द्रिय अनुभव ग्रहण करते हैं लेकिन ऐसा बहुत सा ज्ञान है जो कि इन्द्रिय अनुभव से संबद्ध नहीं होता। उनका मानना है कि, कोई भी इन्द्रिय किन्हीं वस्तुओं के अस्तित्व के होने और नहीं होने को ग्रहण नहीं कर सकती। उदाहरण के लिए, अभी मैं जिस पर बैठकर लिख रहा हूं वह एक टेबिल है और मैं आंख से इसके बारे में कुछ देख पा रहा हूं। लेकिन वास्तव में 'टेबिल' क्या है? हमें हमारी इन्द्रियों से इस टेबिल के बारे में क्या अनुभव प्राप्त हो रहे हैं? टेबिल से प्राप्त होने वाले समस्त इन्द्रिय अनुभव या तो रंग के हैं या इसकी कठोरता या चिकनेपन के हैं या इससे आने वाली आवाज के हैं। लेकिन वास्तव में 'टेबिल' जैसी किसी चीज का तो हमें इन्द्रिय अनुभव नहीं होता। ''यह एक टेबिल है'', इसे तो हमारी बुद्धि ग्रहण करती है। अर्थात् किन्हीं लक्षणों की समग्रता से उत्पन्न किसी वस्तु, जैसे कि 'टेबिल' को इन्द्रिय अनुभव से ग्रहण नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार इसे बुद्धि ग्रहण करती है।

कुछ प्रश्न–

- ***प्लेटो के अनुसार 'प्रत्यय' क्या है?***

इन्द्रिय अनुभव पसंद और नापसंद को ग्रहण नहीं कर सकता। मान लीजिए, मैं कहूं कि, ''मैं करेला पसंद नहीं करता।'' अथवा ''मैं केला पसंद करता हूं।'' मेरी यह पसंद या नापसंद इन्द्रिय अनुभव से ग्रहण नहीं होती। साथ वस्तुओं में समानता और भेद भी इन्द्रिय अनुभव से ग्रहण नहीं होता। उदाहरण के लिए, ''ये दो कुर्सियां एक जैसी

हैं।'' अथवा ''मेरी शर्ट आपकी शर्ट से अलग है।'' इसका ज्ञान भी इन्द्रिय अनुभव से नहीं होता और संख्या को भी इन्द्रिय अनुभव से ग्रहण नहीं किया जा सकता और इसी तरह अच्छे और बुरे का भी। अतः प्लेटो के मतानुसार बुद्धि ही ज्ञान को ग्रहण करती है। लेकिन यह जानने के बाद भी यह सवाल तो बना ही रहता है कि इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले अनुभवों का हम क्या करें? क्या वे भी किसी काम के हैं?

कुछ प्रश्न–

- ***इन्द्रिय अनुभव से प्राप्त ज्ञान और बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान में क्या अन्तर है?***

प्लेटो कहेंगे कि इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त होने वाले वस्तुओं के अनुभव वास्तव में 'प्रत्ययों' के प्रतिबिम्बों के अनुभव मात्र होते हैं और ये वस्तुएं वास्तविक ज्ञान का विषय नहीं हैं। लेकिन उनका मानना है कि इन वस्तुओं और प्रत्ययों में एक 'सादृश्यता' होती है। अर्थात् मैं अभी जिस टेबिल को देख पा रहा हूं वह 'टेबिल के प्रत्यय' के सादृश्य अथवा समान है। इसे उदाहरण से समझते हैं, प्लेटो के मतानुसार, एक चित्रकार टेबिल का चित्र बनाता है। 'टेबिल का चित्र' वास्तव में हमारे सामने उपस्थित 'टेबिल' तो नहीं है। 'टेबिल का चित्र' हमारे सामने उपस्थित 'टेबिल' का एक प्रतिबिम्ब है। अतः 'टेबिल के चित्र' को कोई वास्तविक 'टेबिल' भी नहीं कहेगा। इसी तरह हमारे सामने 'उपस्थित टेबिल' वास्तव में टेबिल के प्रत्यय का प्रतिबिम्ब है। प्लेटो के अनुसार, प्रत्ययों का ज्ञान मानव की बुद्धि या आत्मा में होता है। जब हम किसी भौतिक वस्तु को देखते हैं तो उससे हमारी बुद्धि अथवा आत्मा में उपस्थित प्रत्यय के ज्ञान का हमें स्मरण मात्र होता है। अर्थात् इन्द्रिय अनुभव हमें केवल प्रत्ययों का स्मरण कराते हैं और प्रत्यय जन्मजात रूप से हमारी बुद्धि या आत्मा में निवास करते हैं।

4.2.2. देकार्त

रेने देकार्त का जन्म 1596 ईस्वी में, प्लेटो से करीब 2000 साल बाद, फ्रांस में हुआ था। देकार्त के दर्शन से पश्चिमी दर्शन के आधुनिक युग का प्रारंभ माना जाता है। देकार्त एक ऐसा दार्शनिक था जिसने अपने पूववर्ती दार्शनिकों के ज्ञान को स्वीकार नहीं किया और उसने दर्शन के एक नए ढांचे का निर्माण किया। उसने दर्शन की दुनिया में एक नई नींव रखी। लेकिन इससे पहले यह जानना जरूरी है कि इस 2000 साल के अन्तराल में पश्चिमी दुनिया के दार्शनिक चिन्तन में क्या कार्य हुआ? देकार्त से पहले लम्बे समय तक पश्चिमी दुनिया में ईसाई धर्म का प्रभुत्व रहा और यह माना जाता था कि बाईबिल में जो लिखा है वही परम सत्य है। और जिसे स्वयं ईश्वर ने कहा है वह गलत कैसे हो सकता है। उस पर संदेह करना पाप है। हम जानते हैं कि यह वह समय था जब कोई भी ईसाई धर्म या बाईबलीय ज्ञान के खिलाफ बोलने की कोशिश नहीं करता था और यदि करता भी था तो उसे दण्ड दिया जाता था और कई बार मार भी दिया जाता था। गैलीलियो के बारे में आप सभी ने सुना होगा। गैलिलीयो ने अपने अध्ययन के आधार पर यह कहने की कोशिश की थी कि सूरज पृथ्वी के चक्कर नहीं लगाता बल्कि पृथ्वी सूरज के चक्कर लगाती है। यह बात बाईबलीय ज्ञान के खिलाफ जाती थी क्योंकि बाईबिल में यह माना गया है कि पृथ्वी इस ब्रह्मण्ड के केन्द्र में है और सूरज उसके चक्कर लगाता है। अतः ईसाई धर्म गुरुओं ने गैलीलियो को दण्ड देने की धमकी दी गई और उसे माफी मांगनी पड़ी। ऐसे समय में देकार्त ने अपने चिन्तन में ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'संदेह की विधि' को अपनाया और उसने कहा कि जिस किसी चीज पर भी संदेह किया जा सकता है, उस पर संदेह किया जाना चाहिए। जब इंसान के मन में संदेह करने की प्रक्रिया प्रारंभ होती है तो उससे शायद ही कोई चीज बची रहे।

रेने देकार्त
(1596 - 1650)

ज्ञान अर्जित करने के लिए संदेह की विधि को अपनाकर देकार्त के चिन्तन ने अप्रत्यक्ष रूप से ईसाई धर्म और बाईबलीय ज्ञान के प्रभुत्व को चुनौती दी। इस मायने में उन्हें आधुनिक युग का प्रतीक माना जाता है। देकार्त स्वयं एक श्रद्धालु ईसाई थे। वे धर्म के मामलों में चर्च के प्रभुत्व को मानते थे लेकिन वे यह भी मानते थे कि दर्शन और विज्ञान का क्षेत्र चर्च की दखल से स्वतंत्र होना चाहिए। विज्ञान और दर्शन की स्वतंत्रता को लेकर उनके मन में हमेशा ही अन्तर्द्वन्द्व रहा। गैलीलियो के चर्च के विरुद्ध बात करने का नतीजा वे देख चुके थे इसलिए अपने डर और अन्तर्द्वन्द्व को उन्होंने अपनी एक पुस्तक में कुछ इस तरह लिखा है, ''अपनी वैयक्तिक सीमाओं को पूरी तरह से ध्यान में रखते हुए मैं कोई भी अधिकारपूर्ण दावा नहीं करता। मैं अपने सारे विचारों के प्रामाण्य के लिए कैथोलिक चर्च के प्रभुत्व को स्वीकार करता हूं और मेरे से ज्यादा समझदार व्यक्तिओं के निर्णय को मानता हूं। मैं चाहूंगा कि मेरी किसी भी धारणा में कोई भी व्यक्ति तब तक विश्वास न करे जब तक कि वह उसे स्पष्ट और अकाट्य तर्क के आधार पर स्वयं सत्य नहीं मान ले।'' धर्म के इस आतंक के समय में देकार्त संदेह को ज्ञान प्राप्त करने की विधि बना रहे थे जो सीधे–सीधे ईसाई धर्म के खिलाफ खड़ी थी।

देकार्त के ज्ञान संबंधी विचारों पर चर्चा करने से पहले यह देखने से हमें मदद मिलेगी कि देकार्त से पहले और उसकी समकालीन दुनिया में ज्ञान को लेकर क्या विमर्श था और ज्ञान के बारे में किस तरह के सवाल उठाए जा रहे थे? ज्ञान की दुनिया में हमेशा से ही संशयवादी रहे हैं। संशयवादी हमेशा से ही ज्ञान की सत्यता को लेकर सवाल उठाते रहे हैं। यह ऐसा मत है जो ज्ञान के बारे में सवाल उठाता रहा है कि, हम कैसे जानते हैं कि हम जो जानते हैं वह सत्य है ? यह ज्ञान की एक प्रमुख समस्या है। इस समस्या को एक उदाहरण के माध्यम से समझते हैं। मान लीजिए, मैं अभी एक टेबिल पर बैठकर लिख रहा हूं। मुझे इस टेबिल के बारे में बहुत से इन्द्रिय अनुभव हो रहे हैं और मैं मानता हूं कि इन्द्रिय अनुभव से मुझे जो ज्ञान हो रहा है वह सही है। अर्थात् मुझे इन्द्रिय अनुभव से यह टेबिल भूरे रंग की, छूने पर कठोर एवं चिकनी और चौकोर, आदि महसूस हो रही है। लेकिन संशयवादी सवाल उठाते हैं कि यह कैसे तय होगा कि टेबिल के बारे में मुझे इन्द्रिय अनुभव से जो ज्ञान हो रहा है, वह सत्य है? संशयवादी सवाल करते हैं कि, अनेक बार हमें जो दिखता है वह सत्य नहीं होता। मान लीजिए, हम किसी रेगिस्तान में हैं और तेज धूप खिली हुई है। अनेक बार हमें ऐसा लगता है कि दूर कहीं पानी भरा है। जब हम उस स्थान पर पहुंचते हैं तो पाते हैं कि थोड़ी देर पहले हम जहां पानी का होना मान रहे थे, वहां पानी तो नहीं है। जबकि हमारी आंखों से हमें वहां पानी का ज्ञान हो रहा था। लेकिन इसके बावजूद इन्द्रिय अनुभव से होने के बाद भी सत्य तो नहीं है। इसी प्रकार अनेक बार हम अपने जीवन में इन्द्रिय अनुभव को वास्तविक ज्ञान से भिन्न पाते हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***ऊपर दिए गए उदाहरण को ध्यान में रखते हुए एक उदाहरण लिखिए जो की इन्द्रिय अनुभव हो पर वास्तविक ज्ञान से भिन्न हो।***

हम अनेक बार सपना भी देख रहे होते हैं और सपना देखते हुए, हमें लगता है कि जो हम देख रहे हैं वह एकदम सही है। ऐसा ही हम अनेक बार जादू में भी देखते हैं कि, कोई जादूगर अपनी टोपी से कबूतर निकालकर हमें दिखा रहा है। हमें उस समय कबूतर निकलता हुआ दिखाई देता है। हमारी आंखें ऐसा साक्षात् देखती हैं। लेकिन वह सत्य तो नहीं होता। फिर हम कैसे मानें कि हमें जो इन्द्रिय अनुभव से ज्ञान हो रहे हैं वे सत्य हैं?

देकार्त संशयवादियों के द्वारा ज्ञान के क्षेत्र में उठाए गए इन सवालों का हल खोजना चाहते थे। देकार्त के समय में प्राकृतिक विज्ञानों एवं गणित के क्षेत्र में भी बहुत काम हो रहा था। ऐसा ज्ञान जिस पर संदेह न किया जा सके और जो अनिवार्य रूप से सत्य हो, इस प्रकार के ज्ञान के आदर्श के रूप में गणितीय ज्ञान को देखा जाता था। प्लेटो की भांति देकार्त गणितीय ज्ञान के प्रति बहुत आकर्षित थे लेकिन वे विज्ञान से भी प्रभावित थे।

गणित और विज्ञान में ज्ञान प्राप्त करने की विधियां एक–दूसरे से बहुत भिन्न होती हैं। जहां गणित में समस्त ज्ञान बुद्धि द्वारा अर्जित होता है वहीं विज्ञान में इन्द्रिय अनुभव के आधार पर प्राप्त किया जाता है।

कुछ प्रश्न–

- ***आप गणित और विज्ञान में ज्ञान प्राप्त करने की विधियों में किस प्रकार की भिन्नता देखते है?***

देकार्त भी प्लेटो की भांति ज्ञान को ठोस और पक्की नींव पर खड़ा करना चाहते थे और इसलिए उन्होंने निश्चित एवं असंदिग्ध ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक दार्शनिक विधि अपनाई और इसके लिए उन्होंने चार नियम बताएः

पहला नियम, जब तक किसी चीज की सत्यता का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो जाए तब तक उसे सत्य नहीं मानना। अर्थात् किसी चीज के बारे में अपनी धारणा बनाते समय जल्दबाजी और पूर्वाग्रह को सावधानीपूर्वक दूर करना और उसी चीज को ग्रहण करना जिसकी सत्यता पर संदेह न किया जा सके। दूसर नियम, जब भी किसी समस्या पर विचार करना हो तो उसके उचित समाधान के लिए जितना संभव और जरूरी हो, उसके छोटे–छोटे हिस्से करके विश्लेषण करना। तीसर नियम, किसी भी प्रश्न पर व्यवस्थित ढंग से विचार करते हुए सरल, सहज और सुगम चीजों के ज्ञान से शुरू करके आहिस्ता–आहिस्ता एक निश्चित क्रम में आगे बढ़ते जाना। चौथा नियम, अपने विचारों में कदम–कदम पर ठहरकर पुनः उन्हें देख लेना ताकि इस बात पर यकीन हो जाए कि विचार श्रृंखला में कहीं भी कोई चूक तो नहीं हो गई है।

देकार्त ने ज्ञान प्राप्त करने की विधि के बारे में जो कहा गया है उससे यह माना जा सकता है कि वे ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी आरंभिक बिन्दु की तलाश में थे। कोई ऐसा ज्ञान जिस पर संदेह न किया जा सके। उनका ऐसा मानना था कि कोई प्रस्थान बिन्दु मिल जाने पर बुद्धि के सहारे तर्क करते हुए असंदिग्ध ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। किसी असंदिग्ध और निश्चित ज्ञान से दूसरे असंदिग्ध और निश्चित ज्ञान पर पहुंचने का यह गणितीय तरीका है जिसे निगमन भी कहा जाता है।

> निगमन विधि में किसी असंदिग्ध और निश्चित ज्ञान से दूसरे असंदिग्ध और निश्चित ज्ञान पर पहुंचा जाता है। जैसे गणित में पहले किसी नियम को बताना और फिर उस नियम के सहयोग से प्रश्नो को हल करना।

देकार्त ने अपनी विधि के अनुसार पहले से प्राप्त प्रत्येक ज्ञान को सत्य मानने से इंकार किया और उस पर संदेह किया। देकार्त ने अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी में होने वाले अनुभवों एवं ज्ञान पर भी संदेह किया। रोजमर्रा की जिन्दगी में होने वाले ऐसे अनुभवों को जिन्हें हम सत्य मानते हैं, उनके बारे में वे कहते हैं कि यह संभव है कि कोई शैतान हमें धोखा दे रहा हो। वह शैतान हमें भरमाए हुए हो। हमें लग सकता है कि हम जाग रहे हैं लेकिन हम सपना देख रहे हों। इस प्रकार देकार्त इन्द्रिय अनुभव से ज्ञात होने वाली प्रत्येक चीज पर संदेह करते हैं। वे एक उदाहरण देते हैं, ''क्या मैं इस पर संदेह कर सकता हूं कि मैं आग के सामने कपड़े पहने बैठा हूं?'' वे कहते हैं, ''हां, ऐसा हो सकता है क्योंकि अनेक बार मैं ऐसे सपने देखता हूं और जबकि मैं बिना कपड़ों के बिस्तर में सो रहा होता हूं। बहुत बार पागल आदमी एक भ्रम की स्थिति में होता है और यह संभव है कि मैं भी उसी की तरह कर रहा हूं।'' इसी तरह वह दूसरा उदाहरण देता है। मान लीजिए, मैं अपने कमरे की खिड़की से बाहर देख रहा हूं और मुझे कोई चीज चलती–फिरती नजर आ रही है। उसने सूट पहना है एवं टोपी लगाई हुई है और वह चल रही है। मैं यह मान बैठता हूं कि वह कोई आदमी है। लेकिन ऐसा भी तो हो सकता है कि वह कोई मशीन हो और अपने–आप चल रही हो।

देकार्त निश्चित और असंदिग्ध ज्ञान पर पहुंचने के लिए संदेह की विधि को इस हद तक ले जाते हैं कि पहले से ज्ञात कोई भी चीज उससे बाहर नहीं रह जाती। हालांकि ज्यामिति और गणित के ज्ञान को संदेह से

परे माना जाता है लेकिन देकार्त का मानना है कि उस पर भी संदेह किया जा सकता है। लेकिन वह कहता है कि ऐसा हो सकता है कि मैं 2+3 जोड़ रहा हूं और संभवतः यह गलत हो क्योंकि कोई शैतान मुझे धोखा देने में लगा हो। यदि देकार्त का संदेह इतना जबरदस्त है तो सवाल उठता है कि फिर उनके अनुसार सत्य और असंदिग्ध ज्ञान किसका और कैसे हो सकता है?

जब देकार्त प्रत्येक चीज पर संदेह कर रहे थे और असंदिग्ध और सत्य ज्ञान की तलाश में थे तभी उनका ध्यान इस ओर गया कि कम से कम एक चीज है जिस पर संदेह नहीं किया जा सकता और वह है, ''मैं सोचता हूं इसलिए मैं हूं।'' ("I am, because I think") लेकिन सवाल उठता है कि इसका मतलब क्या है और यह असंदिग्ध कैसे है?

देकार्त कहते हैं कि यह संभव नहीं है कि 'सोचने वाले मन' पर संदेह किया जाए। यदि हमारा मन सोचने का काम कर रहा है तो उसका होना निश्चित है। इसलिए बाकी सभी चीजों की बनिस्बत 'मन' का अस्तित्व असंदिग्ध है और यदि मेरा सोचना बंद हो जाए तो मेरे होने के बारे किसी तरह का प्रमाण नहीं होगा। अर्थात् यदि मैं सोचता हूं तो इससे सोचने वाले मन का असंदिग्ध ज्ञान तो होता ही है। 'मैं' एक ऐसी चीज हूं जो सोचता है और मेरे अस्तित्व का सार इसी में है कि मैं सोचता हूं। सोचने के लिए किसी भी भौतिक चीज की जरूरत नहीं है। लेकिन देकार्त अपने से ही सवाल करते हैं कि यह कैसे सिद्ध होता है कि 'मैं सोचता हूं'? इसके जबाव में वह कहता है कि यह असंदिग्ध है और एकदम स्पष्ट एवं सुनिश्चित है। इससे आगे वह एक और सिद्धान्त देते हैं कि, ''सभी चीजें जिन्हें हम बहुत ही स्पष्ट और सुनिश्चित रूप में ग्रहण करते हैं वे सत्य हैं।'' यहां देकार्त 'सोचने' का आशय व्यापक अर्थों में लेते हैं। अर्थात् उनका सोचने से आशय– समझना, महसूस करना, नकारना, संकल्प करना, कल्पना करना आदि से है। वे कहते हैं कि सोचना मन का सार तत्व है। मन हमेशा सोचता है, सिर्फ जागृत अवस्था में ही नहीं बल्कि गहरी नींद में भी सोचता है।

यदि देकार्त के इस वाक्य को, ''मैं सोचता हूं, इसलिए मैं हूं'' को समझने के लिए थोड़ी देर के लिए उल्टा करके देखा जाए तो यह ''मैं नहीं सोचता, इसलिए मैं हूं'' बनता है। इस कथन के बारे में कहा जाएगा कि इस कथन से भी सोचने वाले मन का होना सिद्ध होता है क्योंकि यह भी ''मैं नहीं सोचता इसलिए मैं हूं'' सोचने वाला मन ही यह कह रहा है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि देकार्त अपनी संदेह की विधि से एक ऐसे मन की सत्ता पर पहुंचते हैं जिसका होना निश्चित है और उस पर संदेह नहीं किया जा सकता। इसी क्रम में वह आगे कहता है कि बाकी लोगों के 'मन' से मेरा 'मन' कहीं ज्यादा स्पष्ट और निश्चित है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि देकार्त सभी चीजों पर संदेह करते हुए सोचने वाले मन की असंदिग्धता पर पहुंचते हैं। उन्होंने इन्द्रिय अनुभवों को संदेह की नजर से देखा। मन अथवा बुद्धि द्वारा प्राप्त होने वाले ज्ञान को उन्होंने असंदिग्ध और निश्चित माना। दर्शन के क्षेत्र में देकार्त का यह महत्त्वपूर्ण योगदान है कि उन्होंने अपनी संदेह की विधि से उन सभी विश्वासों पर सोचने के लिए प्रेरित किया जिन्हें हम सत्य माने बैठे रहते हैं। यदि व्यक्ति के मन में एक बार संदेह की प्रक्रिया शुरू हो गई तो इसके मायने हैं कि उसके दायरे में वे सभी विश्वास आ जाते हैं जिन्हें हम चाहे रोजमर्रा की जिन्दगी के बारे में मानते हों अथवा जो हमें हमारी परंपरा से मिलें हो या फिर धर्म के बारे में माने गए हों।

4.2.3. जॉन लॉक

जॉन लॉक का जन्म 1632 में हुआ। न सिर्फ दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में बल्कि राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र में लॉक का योगदान महत्वपूर्ण माना जाता है। लॉक की दिलचस्पी भी प्लेटो और देकार्त की तरह सत्य, सुनिश्चित एवं तर्कसंगत ज्ञान प्राप्त करने में थी। लेकिन इसकी खोज में उन्होंने जिस रास्ते को अपनाया वह इन दोनों दार्शनिकों से एकदम भिन्न था। जैसा कि हमने प्लेटो और देकार्त के संदर्भ में जाना, इन दोनों दार्शनिकों और बहुत से अन्य दार्शनिकों का जोर बुद्धि के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने पर था और इन्होंने बुद्धि से प्राप्त होने वाले ज्ञान को ही सत्य और सुनिश्चित ज्ञान माना। इन्द्रिय अनुभवों के माध्यम से प्राप्त होने वाले ज्ञान को प्लेटो ने तो सिरे से ही खारिज कर दिया लेकिन देकार्त ने अनुभवों से प्राप्त ज्ञान को जितना संदेह की नजर से देखा, उससे इन्द्रिय

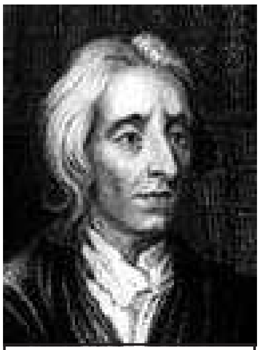

जॉन लॉक
(1632–1704)

अनुभव से प्राप्त ज्ञान के लिए कोई खास स्थान नहीं बचता। इनसे उलट लॉक ने इन्द्रिय अनुभव से प्राप्त होने वाले ज्ञान पर जोर दिया। पश्चिमी दर्शन की दुनिया में ऐसा पहली बार था और यह एक नए तरह का सिद्धान्त था। हालांकि विज्ञान के क्षेत्र में हो रही प्रगति में भी अनुभव से प्राप्त होने वाले ज्ञान को महत्व दिया जा रहा था लेकिन दर्शन के क्षेत्र में पहली बार अनुभव के लिए विधिवत स्थान दिलाने का जो प्रयास लॉक ने किया उसके लिए पश्चिमी दर्शन की दुनिया में उन्हें अनुभववादी धारा का अगुवा दार्शनिक माना जाता है। दरअसल, अपने पूर्ववर्ती दार्शनिकों की तरह ही लॉक के सामने भी ज्ञान से जुड़े सवाल थे। वे सोच रहे थे कि आखिर इंसान को ज्ञान होता कैसे है? इंसानी ज्ञान के वे कौनसे तरीके हैं जिनसे मानव मन को ज्ञान होता है और इंसान को किन वस्तुओं का ज्ञान हो सकता है?

लॉक का मानना था कि जन्म के साथ हमारा मन 'कोरी स्लेट' या 'कोरे कागज' की तरह होता है। इसका क्या अर्थ है? जैसा कि हमने प्लेटो वाले हिस्से में देखा, प्लेटो मानते हैं कि प्रत्यय जन्मजात रूप से इंसान के मन अथवा आत्मा में रहते हैं। अनुभव तो उसका स्मरण मात्र करवाते हैं। इससे उलट लॉक कहते हैं कि कोई भी प्रत्यय जन्मजात रूप से इंसान के मन में नहीं होते। लेकिन हमारा सामान्य ज्ञान हमें बताता है और हम देखते हैं कि बड़े होने पर तो इंसान के मन में तमाम तरह का ज्ञान अथवा प्रत्यय होते हैं; जैसे कि–पेड़, पानी, हवा, किताब, पेन, खेत, फसल, रंग और फल आदि–आदि। फिर ये प्रत्यय कैसे बनते हैं? लॉक कहते हैं कि जन्म के बाद अनुभवों के जरिए तमाम अवधारणाएं इंसान के मन में बनती हैं। उनका मानना है कि किसी भी तरह का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन्द्रिय अनुभव पहला कदम होते हैं। पश्चिमी दुनिया के लिए यह एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त था। इससे पहले या तो बुद्धि को ज्ञान का स्रोत माना जाता था या फिर बाईबलीय ज्ञान को। जैसा कि आपने ऊपर देखा न्याय दर्शन तो प्रत्यक्ष को पहला प्रमाण मानता है, और प्रत्यक्ष तो अनुभव ही है। भारतीय दर्शन में तो अनुभव, ज्ञान के आधार के रूप में स्वीकृत था।

लॉक मानते थे कि हमारा समस्त ज्ञान इन्द्रिय अनुभव से अर्जित होता है। हालांकि उन्होंने गणित और तर्कशास्त्र के ज्ञान को इसका अपवाद जरूर माना। उन्होंने प्लेटो और देकार्त के जन्मजात प्रत्ययों के सिद्धान्त का विरोध करते हुए कहा कि कोई भी प्रत्यय और सिद्धान्त जन्मजात नहीं होते हैं। उन्होंने विस्तार से यह बताया कि किस तरह इंसानी अनुभव से विभिन्न तरह के प्रत्यय अथवा अवधारणाएं बनती हैं। उनका मानना था कि हमारी अवधारणाएं और ज्ञान दो तरह से बनता है। एक, इन्द्रिय संवेदनों के जरिए और दूसरे, चिन्तन द्वारा अर्थात् इन्द्रिय संवेदनों से प्राप्त अनुभवों को जोड़कर मन की भूमिका द्वारा।

लॉक कहते हैं कि इन्द्रिय संवेदनों के माध्यम से हमें बहुत से अनुभव होते हैं। उदाहरण के लिए, मैं अभी एक फूल को देख रहा हूं। यह गुलाब का फूल है। इसका रंग लाल है और इसे मैं अपनी आंख से देख पा रहा हूं। इसकी गंध को मैं अपनी नाक से महसूस कर पा रहा हूं। इसे छूने पर यह मुझे मुलायम और चिकना महसूस होता है, इसे मैं स्पर्श के माध्यम से जान पा रहा हूं। इसी तरह यदि मैं इसे चखूं तो इसका स्वाद जीभ से महसूस कर सकता हूं। गुलाब के फूल के बारे में ये सभी अनुभव मुझे इन्द्रिय संवेदनों के माध्यम से होते हैं। इसी तरह हमारा मन या बुद्धि इन सभी अनुभवों को ग्रहण कर इसे एक गुलाब के फूल के साथ पिरो देता है और यह गुलाब के फूल के बारे में मेरा एक तरह का ज्ञान बन जाता है। इसी के साथ लॉक कहते हैं कि किसी चीज के बारे में हमारे मन में बने प्रत्यय को उस चीज के इन्द्रिय संवेदन से अलग करके देखा जाना चाहिए। हमें अपनी प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय से अलग–अलग अनुभव होते हैं और यह अनुभव होने की प्रक्रिया प्रत्यय से अलग है। ये अनुभव किसी वस्तु से प्राप्त होते हैं जो कि उस वस्तु के गुण होते हैं। लेकिन इन अनुभवों से जो चीज हमारे मन में बनती है वह प्रत्यय होती है और निश्चित तौर पर प्रत्यय हमारे मन में रहते हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***प्रत्ययों के निर्माण में इंद्रिय अनुभव किस तरह से सहायक होती है?***

लॉक इन प्रत्ययों को दो श्रेणियों में बांटते हैं। एक, सरल प्रत्यय और दूसरे, जटिल प्रत्यय। लॉक सरल प्रत्ययों को अनुभव की सबसे छोटी इकाई के रूप में देखते हैं जो कि सीधे इन्द्रिय संवेदन के माध्यम से बनते हैं जैसे कि, पीला, वर्गाकार, मुलायम, कठोर और कोयल की आवाज आदि–आदि। इसे दूसरे तरह से कहा जाए तो इन प्रत्ययों के बनने के लिए अनिवार्यतः इन्द्रिय अनुभव आवश्यक हैं। बिना इनके ये बन ही नहीं सकते। लेकिन दूसरी तरफ ऐसे प्रत्यय भी होते हैं जो कि इन सरल प्रत्ययों के संयोग से बनते हैं। जैसे संतरा (नारंगी रंग, गोलाकार, स्वाद में खटटा, रसीला, छुने में मुलायम)

इसी तरह लॉक इन प्रत्ययों का भेद **वास्तविक और काल्पनिक** के रूप में भी करते हैं। वास्तविक प्रत्ययों से लॉक का आशय है, ऐसे प्रत्यय जिनके अनुरूप कोई वस्तु इस प्रकृति में पाई जाती है या इस प्रकृति में जिनका कोई आधार है (जैसे सफेद रंग का खरगोश, हिरण, पेड)। काल्पनिक प्रत्ययों से उसका अर्थ ऐसे प्रत्ययों से है जो कि हम दो प्रत्ययों को मिलाकर बना देते हैं और जिनके अनुरूप प्रकृति में कोई चीज नहीं होती। उदाहरण के लिए, कोई कहे कि सींगों वाला खरगोश।

जोर्ज बर्कले (1685–1753)

लॉक ने कहा कि इस दुनिया में विशेष चीजों का ही अस्तित्व होता है और हमारा मन उनमें सामान्यता खोजता है। उदाहरण के लिए, हमें प्रकृति में अलग–अलग तरह के पेड़ दिखाई देते हैं। ये पेड़ अलग–अलग प्रजाति के हैं और एक ही प्रजाति में भी अनेक पेड़ होते हैं। जैसे कि हमारे घर के आसपास नीम के चार पेड़ हैं और ये चारों पेड़ नीम के होने के बाद भी अलग–अलग हैं। लेकिन हम सभी पेड़ों के लिए 'पेड़' शब्द का इस्तेमाल करते हैं या हमारे घर के आसपास के चारों नीम के पेड़ों के लिए भी 'नीम के पेड़' कह देते हैं। इस उदाहरण में हमने 'पेड़' और 'नीम' की सामान्य संज्ञा दे दी है। वे कहते हैं कि सामान्य की यह धारणा सिर्फ शाब्दिक है। पेड़ का सामान्य प्रत्यय अनुभव के आधार पर हमारा मन निर्मित करता है।

लॉक के ज्ञान संबंधी चिन्तन में हम देख सकते हैं कि इन्द्रिय अनुभव से निर्मित होने वाले ज्ञान पर बल है। हालांकि वह मन की भूमिका को इन इन्द्रिय अनुभवों को ग्रहण करने वाले एवं सरल प्रत्ययों से जटिल प्रत्ययों का निर्माण करने वाले के रूप में देखते हैं। इन्द्रिय अनुभव के माध्यम से ज्ञान की निर्मिति शिक्षा में खास महत्व रखती है। यह शिक्षण के उन तमाम सिद्धान्तों का विरोध करती है जिसमें कि व्याख्यान के तरीके को अपनाया जाता है।

कुछ प्रश्न–

- ***लॉक ज्ञान निर्माण की प्रकिया में इंद्रिय व बुद्धि की भूमिका में किस तरह का संबंध देखते है?***

4.2.4. बर्कले

पश्चिमी दार्शनिकों के बारे में अभी तक की गई चर्चा के बाद जॉर्ज बर्कले के विचार हमें थोड़े मुश्किल प्रतीत होंगे। समस्त जड़ पदार्थों के निषेध के कारण बर्कले का दार्शनिक चिन्तन पहली नजर में दुनिया को

जानने–समझने के हमारे सामान्य बोध के विरुद्ध प्रतीत होता है। हालांकि अपने मत के प्रतिपादन के लिए वह ठोस तर्क देता है। इसके लिए उनके विचारों को गंभीरता से समझने की जरूरत होगी। बर्कले अपने दर्शन से यह प्रतिपादित करने का प्रयास करता है कि समस्त यथार्थ जगत (बाहरी जगत में पाई जाने वाली समस्त वस्तुएं) मानसिक हैं। अर्थात् बाहरी जगत में पाई जाने वाली समस्त चीजों का अस्तित्व ज्ञाता से स्वतंत्र नहीं है। दूसरी तरह कहें तो, यदि ज्ञाता नहीं है तो बाहरी चीजों का अस्तित्व भी नहीं है। अपने इसी विचार की वजह से बर्कले इस दर्शन की दुनिया में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं।

बर्कले इस दुनिया के बारे में होने वाले समस्त ज्ञान का स्रोत प्रत्यक्ष अनुभवों को मानते हैं लेकिन वे प्रत्यक्ष के ज्ञान से बाहर किसी वस्तु के होने को स्वीकार नहीं करते। इसे एक उदाहरण से समझने की कोशिश करते हैं। मान लीजिए, आपसे कोई कहे, ''मैं जिस भी चीज को देख रहा होता हूं उसका अस्तित्व मेरे देखने पर निर्भर करता है, और यदि मैं उस चीज को नहीं देख रहा होता हूं तो उस चीज का अस्तित्व भी नहीं है।'' यह बात आपको कुछ अटपटी लगेगी या नहीं ? उदाहरण के लिए, मैं अपनी खिड़की के बाहर एक पेड़ देख रहा हूं। बर्कले के अनुसार इस पेड़ का अस्तित्व मेरे देखने पर निर्भर है। अर्थात् इस पेड़ का अस्तित्व इसलिए है क्योंकि मैं इसे देख रहा हूं। यदि मैं इस पेड़ को नहीं देख रहा हूं तो इस पेड़ का अस्तित्व भी नहीं है।

इसे समझने के लिए बर्कले के विचारों, उसकी प्रतिबद्धता और दर्शन की दुनिया में चल रहे विचारों पर थोड़ा गौर करना पड़ेगा। बर्कले का जन्म 1685 ईस्वी में आयरलैण्ड में हुआ था। वह ईसाई धर्म का न सिर्फ अनुयायी थे बल्कि एक पादरी भी थे। ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में प्रगति के साथ ही धार्मिक मान्यताओं एवं विश्वासों पर अनेक सवाल खड़े होने लगे थे। बर्कले के पूर्ववर्ती और समकालीन कुछ दार्शनिक धार्मिक मान्यताओं, ईश्वर के अस्तित्व, आत्मा की अमरता आदि का विरोध कर रहे थे और ये दार्शनिक इस दुनिया में सिर्फ जड़ पदार्थों के अस्तित्व को ही स्वीकार करते थे। इनके विरुद्ध बर्कले का लक्ष्य ईसाई धर्म की मान्यताओं को दृढ़ता से स्थापित करना था। उसने अपने दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व, उसके धर्मों और आत्मा की अमरता को सिद्ध करने का प्रयास किया। उसका मानना था कि ईश्वर, आत्मा और प्रत्ययों के अलावा किसी चीज का अस्तित्व काल्पनिक ही हो सकता है।

बर्कले को अनुभववादी दार्शनिक माना जाता है क्योंकि वह ज्ञान होने का आवश्यक स्रोत प्रत्यक्ष अनुभव को मानता है। वह कहता है कि हम इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष कर रहे होते हैं उस समय हम वस्तु को नहीं वस्तु के गुणों को जान रहे होते हैं। इन्द्रिय प्रत्यक्ष में हम वस्तु के रंग, आकार, ध्वनि आदि का प्रत्यक्ष कर रहे होते हैं। हम इन रंगों और ध्वनियों आदि के कारणों का प्रत्यक्ष नहीं कर रहे होते। अर्थात् ये रंग, ध्वनि एवं आकार आदि किस वजह से महसूस होती हैं, यह हमें नहीं पता चलता। इसके साथ ही वह एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी कहता है कि वस्तु के ये गुण प्रत्यक्ष करने वाले के सापेक्ष होते हैं। इसका एक मतलब यह हुआ कि किसी वस्तु में कोई भी गुण वस्तुनिष्ठ रूप में नहीं रहते अथवा वस्तु में ऐसे गुण नहीं होते जो अनिवार्यतः वस्तु में पाए जाते हों और सभी जानने वालों को समान महसूस हों। इसे एक उदाहरण से समझते हैं। मान लीजिए, हमारा एक हाथ ठंड़ा और एक हाथ गरम है। यदि हम इन दोनों हाथों को बारी–बारी से गरम पानी में डालें तो एक हाथ को पानी ठंडा लगेगा और एक को गरम। इस उदाहरण से बर्कले यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि वस्तुओं के गुण जानने वाले के मन में होते हैं। यदि वे वस्तु में होते तो जानने वाले को एक समान ही महसूस होते, लेकिन वे तो अलग–अलग महसूस होते हैं। इसी के साथ वह कहता है कि इन प्रत्यक्ष किए जा सकने वाले गुणों के अलावा कोई भी चीज प्रत्यक्ष करने योग्य नहीं होती। साथ ही प्रत्यक्ष की जा सकने योग्य वस्तुएं गुण या गुणों के समुच्चय के अलावा और कुछ नहीं होतीं।

इस उदारहण से बर्कले यह सिद्ध करना चाहते हैं कि यदि वस्तु में कोई भी गुण वस्तुनिष्ठ होते तो सभी को समान रूप से महसूस होते। लेकिन ऐसा नहीं होता, इन गुणों का प्रत्यक्ष जानने वाले पर निर्भर करता है।

इसी के साथ उसका मानना था कि मन के अलावा किसी भी चीज का अस्तित्व संभव नहीं है। इसके लिए बर्कले कहता है कि जब मैं किसी चीज को देख रहा हूं तो उसका अस्तित्व है। यदि मैं उस चीज को नहीं देख रहा हूं तो उसका अस्तित्व नहीं है। लेकिन बर्कले कोई अबूझ दार्शनिक तो थे नहीं। वह अपने समय में विज्ञान की प्रगति से भी परिचित था। कोई भी यह सवाल सहज ही कर सकता है कि, ''मैं अपनी खिड़की से बाहर एक पेड़ देखता हूं। यह तो सही है कि पेड़ को देखते हुए मुझे पेड़ का ज्ञान होता है। लेकिन मैं कमरे में नहीं हूं अथवा पेड़ को नहीं देख रहा हूं तो क्या पेड़ का अस्तित्व भी नहीं है ?'' बर्कले कहेगे कि, ''यदि इसे कोई नहीं देख रहा है तो पेड़ का अस्तित्व नहीं है।'' लेकिन आगे सवाल किया जा सकता है कि मैं हर रोज इस पेड़ को इसी स्थान पर देखता हूं और मैं ही नहीं अनेक व्यक्ति इस पेड़ को यहीं देखते हैं। तो क्या मेरे नहीं देखने पर इसका अस्तित्व नहीं है ? बर्कले पुनः यही कहेगा कि यदि कोई नहीं देख रहा है तो इस पेड़ का अस्तित्व नहीं है। लेकिन हम देखते हैं कि इसके लिए वह एक शर्त लगाता है कि 'यदि कोई नहीं देख रहा है तो' पेड़ का अस्तित्व नहीं है। थोड़ी देर के लिए मान लेते हैं कि कोई आसपास नहीं है और कोई उसे नहीं देख रहा है, तो क्या पेड़ का अस्तित्व नहीं है? बर्कले कहेगा कि यदि इस पेड़ को कोई नहीं देख रहा है तो ईश्वर तो उसे देख ही रहा है। अतः पेड़ का अस्तित्व तो रहेगा ही। लेकिन यहां भी अन्ततः बर्कले पेड़ के होने को किसी के देखने अथवा प्रत्यक्ष से ही जोड़ते हैं। अब चाहे यह देखना किसी व्यक्ति का हो या ईश्वर का। बर्कले प्रत्यक्ष के अलावा किसी चीज के ज्ञान को स्वीकार नहीं करते। लेकिन इसी सिद्धान्त को आगे वस्तुओं के अस्तित्व से जोड़कर वह कहता है कि यदि किसी चीज का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो रहा है तो उसका अस्तित्व भी नहीं है। इस सिद्धान्त के चलते बर्कले बाहरी दुनिया के बारे में वस्तुओं के स्वतंत्र अस्तित्व को नकारता है। अर्थात् ज्ञाता के बिना ज्ञेय वस्तुओं का अस्तित्व नहीं है या इसे दूसरी तरह से कहें तो जानने वाले के बिना जानने योग्य वस्तुओं (समस्त बाहरी दुनिया में पाई जाने वाली वस्तुओं) का अस्तित्व नहीं है।

यह थोड़ी मुश्किल बात है और यह हमारे सामान्य बोध से अलग लगती है। हमने अध्याय 2 में इस बारे में तो चर्चा की है कि ज्ञान जानने वाले अथवा ज्ञाता से अलग नहीं रहता और यह ज्ञाता की मनःस्थिति है। अर्थात् किसी भी चीज के ज्ञान होने के लिए ज्ञाता का होना अनिवार्य है। लेकिन बर्कले तो यहां तक कहता है कि ज्ञाता से स्वतंत्र किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है। वह कहता है कि हमें चीजें बाहरी जगत में प्रतीत होती हैं लेकिन उनका ज्ञाता से स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। इसके लिए वह अपने प्रत्यक्ष संबंधी मत को सामने रखता है। सामान्यतया जब हम बाह्य देश (किसी दिशा में देखते हुए जिस स्थान का हमें आभास होता है) तथा दूरी का प्रत्यक्ष करते हैं तब हम बाह्य देश को अपने मन से अलग और स्वतंत्र मानते हैं, लेकिन बर्कले कहते हैं कि यह सही नहीं है। इसे एक उदाहरण से समझने की जरूरत है। मान लीजिए, मैं दूर एक पेड़ को देख रहा हूं। पेड़ को देखते हुए पेड़ और मेरे बीच मुझे स्थान और दूरी का आभास होता है। अर्थात् हमें लगता है कि हमारे बीच खाली जगह और दूरी है। हम मानते हैं कि यह खाली जगह और दूरी हमारे मन से अलग और स्वतंत्र है अथवा इनका हमारे मन से स्वतंत्र अस्तित्व है। बर्कले कहते हैं कि वास्तव में इस खाली जगह और दूरी का मन से स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। बर्कले कहते हैं कि 'दूरी' तथा 'देश' प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। हमें प्रत्यक्ष अनुभव से इन चीजों का बोध नहीं होता। इसे समझाने के लिए बर्कले स्पर्श और आंख के माध्यम से होने वाले अनुभवों में फर्क बताते हैं। वे कहते हैं कि प्रत्येक इन्द्रिय संवेदन का विषय अलग होता है। जैसे कि सुनने का विषय ध्वनि है, उसी प्रकार देखने का विषय प्रकाश और रंग हैं। वे कहते हैं कि 'दूरी' या 'देश' देखने के विषय नहीं हैं। वह कहता है, जब मैं चन्द्रमा को देखता हूं, उस समय प्रत्यक्ष अनुभव में चन्द्रमा का आकार मुझे एक छोटे प्रकाशयुक्त गोले के रूप में दिखाई देता है। लेकिन इसके साथ ही मुझे यह भी पता चलता है कि चन्द्रमा मुझसे बहुत दूर है। मैं यह भी जानता हूं कि चन्द्रमा का जो रूप मुझे दिखाई पड़ रहा है वह उसका वास्तविक रूप नहीं है। जो चन्द्रमा मुझे इस समय दिखाई दे रहा है, वास्तव में चन्द्रमा उससे बहुत बड़ा है। अब प्रश्न उठता है कि यदि चन्द्रमा के प्रत्यक्ष के साथ मुझे दूरी का भी ज्ञान हो तो मुझे चन्द्रमा के वास्तविक आकार का भी ज्ञान

होना चाहिए। लेकिन मुझे चन्द्रमा के वास्तविक आकार का ज्ञान नहीं होता। इसका मतलब हुआ कि दूरी प्रत्यक्ष का विषय नहीं है। वह कहता है कि जिस पेन से मैं लिख रहा हूं, इसका स्पर्श उस पेन से अलग है जिसे मैं देख रहा हूं। आंख से मुझे पेन के रंग तथा प्रकाश की चमक का प्रत्यक्ष हो रहा है लेकिन स्पर्श से पेन की स्थिति का।

बर्कले मानते हैं कि ज्ञान में जो योगदान स्पर्श और देखने का है, वह अन्य संवदेनों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनका मानना है कि देखने और स्पर्श में फर्क होते हुए भी दोनों में परस्पर गहरा संबंध है। हम जो कुछ देखते हैं उसे स्पर्श के द्वारा भी महसूस कर सकते हैं। बर्कले मानते हैं कि हमें जो भी प्रत्यक्ष होता है वह मन से अलग नहीं होता। उसका कहना है कि जब हम किसी चीज को भाषा में अभिव्यक्त करते हैं तो यह मानने लगते हैं कि उस शब्द के अनुरूप किसी चीज के वास्तविक अस्तित्व है। इसका नतीजा यह होता है कि तमाम काल्पनिक चीजों को भी हम मानने लगते हैं। वह कहता है कि इस बात को प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करेगा कि, हमारे विचार, भाव और कल्पना द्वारा निर्मित प्रत्यय मन के बिना कोई अस्तित्व नहीं रखते हैं। वह यह भी कहते है कि प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त होने वाले संवेदन प्रत्यक्ष करने वाले हमारे मन के बिना नहीं रह सकते। मान लीजिए, मैं अपने कमरे में कुर्सी का प्रत्यक्ष कर रहा हूं। मैं वहां मौजूद हूं इसलिए ही मैं उसका प्रत्यक्ष कर पा रहा हूं। यदि मैं कमरे से बाहर आ जाउं तो मुझे उस कुर्सी का प्रत्यक्ष नहीं होगा। अर्थात् कुर्सी के प्रत्यक्ष या ज्ञान के लिए किसी चेतन मन का होना आवश्यक है। वह कहता है कि किसी तरह की गंध है क्योंकि उसे सूंघा गया, किसी तरह की ध्वनि है क्योंकि उसे सुना गया। इसी प्रकार किसी चीज का रंग या आकृति है क्योंकि उसे देखा गया। यदि कोई व्यक्ति नहीं सूंघ रहा है, सुन रहा है या देख रहा है तो इनके अस्तित्व का हमें ज्ञान नहीं होगा। अन्त में वह कहता है कि किन्हीं चीजों का होना वास्तव में उनका प्रत्यक्ष अनुभव किया जाना है। यदि प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया जाएगा तो वे चीजें भी नहीं होंगी।

लेकिन हमारा सामान्य बोध तो कहता है कि, यदि कोई वस्तु है तो वह प्रत्यक्ष करने वाले के बिना भी होती है। उदाहरण के लिए, मैं जिस रास्ते से निकलता हूं वहां पर पेड़ हैं। मैं इन्हें रोजाना वहीं पाता हूं। और मैं ही नहीं, कोई भी व्यक्ति वहां से गुजरता है वह भी उन्हें वहीं पाता है। अर्थात् इन वस्तुओं का अस्तित्व इन्हें प्रत्यक्ष करने वाले मन से स्वतंत्र है।

यदि वस्तु का होना उसका प्रत्यक्ष किया जाना है तो किसी वस्तु का प्रत्यक्ष नहीं किया जाता तो क्या उसका अस्तित्व भी नहीं रहता? बर्कले का मत है कि ऐसी कोई स्थिति नहीं होती जिसमें वस्तु का अस्तित्व हो तथा यह भी कहा जा सके कि उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। यदि वस्तु का प्रत्यक्ष मुझे नहीं होता तो किसी अन्य को होता है और यदि किसी को भी नहीं होता तो स्वयं ईश्वर को होता है। अर्थात् यदि वस्तु का अस्तित्व है तो उसका प्रत्यक्ष भी हो रहा है। यहां समस्या खड़ी हो जाती है कि यह वस्तु की वर्तमान स्थिति की के बारे हुआ। कोई वस्तु अतीत में थी अथवा भविष्य में होगी, यह किस आधार पर कहा जा सकता है? यदि किसी वस्तु के अस्तित्व और उसके प्रत्यक्ष होने को हम एक ही मानते हैं तो यह किस आधार पर माना जा सकता है कि कोई वस्तु अतीत में थी और भविष्य में होगी? अर्थात् यह कैसे मानें कि कमरे में दो दिन पहले मेज थी और कमरे में दो दिन बाद मेज होगी?

बर्कले का कहना है कि यदि हम कमरे में गए होते तो हम कमरे में मेज का प्रत्यक्ष करते। जब हम कहते हैं कि कमरे में मेज होगी तो इसका मतलब होगा कि यदि कमरे में जाएं तो वहां मेज होगी। लेकिन प्रत्यक्ष का होना ही वस्तु का होना है, इसमें कुछ कठिनाइयां शेष रह जाती हैं। प्रत्यक्ष तो व्यक्ति तक ही सीमित हो जाता है कि, किसी व्यक्ति को किसी चीज का प्रत्यक्ष हो रहा है और यह इन्द्रिय प्रत्यक्ष तक ही सीमित है। ऐसी स्थिति में आत्मबोध, गणित के सिद्धान्त, प्राकृतिक नियम या स्वयं बर्कले के अनुसार ईश्वर का बोध आदि कैसे संभव होंगे? इसके लिए बर्कले बुद्धि को भी ज्ञान का स्रोत मानकर इस कठिनाई से बचने का रास्ता निकालते हैं।

बर्कले का चिन्तन प्रत्यक्ष को ज्ञान का स्रोत मानता है। साथ ही वह यह भी कहता है कि हमें किसी वस्तु का ज्ञान नहीं होकर वस्तु के गुणों का ज्ञान होता है और वस्तु के ये गुण हमारे मन में रहते हैं। ये गुण किसी वस्तु के ऐसे गुण नहीं हैं जो कि ज्ञाता से स्वतंत्र हों। वह ज्ञाता से स्वतंत्र वस्तुओं के अस्तित्व को भी नकारता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बर्कले के ज्ञान की अवधारणा व्यक्तिनिष्ठ है। अर्थात् ज्ञान ज्ञाता पर निर्भर करता है और यह प्रत्येक ज्ञाता का अलग–अलग होता है।

भाग 2

4.3 ज्ञान की शर्तें

दर्शनशास्त्र में प्रायः ज्ञान के बारे में चिंतन या उसकी मीमांसा इस प्रश्न पर विचार करने से शुरु होती है कि आखिर ज्ञान कहेंगे किसे। प्रायः इस प्रकार के प्रश्न से एक प्रकार की खीझ पैदा होती है। आखिर जब हम कहते हैं कि हमें छतीसगढ़ के भूगोल का ज्ञान है तो हमारे मन में ज्ञान की कोई न कोई संकल्पना तो होती ही है। अब अगर कोई पलट कर हमसे पूछ ले कि पहले ये तो बताओ कि आखिर ये ज्ञान क्या चीज है तो अटपटा तो लगेगा ही। लेकिन दर्शनशास्त्र के लिए यह सवाल बेतुका नहीं है। दर्शनशास्त्री हमसे अपेक्षा करते हैं कि हमारे मन में ज्ञान की जो संकल्पना है उसे हम अभिव्यक्त करने की कोशिश करें और इस कोशिश के दौरान हम व्यवस्थित ढ़ग से उपरोक्त प्रश्न पर विचार करें। जब हम ज्ञान की संकल्पना की मुखर अभिव्यक्ति करेंगे तो दूसरों के साथ साझा भी करेंगे और एक सर्वमान्य समझ बनाने का भी प्रयास करेंगे।

विगत कई सदियों से दर्शनशास्त्री ज्ञान की एक पुख्ता समझ बनाने की कोशिश कर रहे हैं। इतना तो दर्शनशास्त्री मान चुके हैं कि ज्ञान एक प्रकार की मनोदशा है– ज्ञाता के मन में पैदा होने वाला एक प्रकार का हलचल है। हमारे मन में अनेक विचार आते हैं, हमारी खुब सारी मान्यतायें होती हैं और ये हमारे मन में हलचल उत्पन्न करती हैं। लेकिन इतना भर कह देने से बात नहीं बनती है। जैसे मनुष्य के बारे में इतना भर कह देने से काम नहीं चलेगा कि वह स्तनपायी जीव है। हालाँकि स्तनपायी जीव होना मनुष्य होने की अनिवार्य शर्त है। लेकिन मनुष्य होने के लिए स्तनपायी होना ही पर्याप्त नहीं है। अगर हम मनुष्य की पुख्ता समझ बनाना चाहते हैं तो हमें कुछ और शर्तें लगानी पड़ेगी जैसे मनुष्य एक ऐसा स्तंनपायी जीव है जो सीधे पैरों पर चल सकता है, हाथ और अंगूठे का सधा हुआ इस्तेमाल कर सकता है, वह सामाजिक प्राणी है, वह विचार और संवाद के लिए भाषा का प्रयोग करता है, आत्मचेतस प्राणी है, सूदूर अतीत की बात सोच सकता है और आने वाले समय की कल्पना कर उसके लिए योजनायें बना सकता है आदि–आदि। मनुष्य की संकल्पना को घेरने के लिए तो पता नहीं और कितनी सारी शर्तें लगानी पड़ेगी या ऐसा भी हो सकता है कि इनमें से कुछ बातें मनुष्य के बारे में सही तो हों, लेकिन वह मनुष्य होने की अनिवार्य शर्त नहीं हो।

इस प्रकार किसी प्राणी को हम मनुष्य तभी कहेंगे जब वह मनुष्य होने की कुछ न्यूनतम शर्तों को पूरा करता हो। अगर विश्लेषण के बाद हमने पाया कि मनुष्य होने की पाँच अनिवार्य शर्तें हैं, तो उन्हीं पाँच शर्तों को पूरा करने वाले प्राणी को हम मनुष्य कहेंगे। इन पाँच में से तीन या चार शर्तों को पूरा करना किसी प्राणी को मनुष्य कहने के लिए पर्याप्त नहीं होगा, क्योंकि हमने तो पहले ही उन्हीं शर्तों को रखा है जो अनिवार्य थीं। वैसी आनुशंगिक शर्तों को तो हमने पहले ही अलग कर दिया है जो अनिवार्य शर्तों पर ही टिकी होती हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***कौन– कौन सी अनिवार्य शर्तें मिलकर निम्न संकल्पनाओं की समग्र समझ बनाती है :***

  1. नदी 2. किताब 3. स्कूल 4. शिक्षक

ध्यान रखें कि कहीं ऐसा न हो जाए कि नदी की संकल्पना में वैसी नहरें भी शामिल हो जाएं जिनमें साल के हर महीने में पानी बहता है और कुछ छोटी बरसाती नदियाँ छूट न जाएं जिनमें मुश्किल से कभी पानी आता है।

नहरों का शामिल हो जाना शास्त्रीय भाषा में अतिव्याप्ति दोष कहलाएगा और बरसाती नदियों का छूट जाना अव्याप्ति दोष।

अब जरा विचार करें, मानवीय ज्ञान की पुख्ता समझ बनाने के लिए भी क्या हम कुछ अनिवार्य शर्तों का निर्धारण कर सकते है। ऐसी शर्तें जो साथ मिलकर किसी चीज को ज्ञान कहने के लिए पर्याप्त हों।

पिछले अध्याय में ज्ञान के तीन प्रकारों से आप अवगत हो चुके हैं— कौशल, परिचयात्मक ज्ञान और तथ्यात्मक ज्ञान। हम यहाँ सिर्फ तथ्यात्मक ज्ञान की बात करेंगे। कौशल के ज्ञान को जाँचने का तरीका तो काम करके देखना ही हो सकता है। उसमें दावे की जाँच की जरुरत हो तो काम करके देखना होगा। परिचयात्मक ज्ञान को जाँचने की जरूरत ही नहीं है। केवल संदेह होने पर उसे देखने की जरुरत होगी। किसी और को ये बताने पर भाषा में अभिव्यक्त होकर परिचयात्मक ज्ञान और कौशल दोनों ही तथ्यात्मक ज्ञान में तब्दील हो जायेंगे।

तो कुल मिलाकर हम यहाँ तथ्यात्मक ज्ञान की शर्तों की बात कर रहे हैं। आगे बढ़ने से पहले यहाँ यह भी दुहरा लेना ठीक होगा कि ज्ञान किसी चेतन सत्ता को ही हो सकता है। अतः ज्ञान में कोई न कोई जानने वाला अर्थात ज्ञाता होता है। ज्ञान किसी चीज के बारे में होता है। जिसके बारे में ज्ञान होता है उसे ज्ञेय कहते हैं। ज्ञान ज्ञाता की मनोदशा का नाम है। मनोदशायें या मनःस्थितियाँ कई प्रकार की हो सकती हैंः आकर्षण, भय, द्वेष आदि। ऐसी ही एक मनःस्थिति हो सकती है जब हमें किसी चीज के बारे में कुछ विश्वास हो जैसे 'शेर साग–सब्जी नहीं खाता' या 'चीता इस धरती पर सबसे तेज दौड़ने वाला प्राणी है' आदि–आदि। लेकिन सिर्फ विश्वास भर होने से हम किसी चीज को ज्ञान नहीं कहेंगे। विश्वास होना ज्ञान होने की एक अनिवार्य शर्त है, लेकिन कुछ दूसरी अनिवार्य शर्तें भी लगानी पड़ेगी। ज्ञान मीमांसा करने वाले कुछ लोग विगत अनेक सदियों से कहते आए हैं कि किसी विश्वास को ज्ञान कहने के लिए उसका सत्य होना और ज्ञाता के पास उसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त तर्क या प्रमाण का होना अनिवार्य है। इस प्रकार किसी दावे पर आधारित तथ्यात्मक ज्ञान की परिभाषा करते हुए प्लेटो ने कहा है– ' सत्य विश्वास के साथ–साथ अगर तार्किक प्रमाण भी हो तो हम उसे ज्ञान कह सकते है।' [True belief accompanied by rational account is knowledge (Plato [Theaetetus, Penguin] 1987, 201d)।

4.3.1 ज्ञान की शास्त्रीय परिभाषा :

ज्ञान की शास्त्रीय परिभाषा– ''प्रमाणिक सत्य विश्वास ही ज्ञान है।'' के अनुसार ज्ञान की तीन अनिवार्य शर्तें हैंरू

1. ज्ञाता के मन में विश्वास होना,
2. उसके विश्वास का सत्य होना और
3. विश्वास को सत्य मानने के लिए उसके पास प्रमाण का होना

ये तीनों शर्तें एक साथ मिलकर ही ज्ञान होने के शर्त को पूरा करती हैं इसलिए इन तीनों को एक साथ मिलाकर इन्हें ज्ञान की पर्याप्त या यथेष्ट शर्त कहेंगे। अलग–अलग इनमें से प्रत्येक को ज्ञान का अनिवार्य शर्त माना जाएगा। इन तीनों अनिवार्य शर्तों पर अलग– अलग संक्षेप में चर्चा करने से यह बात स्पष्ट होगी कि ज्ञान की संकल्पना में इनकी अनिवार्य मौजूदगी क्यों आवश्यक है।

कुछ प्रश्न–

- ***ज्ञान की शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार ज्ञान की तीन अनिवार्य शर्तें कौन–कौन सी है?***

i. विश्वास की अनिवार्यता :

ज्ञान को अगर हम ज्ञाता की मनःस्थिति के रूप में समझना चाहते हैं तो हमें ज्ञान को विश्वास के श्रेणी में ही डालना पड़ेगा। सभी विश्वास ज्ञान नहीं होते, केवल वे ही विश्वास ज्ञान होते हैं जो सत्य हो और जिनके मानने के पीछे कोई प्रमाण हो, लेकिन अगर ऐसा कहें कि सभी ज्ञान अंततः विश्वास तो होते ही हैं तो गलत नहीं होगा। जैसे सभी स्तनपायी जीव मनुष्य नहीं होते, लेकिन सभी मनुष्य स्तनपायी जीव होते हैं। आम बोलचाल की भाषा में ज्ञान को कभी–कभी विश्वास के वर्ग का एक उपवर्ग न मानकर उसका विलोम माना जाता है। कभी–कभी दार्शनिक भी इन्हें एक दूसरे से भिन्न मानते हैं। प्लेटो ने जहाँ अपनी प्रारंभिक रचना मैनो में माना है कि ज्ञान में विश्वास शामिल है, वहीं बाद की रचना रिपब्लिक में उसने ज्ञान और विश्वास को एक दूसरे से भिन्न माना। ज्ञान जहाँ स्थिर और संदेहों से परे (infallible) होता है, वहीं विश्वास निराधार होता है जो कभी भी ध्वस्त (fallible) हो जा सकता है।

लेकिन फिर भी यह सोचना मुश्किल है कि बगैर किसी विश्वास के कोई ज्ञान हो सकता है। यह कहना कि 'मैं जानता तो हूँ कि बारिश हो रही है, लेकिन मै विश्वास नहीं करता' बेतुकी बात लगती है। जब हम इस प्रकार की बात भी करते हैं कि 'यह मेरा महज विश्वास ही नहीं है कि केरल भारत का सर्वाधिक शिक्षित राज्य है, मैं जानता हूँ कि ऐसा ही है' तब भी हम ज्ञान को विश्वास के विरोध में नहीं रख रहे हैं, बल्कि ज्ञान को विश्वास से कुछ आगे बढ़ी हुई चीज मान रहे हैं। इस वाक्य में 'महज', 'ही' आदि प्रयोगों पर ध्यान दें तो स्पष्ट हो जाएगा कि वक्ता के मन में ज्ञान, विश्वास ही नहीं, उससे कुछ आगे बढ़ी हुई चीज है और विचार करें कि किन स्थितियों में आप यह कहने से बचते हैं कि 'मैं जानता हूँ'।

कुछ प्रश्न–

दो प्रकार के वाक्यों की सूची बनायें। पहली श्रेणी में 'मुझे लगता है' या 'उसे लगता है' से शुरु होने वाले वाक्यों को रखें और दूसरी श्रेणी में 'मैं जानता हूँ' या 'वह जानता है' से शुरु होने वाले वाक्यों को।

- मुझे लगता है कि मनोहर और सुरेश में मनमुटाव चल रहा है।
- मुझे लगता है कि भिलाई छतीसगढ़ का सबसे बड़ा औद्योगिक नगर है।
- ————————————
- ————————————
- ————————————

- मैं जानता हूँ कि मनोहर और नरेश में मनमुटाव चल रहा है।
- मैं जानता हूँ कि भिलाई छतीसगढ़ का सबसे बड़ा औद्योगिक नगर है।
- ————————————
- ————————————
- ————————————

दरअसल हम उन विश्वासों को ज्ञान के रूप में पेश करने से नहीं हिचकते जिनके सत्य होने का हमें पूरा भरोसा होता है। इसका अर्थ है कि विश्वास का सत्य होना ज्ञान की एक और अनिवार्य शर्त है।

ii. विश्वास का सत्य होना

हमारे वे विश्वास ही ज्ञान की श्रेणी में आयेंगे जो सत्य भी हों। आम जीवन में सत्य और असत्य का निध् ाारण बहुत मुश्किल नहीं लगता। 'आसमान का रंग नीला होता है' यह वक्तव्य या तो सत्य होगा या असत्य। हम बाहर जाकर देख सकते हैं कि सचमुच आसमान का रंग नीला है या नहीं। वास्तविक जगत में चीजें अगर वैसी ही हैं जैसा हमारे मन में विश्वास है तो हमारा विश्वास सत्य होगा।

> संगतता का सिध्दांत (correspondence theory) के अनुसार जो कुछ हम मानते है वास्तविक जगत में भी वैसा है।

सत्य की यह एक धारणा है जिसे ज्ञानमीमांसा में संगतता का सिध्दांत (correspondence theory) कहते हैं– अर्थात जो कुछ हम मानते हैं वास्तविक जगत में भी वह वैसा ही है। सत्य की आम जीवन में यह मानी हुई कसौटी है और इसमें कोई समस्या नहीं दिखती है। लेकिन ज्ञानमीमांसा करने वाले लोग इतनी आसानी से इस कसौटी को नहीं मान लेंगे। जिस संदेहवाद से आधुनिक ज्ञानमीमांसा की पैदाइश हुई है उस परंपरा के लोग तो अनेक सवाल उठायेंगे। आपको कैसे मालूम की आसमान का रंग सचमुच नीला है? कहीं यह आपका दृष्टिभ्रम तो नहीं है? आप कहेंगे ऐसा मुझे ही नहीं लगता औरों को भी लगता है तो वे कहेंगे कि हो सकता है कि यह सामूहिक दृष्टिभ्रम हो। शायद इसके बाद आप अपने कथन को कुछ और दुरुस्त कर लें और कहें कि धरती पर रहने वाले इंसानों को आसमान का रंग नीला दिखलाई पड़ता है। जब हम इस प्रकार की बात करते हैं तो हम सत्य की एक दूसरी ज्ञानमीमांसात्मक सिद्धांत तक पहुँच जाते हैं।

इस दूसरे सिद्वांत को विश्वासों में परस्पर संगति का सिध्दांत (coherence theory) कहा जाता है। विश्वासों में संगति के दो पक्ष हैं। एक तो किसी एक ज्ञाता के मन में जितने विश्वास हैं उनमें परस्पर अंतर्विरोध नहीं होना चाहिए। जैसे मान लें कोई व्यक्ति एक साथ दो बातें कहे जो कुछ इस प्रकार की हों कि:

> परस्पर संगति का सिध्दांत (coherence theory) में ज्ञाता के मन में जितने भी विश्वास होते है उनमें एक प्रकार की संगति होती है उनमें अंतर्विरोध नही होता है।

i) धरती पर रहने वाले लोगों को आसमान का रंग नीला दिखलायी पड़ता है, और

ii) आसमान का रंग हर पल बदलता है।

तो हम कहेंगे कि उसके विश्वासों में आपस में संगति नहीं है। विश्वासों में संगति का दूसरा पहलू यह हो सकता है कि विभिन्न ज्ञाताओं के विश्वासों में परस्पर संगति हो।

इस प्रकार अगर देखें तो यह दूसरा सिध्दांत सत्य का अधिक से अधिक अंतर्वैयक्तिक कसौटी ही प्रदान करता है। सत्य के वस्तुनिष्ठ, ठोस और सार्वभौम कसौटी प्राप्त करने की मानवीय हसरतों को यह पूरा नहीं करता। प्लेटो की तरह आज ज्ञान को कभी भी किसी प्रकार ध्वस्त न होने वाली चीज (infallible) मानना मुश्किल अवश्य हो गया है क्योंकि विज्ञान के दर्शन में ही माना जाने लगा है कि वैज्ञानिक ज्ञान तभी तक सत्य माने जायेंगे जब तक कोई उसे असत्य साबित न कर दे, लेकिन फिर भी सत्य की अपेक्षाकृत अधिक भरोसेमंद कसौटी को प्राप्त करने की इच्छा प्राकृतिक विज्ञान में ही नहीं, बल्कि इतिहास जैसे मानविकी के अन्य विषयों में भी दिखलायी पड़ती है।

इन दोनों सिध्दांतों से अलग सत्य का एक तीसरा सिध्दांत भी है जिसे व्यवहारवादी या प्रयोजनवादी (pragmatic theory) सिध्दांत कहा जाता है। इस सिध्दांत के अनुसार सत्य की एक कसौटी यह हो सकती है कि उसके आधार पर कुछ पूर्वानुमान लगाये जा सकते हैं या नहीं। जैसे अगर वैज्ञानिकों ने पता लगाया कि शुष्क

हवा में 2000 तापमान पर ध्वनि का वेग 343 मीटर प्रति सेकेण्ड होता है तो व्यवहारवादी कहेंगे कि इस ज्ञान के आधार पर अगर कोई यंत्र बनता है तो उस यंत्र को ठीक काम करना चाहिए या ध्वनि के वेग से भी अधिक गति से चलने वाले विमान बनाने में इससे मदद मिलनी चाहिए। अगर उक्त ज्ञान के आधार पर विमान बन जाता है और ठीक उसी प्रकार काम करने लगता है जिस प्रकार काम करने की उम्मीद उससे की गयी थी तो ज्ञान को सत्य माना जाएगा अन्यथा नहीं।

कुल मिलाकर हमने देखा कि ज्ञान के इस दूसरी शर्त (विश्वास का सत्य होना) का मामला इतना सीधा और सरल नहीं है, लेकिन फिर भी ज्ञान की शास्त्रीय परिभाषा में इसे अनिवार्य माना गया है। अब हम ज्ञान की तीसरी शर्त– विश्वास को सत्य मानने के लिए प्रमाण का होनो की बात कर सकते हैं।

iii. प्रमाणिकता की शर्त

थोड़ी देर के लिए मान लें कि आपका एक विश्वास है कि आपका एक दोस्त जो रायगढ़ में रहता है वह इन दिनों बीमार चल रहा है। मान लें दुर्भाग्य से वह सचमुच बीमार है। लेकिन आपके पास उसे बीमार मानने के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। पर्याप्त आधार नहीं होने का मतलब है कि वह स्कूल के दिनों में कभी–कभी बरसात के मौसम में बीमार हो जाया करता था। आपने इसी आधार पर मान लिया कि वह बीमार है। दुर्भाग्य से वह बीमार है भी। अब आपने उसके बीमारी का हाल जानने के लिए उसे फोन कर लिया। आपकी दोस्ती और परवान चढ़ गयी। कुल मिलाकर आपका एक विश्वास था और विश्वास सत्य था। अब इसे ज्ञान मानने में क्या दिक्कत है? ज्ञान की इस तीसरी शर्त 'प्रमाणिकता' की आवश्यकता क्यों है?

कुछ प्रश्न–

- ***नीचे कुछ स्थितियॉ दी गई है जिस पर विचार करें कि सत्य विश्वास को ज्ञान मानने में क्या दिक्कते है? किसी विश्वास को ज्ञान कहने के लिए प्रमाणिकता का शर्त लगाना क्यों आवश्यक है?***

  1 किसी जज का विश्वास है कि किसी मुकदमें में उसके सामने जो आरोपी उपस्थित हुआ है वह चोर है, लेकिन जज के पास उसे चोर मानने का कोई ठोस आधार नही है। किन्ही अनुभवों के कारण जज यह मानता रहा है कि प्रायः ठिगने कद के मोटे लोग चोर होते है। उसके सामने जो आरोपी पेश हुआ है वह ठिगना और मोटा था। अब जज ने उसे चोरी के लिए सजा सुना दी। संयोग से उक्त व्यक्ति सचमुच चोर था। क्या हमें मानना चाहिए कि जज को इस बात का ज्ञान था कि उक्त व्यक्ति चोर है?

  2 किसी प्रतियोगी परीक्षा में एक बहुविकल्पी प्रश्न पूछा गया– मुगल बादशाह जहॉगीर के पिता का नाम क्या था? आपने इसके उत्तर मे दूसरे नम्बर के विकल्प के सामने सही का चिह्न लगाया, हालाँकि आपको उत्तर मालूम नहीं था। आपने ये अंदाज लगा लिया कि ज्यादातर प्रश्नों के सही उत्तर दूसरे विकल्प में दिए गये हैं। सौभाग्य से आपका उत्तर सही हो गया। क्या यह माना जाना चाहिए कि आपको मुगल वंश का ज्ञान है?

दरअसल ज्ञान के मामले में ज्ञान मीमांसा करने वाले लोग 'दुर्भाग्य', 'सौभाग्य', 'संयोग', 'इत्तेफाक' जैसी स्थितियों नहीं आने देना चाहते। शुरु में हमने बात की थी कि वे ज्ञान की एक पुख्ता समझ बनाना चाहते हैं। सत्य विश्वास को ज्ञान मानने में क्या परेशानी है इस पर सैकड़ों वर्ष पूर्व प्लेटो ने विचार किया था। शायद आपको पता हो कि प्लेटो ने अपनी किताब 'मैनो' संवाद शैली में लिखी है। इस संवाद में उसने अपने गुरू सुकरात को

संवाद करने वाले एक चरित्र के रूप में पेश किया है। इस संवाद में सुकरात प्लेटो के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। संवाद का एक हिस्सा कुछ इस प्रकार है :

सुकरात : अगर कोई मरीका या किसी अन्य जगह का रास्ता जानता है, तो वह खुद भी वहाँ जा सकता है और किसी और को भी ले जा सकता है। ऐसी स्थिति में उसे एक सक्षम गाइड माना जायेगा। क्या तुम सहमत हो?

मैनो : बिल्कुल

सुकरात : लेकिन एक व्यक्ति अगर वहाँ जाने का सही रास्ता चुन लेता है, हालाँकि वह वहाँ कभी नहीं गया और रास्ता नहीं जानता है तो वह भी दूसरों को सही रास्ता बता देगा।

मैनो : हाँ, बता देगा।

सुकरात : और जब तक रास्ते के बारे में सही विश्वास उसे है वह उतना ही अच्छा गाइड है जितना अच्छा रास्ता जानने वाला।

मैनो : हाँ उतना ही अच्छा गाइड होगा।

सुकरात : इसलिए सही कार्य करने के लिए सत्य विश्वास उतना ही अच्छा गाइड है जितना अच्छा ज्ञान।

यहाँ प्लेटो यह तर्क दे रहा है कि कैसे सत्य विश्वास भी उतना ही कारगर हो सकता है जितना कि ज्ञान। हमारा काम तो सत्य विश्वास से भी चल जाता है, फिर हम ज्ञान को इतना अधिक महत्त्व क्यों देते हैं। इसके उत्तर में वह कहता है कि सत्य विश्वास से हमारा काम तभी तक चलेगा जब तक वह हमारे दिमाग में टिके। सुकरात ने इस संवाद में इस प्रश्न के जो उत्तर दिए उसके अनेक पक्ष हैं, लेकिन हम यहाँ उसके एक महत्त्वपूर्ण संवाद की बात करेंगे।

सुकरात : सच्चा विश्वास अच्छी चीज है और वह तमाम अच्छी बातें कर सकता है जबतक की वह अपनी जगह टिका रहे, लेकिन वह बहुत देर तक टिका नहीं रह सकता। वह इंसान के दिमाग से पलायन कर जाता है, जब तक कि तर्क–वितर्क करके उसे ठीक से बाँध न लिया जाए। एक बार जब उसे तर्क के फंदे से बाँध लिया जाता है तो वह ज्ञान बन जाता है और टिकाऊ हो जाता है। सच्चे विश्वास को ज्ञान से जो चीज अलग करती है वह है तर्क का फंदा। इसलिए सच्चा विश्वास ज्ञान से कम मूल्यवान है।

कुछ प्रश्न–

- ***सुकरात सच्चा विश्वास और ज्ञान में किस प्रकार का अंतर देखते है?***

इस प्रकार प्लेटो ने साक्ष्य पर आधारित तर्क से पुष्ट सत्य विश्वासों की महत्ता को स्थापित किया है और उसे ही ज्ञान माना है। अब हमें आगे देखना चाहिए कि विश्वास को प्रमाणित करने की कौन कौन सी पद्धतियाँ हो सकती हैं।

प्रायः हम एक विश्वास को प्रमाणित करने के लिए एक साक्ष्य देते हैं। वह साक्ष्य स्वयं एक विश्वास होता है। फिर इस दूसरे विश्वास के लिए एक और साक्ष्य या प्रमाण ढूंढ़ते हैं जो फिर से एक और विश्वास होता है। अब यह सिलसिला आगे चलता जाता है जबतक कि कोई ऐसा साक्ष्य या प्रमाण नहीं मिल जाए जिसे सिध्द करने की जरूरत नहीं हो। अर्थात हम एक ऐसे प्रमाण तक पहुँचे जो स्वंयसिध्द हो।

कुल मिलाकर यहाँ ज्ञान की संरचना कुछ ऐसे बहुमंजिले भवन या ढ़ाचे की तरह की होती है जिसमें तीसरी मंजिल दूसरी मंजिल पर टिका होता है, दूसरी मंजिल पहली मंजिल पर और अंत मे नींव होती है जो धरती पर जाकर टिकती है। धरती को टिकने के लिए किसी सहारे की आवश्यकता नहीं होती है। प्रमाण ढूढ़ने की इस पद्धति या सिध्दांत को आधारवाद या बुनियादवाद (foundationalism) कहते हैं ।

> आधारवाद या बुनियादवाद (foundationalism) में हम ऐसे प्रमाण की तलाश करते हैं जो की स्वयंसिद्धि होते है।

इसका सबसे अच्छा उदाहरण गणित या तर्कशास्त्र में मिलता है। ज्यामिती में किसी साध्य को सिध्द करने के लिए पहले प्रमाणित किये गये साध्य का हवाला दिया जाता है। फिर उक्त साध्य के लिए पिछले किन्ही साध्यों का। अंत में कुछ स्वंयसिद्धियाँ बचती हैं जिन्हें प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। स्वयं सिद्धियाँ कुछ इस प्रकार की होती हैं—

अगर क = ख

और ख = ग

तो क = ग भी होगा।

अब इस प्रकार की प्रमाणों को सिध्द करने की आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार के प्रमाण मानवीय तर्कबुध्दि को सीधे ही उपलब्ध होते हैं। इन्हें एक प्रकार से बुनियाद मान सकते हैं।

इसी प्रकार कुछ दूसरे तरह के लोग इन्द्रियों से सीधे प्राप्त होने वाले संवेदनों को मानवीय ज्ञान की बुनियाद मान सकते हैं। हालाँकि संशयवादियों ने ज्ञान के मूल आधारों पर अनेक प्रश्न खड़े किए हैं। संशयवादियों के सभी तर्कों का विस्तार से चर्चा की यहाँ आवश्यकता नहीं है, लेकिन उनके प्रश्न कुछ इस प्रकार के होते हैं— ठीक है आप कह रहे हैं कि आपने बहुत सारे हाथियों को अपनी आँखो से देखा है और उस आधार पर कह रहे हैं कि हाथी काला होता है, लेकिन आपको कैसे पता कि आपने अबतक जितनी बार भी हाथियों को देखा है आपने सपने में नहीं वास्तव में हाथी को देखा है। इस प्रकार की आपत्तियाँ प्रथम दृष्टया बेतुकी लग सकती हैं, लेकिन अगर ज्ञानमीमांसा में प्रत्यक्ष ज्ञान का पुख्ता आधार ढूंढ़ने की कोशिश होती है तो उससे यह अपेक्षा होगी कि वह इस तरह के संदेहों की संभावना को समाप्त कर दे।

बुनियादवाद का आग्रह है कि कुछ तर्क या इन्द्रिय से सीधे प्राप्त अनुभव संशय से परे होते हैं इसलिए उन्हें दूसरे अन्य विश्वासों का आधार माना जा सकता है और उनके अंतिम प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। संशयवादियों ने उन पर भी प्रश्न खड़े कर दिये।

कुछ प्रश्न—

- ***आधारवादी या बुनियादवादी सिद्धान्त किसे कहते है?***

कुछ दार्शनिकों ने ज्ञान की संरचना का एक दूसरा मॉडल प्रस्तुत किया। इस मॉडल में सभी विश्वास परस्पर एक दूसरे को पुष्ट करते हैं, कोई भी विश्वास ऐसा नहीं होता जिसे किसी के सहारे की आवश्यता नहीं हो अर्थात् सभी विश्वास एक—दूसरे को सहारा देते हैं। इस सिध्दांत को परस्पर आलंबनवाद या संगतिवाद (coherentism) कह सकते हैं।

परस्पर आलंबनवाद की एक शर्त तो यह है कि विश्वासों की किसी व्यवस्था में कोई विश्वास परस्पर विरोधी नहीं हो, लेकिन इतना होना ही काफी नहीं है। विश्वासों की परस्पर एक दूसरे पर पूर्णतः या आंशिक निर्भरता होनी चाहिए। जैसे मान लें किसी का एक विश्वास है कि वर्तमान शिक्षा–प्रणाली वैयक्तिक प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देती है। दूसरा विश्वास यह है कि विद्यार्थी एक–दूसरे से अपने नोटस छिपा कर रखना चाहते हैं। तीसरा विश्वास यह है कि जिन विद्यार्थियों को अधिक अंक प्राप्त उनके फोटो अखबारों में छपते हैं और जिन्हें कम अंक प्राप्त होते हैं उन्हें परिवार और समाज प्रताड़ित करता है। चौथा विश्वास यह है कि सामाजिक–आर्थिक जीवन में भी प्रतिस्पर्धा दिखलायी पड़ती है। अब ये सारे विश्वास परस्पर एक–दूसरे को पुष्ट करते हैं। इनमें से कोई भी अन्य विश्वासों का अंतिम आधार नहीं है। हालाँकि इन्हें एक दूसरे के आधार के रूप में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। जैसे सामाजिक–आर्थिक परिवेश मे प्रतिस्पर्धा है यह कहने का आधार है कि शिक्षा भी प्रतिस्पर्धा पर आधारित है। शिक्षा व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा है यह कहने का आधार यह है कि विद्यार्थियों को एक–दूसरे से नोट्स छुपाते देखा गया है। अगर इन्हें एक–दूसरे के आधार के रूप में रखा जाय तो कोई पूछ सकता है कि नोट्स छुपाना प्रतिस्पर्धा होने का आधार क्यों माना जाए। हो सकता है विद्यार्थी एक–दूसरे से शर्माते हों या कोई खेल खेल रहे हों। संगतिवाद या परस्पर आलंबनवाद की बात करने वाले इतना ही कहेंगे कि कम से कम नोट्स छुपाना पहले विश्वास का विरोधी नहीं है और भले ही वह अकेले सभी विश्वासों का आधार नहीं हो लेकिन ये सारे विश्वास एक–दूसरे को पुष्ट करते हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***परस्पर आलंबनवाद या संगतिवाद (coherentism) में ज्ञान के लिए मुख्य शर्तें कौन–कौन सी है?***

बुनियादवाद और परस्पर आलंबनवाद. दोनो ही माडलों से यह समझने में मदद मिलती है कि प्रमाणन की प्रक्रिया में कैसे अलग–अलग विश्वास एक–दूसरे से संबंध होते चले जाते हैं। ये दोनों संबंधन के दो माडलों की बात करते हैं लेकिन संबंधन की बात दोनों ही करते हैं।

कुल मिलाकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वैसा सत्य विश्वास जिसे किसी न किसी माडल का सहारा लेकर प्रमाणित किया जा सके ज्ञान है। इस प्रकार ज्ञान की तीन अनिवार्य शर्तें हैं। ये तीनों अनिवार्य शर्तें जब बन जाती हैं तो ज्ञान की सभी शर्तें पूरी हो जाती हैं। इसलिए लम्बे समय तक प्रमाणित सत्य विश्वास को ही (तथ्यात्मक) ज्ञान माना जाता रहा है।

4.3.2 गेटियर की समस्या

सन 1967 में एडमंड गेटियर (Edmund Gettier) नाम के एक दार्शनिक ने कुल तीन पृष्ठों का एक लेख दर्शनशास्त्र के किसी जर्नल में प्रकाशित करवाया। लेख का शीर्षक था– "Is Justified True Belief Knowledge."

इस लेख में गेटियर ने कुछ ऐसे उदाहरण दिए जो ज्ञान की तीनों ही शर्तों को पूरा करते हैं, लेकिन फिर भी उसे ज्ञान के रूप में स्वीकार करने में दिक्कत हो सकती है। कुछ उदाहरण गेटियर ने खुद दिए और कुछ बाद में लोगों ने उससे मिलते जुलते उदाहरण गढ़े। इस प्रकार का एक उदाहरण यह हैः मान लें आप ठीक बारह बजे दोपहर में किसी शहर में पहुँचते हैं। आपको सवा बारह बजे किसी से वहाँ मिलना है। आपको विश्वास है कि बारह बजे होंगे। फिर भी आप वहाँ स्टेशन के पास के घंटाघर की तरफ नजर डालते हैं। आपको घड़ी की दोनों सुइयां बारह पर दिखलायी पड़ती है। आप निश्चिंत हो जाते हैं कि बारह बजे हैं और आप समय पर मीटिंग के लिए पहुंच जायेंगे।

मान लें कि उस घंटाघर की घड़ी रात के बारह बजे ही बंद हो गयी थी। अब इस उदाहरण में आपको विश्वास है कि बारह बजे होंगे। उस समय बारह बज भी रहे थे और आपके पास प्रमाण भी था क्योंकि आपने घंटाघर की घड़ी में देखा था। इसलिए इस उदाहरण में आपको विश्वास है, आपका विश्वास सत्य भी है और आपके पास प्रमाण भी है। लेकिन आपने विश्वास को प्रमाणित करने के लिए आपने जिस घड़ी को देखा वह घड़ी तो बंद थी। यह तो महज संयोग था कि उस समय उतने ही बजे थे जितने पर घड़ी की सुइयां थीं। हमने पहले ही बात की है कि ज्ञान मीमांसा करने वाले लोग 'संयोग','इत्तेफाक' जैसी स्थितियों को ज्ञान के मामले में स्वीकार नहीं करते। लेकिन यहाँ तो संयोग की बड़ी भूमिका है– हालाँकि ज्ञान की तीनों ही अनिवार्य शर्तें पूरी हो रही हैं।

कुछ लोगों ने गेटियर की समस्या का समाधान यह कह कर करने की कोशिश की कि उपरोक्त उदाहरण में विश्वास को ठीक ढ़ंग से प्रमाणित नहीं किया गया। एकमात्र घड़ी पर विश्वास कर लिया गया, जबकि यह सोचना चाहिए कि घड़ी खराब भी हो सकती है। दिक्कत यह है कि ठीक ढ़ग से प्रमाणित करना किसे कहेंगे यह तय करना मुश्किल है। अगर एक घड़ी खराब हो सकती है तो पाँच घड़ियाँ भी खराब हो सकती हैं और संयोग भी घटित हो सकता है। इसलिए गलतियों की संभावना को कम तो किया जा सकता है, लेकिन उससे पूरी तरह बचा नहीं जा सकता। इसलिए 'ठीक से प्रमाणित' करने' की शर्त किसी निश्चित जगह पर जाकर नहीं पूरी नहीं होती।

कुछ प्रश्न–

- ***आप एक ऐसा उदाहरण लिखिए जो ज्ञान की तीनों ही शर्तों को पूरा करते हैं, लेकिन फिर भी उसे ज्ञान के रूप में स्वीकार करने में दिक्कत हो सकती हो।***

इस प्रकार देखें तो ज्ञान की एक ऐसी पुख्ता परिभाषा तो नहीं बन पायी है जिसमें संयोग आदि की कोई भूमिका नहीं हो। फिर भी प्रमाण की छलनी से छना हुआ सत्य विश्वास निश्चित रूप से अधिक निथरा हुआ और भरोसेमंद ज्ञान है– भले ही गेटियर जैसे उदाहरणों ने यह सिध्द कर दिया है कि प्रमाण की छलनी को कैसे या कितना सघन बुना जाय कि उससे सचेत रूप से जाँचा–परखा सत्य विश्वास ही छनकर आए यह तय करना मुश्किल है।

जीवन के अलग–अलग क्षेत्रों में और अलग–अलग अवसरों पर प्रमाण की सटीकता का आग्रह कम या ज्यादा हो सकता है। जब आपको किसी बहुत महत्त्वपूर्ण यात्रा पर जाना हो तो आप घंटाघर की घड़ी को ही नहीं देखते। डिसप्ले बोर्ड पर प्लेटफार्म नम्बर और गाड़ी के आने का समय लिखा हुआ हो तब भी पूछताछ काउंटर के कर्मचारी से भी पूछ लेते हैं। क्या पता डिसप्ले बोर्ड खराब हो और उस पर कल की ट्रेन की सूचना ही प्रदर्शित हो रही हो। इन स्थितियों में सामान्य भारतीय व्यक्ति गेटियर जैसी समस्या से बचने की पूरी कोशिश करता है।

किसी लोकतांत्रिक समाज में न्याय के क्षेत्र में भी सिर्फ परिस्थितिजन्य साक्ष्यों से काम नहीं चलता। न्याय–प्रणाली को प्रमाण की कसौटी को इतना पक्का बनाना पड़ता है कि उसमें सिर्फ निजी विश्वासों और पूर्वाग्रहों के आधार पर कोई निर्णय नहीं हो।

शिक्षा का ज्ञान से गहरा सरोकार है। शिक्षाक्रम में जिस ज्ञान को हम शामिल करना चाहते हैं उसके बारे में हमारी समझ ज्ञान के चयन और शिक्षण–विधि से लेकर हमारी मूल्यांकन विधि तक को प्रभावित करेगा। कहीं ऐसा तो नहीं है कि वर्तमान शिक्षा–प्रणाली में हम अनेक बार सत्य विश्वासों को ज्ञान के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। कई बार तो सत्य की भी परवाह नहीं की जाती– विभिन्न सामुदायिक– सांस्कृतिक विश्वासों को शिक्षाक्रम में ज्यों का त्यों शामिल करवाने का आग्रह किया जाता है।

ज्ञानमीमांसा ज्ञान की कोई सटीक परिभाषा कर पाए या नहीं, प्रमाणिक सत्य विश्वास का उसका आग्रह निश्चित रूप से शैक्षिक चिंतन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

4.4 सारांश

- प्लेटो ने ज्ञान की प्राप्ति में बुद्धि पर अत्यधिक बल देते हैं। अतः उन्हें एक बुद्धिवादी दार्शनिक कहा जा सकता है।
- प्लेटो के लिए वास्तविक ज्ञान प्रत्ययों एवं गणित का है। क्योंकि यह स्थायी, असंदिग्ध और सत्य है। इन्द्रिय अनुभव से प्राप्त होने वाला ज्ञान इन प्रत्ययों का पुनःस्मरण मात्र है।
- प्लेटो किसी वस्तु के सामान्य लक्षणों, को प्रत्यय कहते हैं। जिसका ज्ञान मानव की बुद्धि या आत्मा में होता है जो की जन्मजात होता है।
- देकार्त ने अपने चिन्तन में ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'संदेह की विधि' को अपनाया और मन अथवा बुद्धि द्वारा प्राप्त होने वाले ज्ञान को उन्होंने असंदिग्ध और निश्चित माना।
- देकार्त ने केवल एक चीज पर संदेह नही किया वह है, ''मैं सोचता हूं इसलिए मैं हूं।'' ("I am, because I think")
- देकात का 'सोचने' से आशय– समझना, महसूस करना, नकारना, संकल्प करना, कल्पना करना आदि से है। वे कहते हैं कि सोचना मन का सार तत्व है। मन हमेशा सोचता है, सिर्फ जागृत अवस्था में ही नहीं बल्कि गहरी नींद में भी सोचता है।
- लॉक अनुभववादी दार्शनिक माने जाते है जिन्होने इन्द्रिय अनुभव से प्राप्त होने वाले ज्ञान पर जोर दिया।
- लॉक का मानना था कि जन्म के साथ हमारा मन 'कोरी स्लेट' या 'कोरे कागज' की तरह होता है। जन्म के बाद अनुभवों के जरिए तमाम अवधारणाएं इंसान के मन में बनती हैं।
- लॉक ने गणित और तर्कशास्त्र के ज्ञान को इसका अपवाद माना।
- लॉक इन प्रत्ययों को दो श्रेणियों में बांटा– सरल प्रत्यय और जटिल प्रत्यय।
- लॉक इन प्रत्ययों का भेद वास्तविक और काल्पनिक के रूप में भी करते हैं।
- लॉक मन की भूमिका को इन इन्द्रिय अनुभवों को ग्रहण करने वाला एवं सरल प्रत्ययों से जटिल प्रत्ययों का निर्माण करने वाले के रूप में देखते हैं।
- बर्कले को अनुभववादी दार्शनिक माना जाता है क्योंकि वह ज्ञान होने का आवश्यक स्रोत प्रत्यक्ष अनुभव को मानता है।
- बर्कले का चिन्तन, प्रत्यक्ष को ज्ञान का स्रोत मानता है। साथ ही वह यह भी कहता है कि हमें किसी वस्तु का ज्ञान नहीं होकर वस्तु के गुणों का ज्ञान होता है और वस्तु के ये गुण हमारे मन में रहते हैं। ये गुण किसी वस्तु के ऐसे गुण नहीं हैं जो कि ज्ञाता से स्वतंत्र हों। वह ज्ञाता से स्वतंत्र वस्तुओं के अस्तित्व को भी नकारता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बर्कले के ज्ञान की अवधारणा व्यक्तिनिष्ठ है। अर्थात् ज्ञान ज्ञाता पर निर्भर करता है और यह प्रत्येक ज्ञाता का अलग–अलग होता है।

- बर्कले का मानना था कि ईश्वर, आत्मा और प्रत्ययों के अलावा किसी चीज का अस्तित्व काल्पनिक ही हो सकता है।
- बर्कले मानते हैं कि ज्ञान में जो योगदान स्पर्श और देखने का है, वह अन्य संवदेनों से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।
- ज्ञान की शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार ज्ञान की तीन अनिवार्य शर्तें हैं:

  ज्ञाता के मन में विश्वास होना,

  उसके विश्वास का सत्य होना और

  विश्वास को सत्य मानने के लिए उसके पास प्रमाण का होना
- ज्ञान मीमांसा करने वाले लोग 'दुर्भाग्य', 'सौभाग्य' , 'संयोग' 'इत्तेफाक' जैसी स्थितियों नहीं आने देना चाहते।
- जब तक कि तर्क–वितर्क करके उसे ठीक से बाँध न लिया जाए, सच्चा विश्वास इंसान के दिमाग से पलायन कर जाता है। एक बार जब उसे तर्क के फंदे से बाँध लिया जाता है तो वह ज्ञान बन जाता है और टिकाऊ हो जाता है।

4.5 अभ्यास के लिए कुछ प्रश्न

1. प्लेटो गणितीय ज्ञान को आदर्श ज्ञान क्यों मानते हैं?
2. देकार्त इंद्रियानुभव से प्राप्त ज्ञान पर संदेह क्यों करते है? संदेह का एक कारण लिखें।
3. जॉन लॉक के अनुसार ज्ञान किस माध्यम से अर्जित होता है? ऐसे ज्ञान के दो उदाहरण लिखें।
4. किसी भी चीज को ज्ञान कहने के लिए क्या अनिवार्य शर्ते हैं? प्रत्येक शर्त का एक–एक उदाहरण लिखें।
5. देकार्त ने ज्ञान अर्जित करने के लिए संदेह की विधि को क्यों अपनाया?
6. जॉन लॉक के अनुसार समस्त ज्ञान इंद्रियानुभवों के माध्यम से होता है तो फिर वे भूत, हवाई घोड़ा या सोन परी जैसे काल्पनिक प्रत्ययों की व्याख्या किस प्रकार करते हैं? उदाहरण सहित समझाएं?
7. एक व्यक्ति विश्वास करता है कि पृथ्वी शेषनाग के फन पर टिकी है। क्या आप इसे ज्ञान मानेंगे? यदि हां तो क्यों और नहीं तो क्यों? कारण सहित स्पष्ट करें।
8. जॉन लॉक और प्लेटो के ज्ञान अर्जित करने के तरीकों में क्या फर्क है? इस अन्तर के बारे में आपकी क्या राय है?
9. इंन्द्रियानुभव के माध्यम से किन–किन चीजों का ज्ञान अर्जित किया जा सकता है और किन चीजों का नहीं किया जा सकता? कोई तीन उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
10. प्लेटो और देकार्त के ज्ञान अर्जित करने के तरीकों में क्या समानताएं है और क्या अंतर हैं?
11. आपके अनुसार किस ज्ञान पर संदेह किया जा सकता है और किस पर नहीं? उदाहरण सहित बताएं ।

12. जॉन लॉक के अनुसार यदि हमारा मन कोरी स्लेट है तो फिर इंसान इतना ज्ञान किस प्रकार अर्जित करता है? स्पष्ट करें।
13. ज्ञान के लिए सत्य प्रमाणित विश्वास की शर्त क्यों लगाई जाती है? उदाहरण सहित बताएं।
14. क्या यह संभव है कि किसी चीज़ में हम विश्वास करते हो और वह सत्य भी हो लेकिन ज्ञान नहीं हो। उदाहरण सहित समझाएं।
15. एडमण्ड गेटियर के अनुसार प्रमाणित सत्य–विश्वास ज्ञान के लिए पर्याप्त क्यों नहीं है? एक उदाहरण दीजिए।
16. जॉन लॉक और न्याय दर्शन में ज्ञान प्राप्त करने के साधनों में क्या समानताएं और क्या फर्क है?
17. यदि आप देकार्त की संदेह विधि को अपने ज्ञान पर लागू करना चाहें तो सोचकर बताएं कि आपके अनुसार कौनसा ज्ञान संदेह के घेरे में होगा और कौनसा उससे बाहर रहेगा? प्रत्येक के पांच–पांच उदाहरण लिखें।
18. क्या इन्द्रियों के द्वारा होने वाला ज्ञान सदा ही संदेहपूर्ण होता है? यदि हम इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले ज्ञान पर सदा संदेह करते रहें तो हमारे जीवन में क्या–क्या दिक्कतें आने की संभावना हैं?

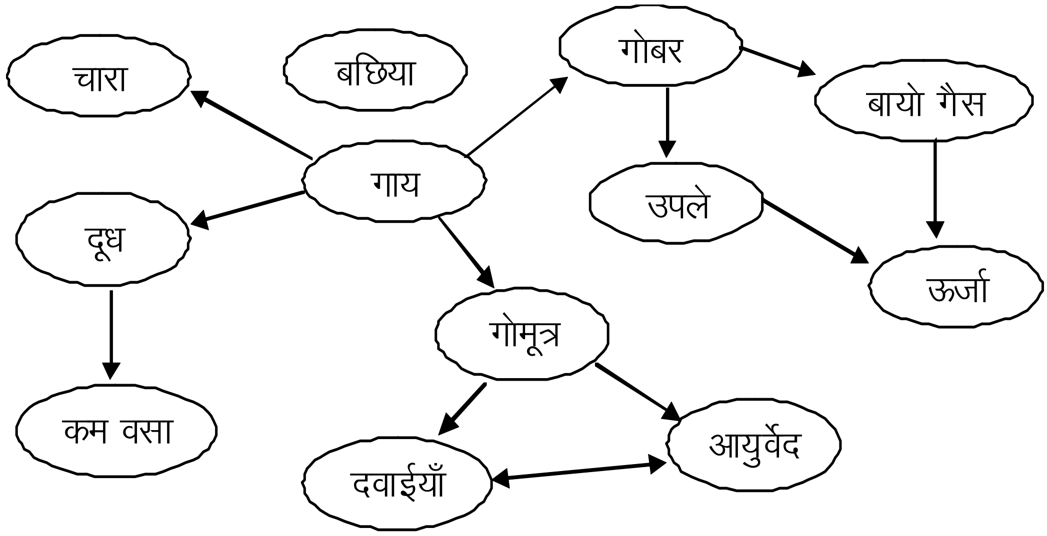

चित्र–1

कुछ प्रश्न–

- ***किसी अवधारणा के निर्माण के लिए किन चीजों की आवश्यकता होती है?***
- ***अवधारणा निर्माण के लिए भाषा का क्या महत्व है?***

अतः इस जगत की जो कुछ भी समझ हमें होती है वह इस प्रकार के अवधारणात्मक संजाल के रूप में ही होती है। हमारी सम्पूर्ण समझ अवधारणाओं की एक विशाल और समग्र संरचना ही है। हमारा जो भी ज्ञान/समझ है वह अवधारणाओं के रूप में ही है। अंक– 1,2,3,4,....; चिन्ह +, –, ÷, , ×, (वर्ण– अ, ब, स, a, b; शब्द– धर्म, स्वतंत्रता; वस्तुएँ– बाल्टी, पैन, कागज; अंग–आँख, कान, नाक; पदार्थ– पानी, आदि सब कुछ अवधारणाऐं ही तो हैं। इन्हीं अवधारणाओं के आपसी संबंधों से हम इन्हें अर्थ देते और इनकी व्याख्या करते हैं। इन्हीं के संचालन से हम नये सम्प्रेषणों की व्याख्या कर पाते हैं अर्थात् नई चीजें सीख/समझ पाते हैं। अपने विचारों को पूर्व–कल्पित कर पाते हैं और कौशलों की सहायता से उन्हें साकार कर पाते हैं। अतः 'समझ' का त ा त्प य अवधारणाओं के समग्र संजाल व इसके समुचित संचालन और उस क्षमता से है जिसके माध्यम से इंद्रीय संप्रेषणों का अर्थ–निर्माण व इनकी व्याख्या की जाती है।

वास्तव में हमने अभी तक यह बात की है कि कैसे इन्द्रीय–संप्रेषण से बिम्ब बनते हैं और फिर इन्हें अर्थ दिया जाता है और व्याख्या की जाती है। इस प्रकार अवधारणाएं बनती हैं, उनका एक संजाल बनता जाता है और वैसे–वैसे हमारी समझ विकसित होती जाती है।

शब्द और कुछ भी नहीं इन अवधारणाओं के नाम ही हैं। यह अवधारणा संरचना बना पाने को ही 'समझ' बना पाना कहते हैं। अर्थात् समझ बना पाना और भाषा का विकास एक दूसरे पर आधारित है। बिना एक के दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। अतः भाषा मात्र साधन नहीं है। भाषा समझ का अविभाज्य अंग है जो कि समझ के विकास के साथ–साथ आवश्यक रुप से विकसित होती है और बिना समझ के विकास के इस का विकास अवरुद्ध होता है।

यह निष्कर्ष प्राथमिक शिक्षा के लिये बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। एक निश्चित स्तर तक भाषा व समझ के विकास के बाद यह संभव है कि भाषा के विकास में कुछ भी प्रत्यक्ष रुप से जुड़े बिना समझ का विकास और गहन स्तरों तक हो सके। यह इसलिये कि उस समझ के लिये आवश्यक भाषाई क्षमताओं का आधार उपलब्ध हो जाता है। साथ ही यह भी संभव है कि समझ में और विकास हुए बिना आगे भाषा का विकास संभव हो सके। क्योंकि अवधारणाओं का आवश्यक आधार उपलब्ध हो जाता है। पर प्रारंभिक स्तर पर यह विभेद संभव नहीं है। अतः हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि प्राथमिक स्तर पर भाषा का विकास तथा समझ का विकास बालक के मानसिक विकास के पूरक पहलू हैं।

5.4.2 कौशल

'कौशल' से हमारा तात्पर्य कर्म करने की सामर्थ्य से हैं। कर्म अर्थात् सौद्देश्य क्रिया या क्रियाओं की एक श्रृंखला। मानव कोई भी कर्म निरूद्देश्य नहीं करता, वह अपने हर कर्म के कुछ वांछित परिणाम प्राप्त करना चाहता है। इंसान/मानव कर्मों का प्रतिपादन इस जगत में ही रहकर करता है। अर्थात् अपने कर्मों के माध्यम से इस जगत में वह वांछित परिस्थितियों का निर्माण करता है या दूसरे शब्दों में कहें कि जगत में परिवर्तन करता है। जगत में परिवर्तन के उद्देश्य से किए गए कर्मों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

i) वे कर्म जिनका उद्देश्य दूसरों के चिंतन एवं कर्म को प्रभावित करना होता है। ऐसा करने हेतु निम्न क्षमताओं की आवश्यकता हो सकती है। यह तो बस एक सूचकात्मक (indicative) सूची हैः

   (a) अभिव्यक्त किए जाने वाले विचार की स्पष्टता,

   (b) कैसे दूसरों को प्रभावित करना है इस बात की स्पष्टता,

   (c) दूसरों की भाषा का अंदाज लगा पाना तथा उस भाषा का अपने विचार की अभिव्यक्ति के लिए उपयोग कर पाना,

   (d) दूसरों के मूल्यों व चिंतन प्रणाली को समझ पाना व उनके परिप्रेक्ष्य में अपनी बात कह पाना,

   (e) अपने विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति एवं उनको समझने के लिए आवश्यक अवधारणाओं को चिन्हित कर पाना।

   यह सूची देखकर स्पष्ट है कि ये क्षमताएं समझ, मूल्य व व्यक्तित्व के सामान्य विकास के साथ विकसित हो जायेगी, अतः अलग से कुछ ज्यादा करने की आवश्यकता नहीं है।

ii) दूसरे वर्ग में वे कर्म आते है जिनका उद्देश्य जगत में भौतिक परिवर्तन करना होता है। इस वर्ग के कौशलों के विकास का सर्वाधिक महत्व है। जगत में भौतिक परिवर्तन से आशय है कि किसी विचार को वस्तु या कर्म में परिणत कर पाने की क्षमता। इसके लिए जिन क्षमताओं की आवश्यकता होती है वे निम्न तीन प्रकार की हो सकती है :

   (a) वांछित वस्तु की स्पष्ट कल्पना कर पाना,

   (b) वस्तु के निर्माण के लिए उपयुक्त पदार्थ का चुनाव,

   (c) पदार्थ को मनचाहा रूप देने की क्षमता।

उपरोक्त क्षमताओं में पहली दो क्षमताएं तो आकारपरक कल्पना एवं पदार्थों के गुण धर्मों की जानकारी से संबंधित है। अतः समझ के विकास के साथ–साथ ही इनका भी विकास होगा। जबकि तीसरी क्षमताऐं हाथों से काम करने से संबंधित है। अतः यहां वस्तुओं–पदार्थों के साथ सीधे अनुभव, हाथों से काम करना एवं श्रम के प्रति

हमारी भावना विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाते है। अतः प्रारंभिक शिक्षा में इस प्रकार की क्षमताएं हम विभिन्न तरीकों से विकसित कर सकते हैं। उदाहरणार्थ :

a) वांछित वस्तु की स्पष्ट कल्पना कर पाने की क्षमता। उदाहरणार्थ– फिरकनी या कागज की नाव की स्पष्ट कल्पना कर पाना।

b) वस्तु के निर्माण के लिए उपयुक्त पदार्थ का चुनाव कर पाने की क्षमता। जैसे– फिरकनी के लिए कागज, लकड़ी, गोंद, कील आदि का चुनाव।

c) पदार्थ को मनचाहा रूप देने की क्षमता। जैसे– कागज को काटना, चिपकाना, कील गाडना आदि जिससे फिरकनी बन सके।

अतः स्पष्ट है कि प्राथमिक शिक्षा में ऐसे अवसरों का स्थान होना चाहिए जिनके माध्यम से बच्चों की कल्पना को पंख लगे और उन्हें अपने हाथों से काम करने का मौका मिले। काष्ठ कला, मिट्टी (clay) का काम, बुनाई–कढ़ाई, खेलकूद आदि विधाओं को सिखाया जाना चाहिए ताकि वह अपने विचारों को मूर्त रूप दे सकें और कौशलों का उत्तरोत्तर विकास कर सकें।

कुछ प्रश्न–

- ***प्राथमिक शाला के बच्चों को सृजनात्मकता / कल्पनाशीलना के विकास के लिए किस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए?***

5.5 विद्यालय के विषय और ज्ञान के स्वरूपः

ज्ञान को बांट कर देखने के शिक्षाशास्त्रीय महत्व है। यह वर्गीकरण हमें बतायेगा कि समझ के कौन से हिस्से या हिस्सों को शिक्षा के माध्यम से विकसित करना है अर्थात् क्या सिखाना है क्या नहीं, इसका चुनाव करने में मदद मिलती है।

हमने जाना कि शिक्षा दर्शन की दृष्टि से इंसानी समझ को अवधारणाओं की विशिष्टता, अन्वेषण व सत्यापन प्रक्रियाओं की भिन्नता के आधार पर 7 अलग–अलग स्वरूपों में बांटा जा सकता है। ये स्वरूप हैं– गणित, प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, इतिहास, नैतिक समझ, सौंदर्य बोध और दर्शन। उल्लेखनीय है कि समझ के ये स्वरूप विद्यालय के विषय नहीं है बल्कि अनुभवों को वर्गीकृत करने तथा इस दुनिया को देखने/समझने के तरीकों भर है। हालांकि, विद्यालयों में जो विषय पढ़ाये जाते हैं उनका निर्धारण और चुनाव इसी वर्गीकरण के आधार पर होता है क्योंकि यदि किसी व्यक्ति की समझ को इन सात हिस्सों में संतुलित रूप से विकसित किया जाए तो वह एक जिम्मेदारी, संवेदनशील, विवेकशील व स्वायत्त नागरिक बन सकेगा और समाज में अहम हिस्सेदारी निभा सकेगा।

यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि समझ के जो 7 स्वरूप यहां बताये गये हैं वे एक दूसरे से अलग पहचाने जा सकते हैं पर एक दूसरे से पूर्णतया स्वतंत्र एवं निरपेक्ष नहीं हैं। इनमें बहुत सी बातें एक साथ दो या तीन में या सभी में सामान्य हो सकती हैं। न ही इनका विकास अकेले–अकेले संभव है। जगत के किसी भी हिस्से को, या हमारे किसी भी अनुभव को, व्याख्यायित करने के लिए भी सदा ही एक से अधिक स्वरूपों की मदद लेनी पड़ती है। अतः यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस वर्गीकरण का उद्देश्य मात्र उन बौद्धिक क्षमताओं को चिन्हित करना है जिनका विकास जगत को समझने व उनमें निणर्य लेने के लिए आवश्यक एवं पर्याप्त लगता है। साथ ही इनके विभाग (विज्ञान के विभाग प्राकृतिक एवं सामाजिक) तथा उप विभाग (प्राकृतिक विज्ञान में भौतिकी, रसायन, जीव विज्ञान आदि) संभव हैं। दूसरी तरफ जगत के विभिन्न हिस्सों या पहलुओं के

अध्ययन के लिए समझ के एकाधिक स्वरूपों को मिलाकर अध्ययन क्षेत्र बना पाना भी संभव है। जैसे– नृतत्त्व शास्त्र (मानव जाति का विज्ञान / anthropology) जो प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, इतिहास आदि का उपयोग करता है। इसी प्रकार पर्यावरण अध्ययन का उद्‌भव हुआ है।

हमने यह भी जाना कि भाषा और कौशल ज्ञान के इन सात स्वरूपों की सूची में नहीं है। दरअसल वह तो इन सबका आधार है, एक ऐसा औजार (tool) जिसकी मदद से ये सातों स्वरूप विकसित होते हैं। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यहां यह है कि जिस प्रकार भाषा का मानव जीवन में और शिक्षा में महत्व है उसी प्रकार गणित का भी है। जगत के बारे में समझ बनाने में मानव को आकारपरक संबंधों को समझना होता है। विभिन्न प्रकार के अमूर्त (केवल विचारों के) पैटर्न बनाने होते हैं। परिमाणात्मक समझ बनानी पड़ती है तथा अमूर्त तार्किक संरचनाएं बनानी पड़ती हैं। ये सब क्षमताएं गणितीय क्षमताएं हैं अर्थात् गणितीय समझ की मानव जीवन में भाषा के समान ही एक अहम भूमिका है। अतः भाषा और गणित पर आरंभिक शिक्षा में विशेष बल देने की आवश्यकता है ताकि बच्चों की सम्पूर्ण समझ के उत्तरोत्तर विकास हेतु ये आधारभूमि का कार्य करें। इसी प्रकार प्राथमिक कक्षाओं में पर्यावरण अध्यायन भी रखा गया है। वास्तव में ''राष्ट्रीय पाठ्‌यचर्या समिति ने सन् 1975 के नीति दस्तावेज "The curriculum for ten year school : A framework" में यह सिफारिश की है कि, एक अकेला विषय 'पर्यावरण अध्ययन' ही प्राथमिक अवस्था में पढ़ाया जाए। इसमें यह प्रस्तावित किया गया कि पहले दो वर्षों ;बसें में पर्यावरण अध्ययन दोनों प्राथमिक व सामाजिक परिवेश पर केन्द्रित होगा, जबकि कक्षा 3 से 5 तक इसमें सामाजिक अध्ययन व सामान्य विज्ञान के दो अलग–अलग भाग होंगे जिन्हें नाम दिया जाएगा भाग–1 व 2। शिक्षा की राष्ट्रीय नीति–1986 व NCF -1998 भी प्राथमिक कक्षाओं में EVS को लेकर यह नीति अपनाते हैं।

बच्चे अपने इर्द–गिर्द के जगत/परिवेश को महसूस/अनुभव करना सीखते कैसे हैं और कैसे प्राईमरी स्कूल में शिक्षण विधियां बच्चों में सामाजिक व पर्यावरणीय मुद्‌दों के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक क्षमताएं व समझ विकसित करने में सक्षम हों– पर समकालीन शोध भी इस समन्वित ढांचे को समर्थन (support) करते हैं।

NCF-2000 ने यह संस्तुति की कि सम्पूर्ण प्राइमरी अवस्था में कक्षा 3 से 5 तक EVS को दो भागों में जो अलग–अलग विज्ञान व सामाजिक विज्ञान पर केन्द्रित है। पढ़ाने के बजाय एक समन्वित कोर्स के रूप में पढ़ाया जाए। NCF-2005 भी इसी समन्वित उपागम को आगे बढ़ाता है और सुदृढ़ बनाता है।'' (NCERT Syllabus for classes at elementary level : environmental studies : 90)

अतः पर्यावरण अध्ययन वह अध्ययन क्षेत्र है जो जगत के उन विभिन्न हिस्सों या पहलुओं की समझ एक समन्वित रूप में विकसित करता है जो बच्चों के लिए आधारभूत है। वास्तव में पर्यावरण अध्ययन कोई अनुशासन (discipline) नहीं है बल्कि विभिन्न विषय क्षेत्रों का एक समूह है। यह तो हम जानते है कि हमारे परिवेश में मुख्यतः दो प्रकार के घटक हैं– प्राकृतिक एवं सामाजिक। अतः इनका अध्ययन क्रमशः विज्ञान एवं सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है। इसके अतिरिक्त अपने परिवेश की सार्थक समझ बनाने हेतु हमें इतिहास बोध व भौगोलिक समझ की भी आवश्यकता होती है। अतः पर्यावरण अध्ययन में इतिहास व भूगोल भी शामिल है। इस प्रकार सीखने के जिस क्षेत्र को हम ''पर्यावरण अध्ययन'' कहते है, उसमें विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, इतिहास एवं भूगोल समाहित होते हैं। इन क्षेत्रों की पद्धतियों एवं सामग्री में पर्याप्त भिन्नताएं हैं। बच्चों के लिए चाहे इन भिन्नताओं को रेखांकित न करें पर शिक्षक को ये ध्यान में रखनी होगी क्योंकि इसका सीधा असर सिखाने के तौर–तरीकों पर पड़ता है।

यहां आप पूछ सकते हैं कि ज्ञान के स्वरूप तो 7 हैं और पर्यावरण अध्ययन में हमने केवल 3 ही लिए हैं। पर्यावरण अध्ययन तो प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान व इतिहास को मिलाकर बना एक विषय क्षेत्र है। गणित को हम पहले ही ले चुके हैं। अतः यहां अब प्रश्न उठता है कि बाकी के तीन स्वरूप ''नैतिक समझ'', ''सौंदर्य बोध'' और ''दर्शन'' का प्रारंभिक शिक्षा में क्या स्थान है? वास्तव में यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। होता ये है कि बच्चे

एक क्रमिक बौद्धिक अवस्था से होकर गुजरते है और उम्र के अनुसार सीखते है। इसलिए प्राथमिक शिक्षा में 'दर्शन' की समझ को विकसित करना मुश्किल है अतः इसे बाद के लिए रखा गया है। अब बचते है ''नैतिक समझ'' और ''सौंदर्य बोध'' तो इनको अलग से विकसित करने की आवश्यकता नहीं है। यह सब तो बच्चे विद्यालय के वातावरण, गतिविधियां, शिक्षकों के व्यवहार व आचरण, घर और समाज सभी स्तर पर समन्वित रूप से सीखते हैं।

कुछ प्रश्न–

• ज्ञान के विभिन्न स्वरूपों को ध्यान मे रखकर कक्षा 4 के पर्यावरण के किसी एक पाठ की संभावित उद्देश्यों को लिखे।

किन्तु यहां एक अन्य महत्वपूर्ण बात है जो हमें सदैव ध्यान रखनी है। प्रारंभिक शिक्षा के बाद बच्चों को आगे चलकर विषय समन्वित रूप में न पढ़कर अलग–अलग पढ़ने है। अर्थात् वहां विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, इतिहास, भूगोल, कला आदि सब अलग–अलग होंगे। अतः प्रारंभिक शिक्षा में शिक्षक को दोहरी भूमिका निभानी होगी। एक तो पर्यावरण अध्ययन के अन्तर्गत सभी विषयों को एकीकृत रूप से समझाना होगा और दूसरा बच्चों को बार–बार ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया से गुजारना होगा ताकि बच्चे प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, इतिहास, भूगोल आदि की ज्ञान निर्माण प्रक्रियाओं में भेद को समझ सकें और उस पर पकड़ बना सकें। इसके दो लाभ होंगे एक तो बच्चे सीखना सीखेंगे, दूसरा, जब वे आगे उच्च शिक्षा में जायेंगे तो उन्हें अलग–अलग विषय क्यों हैं यह समझ आयेगा और उनके अन्तर्सम्बन्ध क्या है इसका उन्हें भान/बोध होगा।

5.6 सारांश

उपरोक्त चर्चा के दौरान देखा कि

- ज्ञान को अवधारणाओं और सत्यापन प्रक्रियाओ के आधार पर निम्न वर्गो में बॉटा जा सकता है– गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, इतिहास, नैतिक समझ, सौन्दर्यबोध और दर्शन।
- भाषा और कौशल को इन आधारों पर ज्ञान के स्वरूपों के हिस्से की तरह नही माना है।
- किसी व्यक्ति के सर्वांगिण विकास के लिए इन सभी सात हिस्सों में संतुलित विकास किया जाने की आवश्यकता होगी।
- इनका विकास अकेले अकेले न हो कर समाकेत रूप (integrated form) से किया जाना चाहिए।
- इस अध्याय पर चर्चा से जो अंतर्दृष्टि (insight) मिलती है उसको आधार बनाते हुए प्राथमिक शिक्षा का एक खाका तैयार कर सकते है। जो कि कुछ इस प्रकार होगा (चित्रः 2)

(i) मूल्य एवं कौशल (ii) भाषा (iii) गणित
(iv) पर्यावरण अध्ययन (v) सौंदर्य बोध

उपरोक्त क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा में काम करने की आवश्यकता है। यहां उल्लेखनीय है कि ये पांचों क्षेत्र एक–दूसरे से इस प्रकार अवंगुठित है कि इन्हें अलग–अलग नहीं देखा जाना चाहिए। ये एक–दूसरे से अविच्छिन्न है, एक–दूसरे के उत्तरोत्तर विकास का सहारा है। यह सब कुछ ऐसा है मानो ये पांचों क्षेत्र किसी घड़ी के कल–पुर्जे हो जो सब एक साथ मिलकर चलते है तभी समय दिखा पाते है। अतः ये क्षेत्र एकीकृत है और इनका संतुलित विकास आवश्यक है।

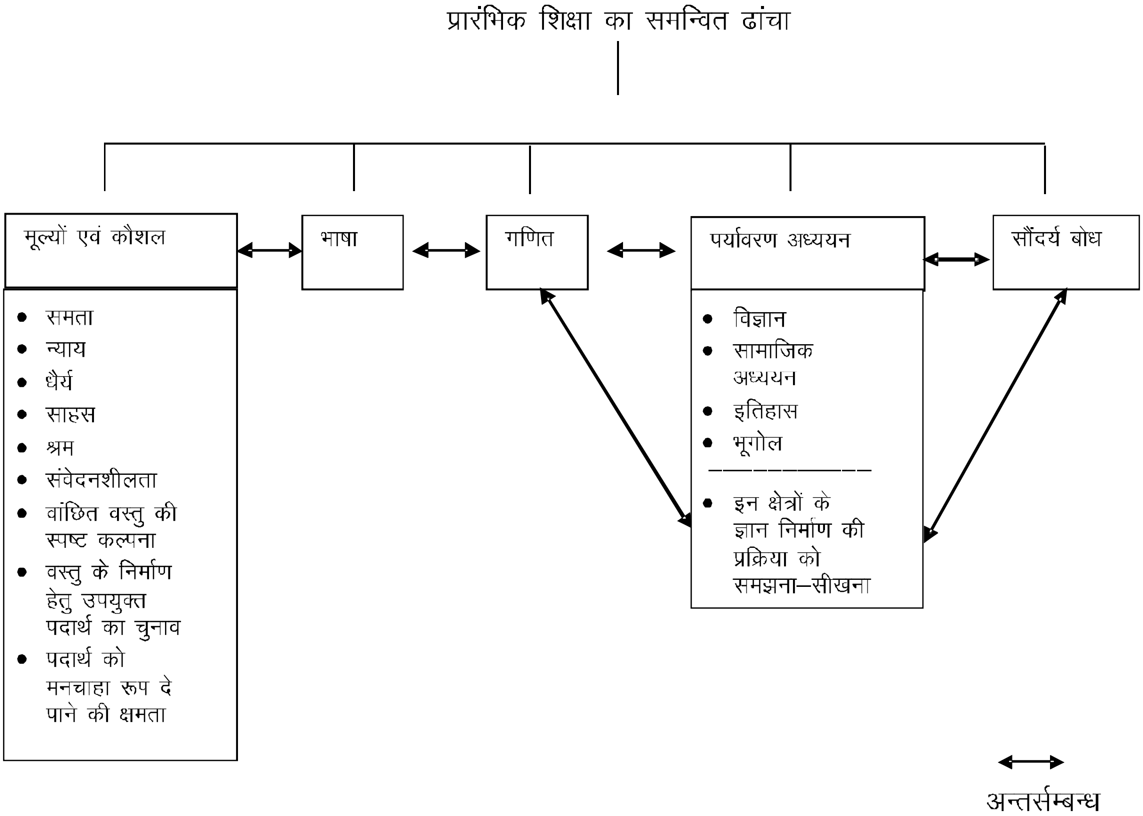

प्रारंभिक शिक्षा का समन्वित ढांचा (चित्र : 2)

5.7 अभ्यास के लिए कुछ प्रश्न

1. गणितीय ज्ञान को अनुभव के आधार पर क्यों नहीं जाँचा जा सकता ? कारण सहित बताएं।
2. विज्ञान विषय से संबंधित ज्ञान को अर्जित करने और उसके सत्यापन के क्या तरीके हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
3. करीब पाँच सौ साल पहले माना जाता था कि सूरज पृथ्वी की परिक्रमा करता है। क्या इसे आज भी सत्य मानेगें ? अपने पक्ष को कारण सहित स्पष्ट कीजिये।
4. भाषा को ज्ञान के विभिन्न स्वरूपों में क्यों शामिल नहीं किया गया हैं?
5. वैज्ञानिक ज्ञान और गणितीय ज्ञान में क्या अंतर है? स्पष्ट करें।
6. ज्ञान के क्षेत्रों को किन आधारों पर एक दूसरे से अलग किया जाता है। स्पष्ट करें।
7. ''गणितीय अवधारणाओं में क्रमबद्धता होती है।'' इस कथन को उदाहरण सहित समझाइये?
8. ऐतिहासिक और वैज्ञानिक ज्ञान के अध्ययन की विषयवस्तु में क्या फर्क है? उदाहरण सहित समझाइये?
9. यदि कोई व्यक्ति किसी टापू पर सिर्फ अकेला ही रहे तो क्या उसे किन्ही प्रकार के नैतिक नियमों की आवश्यकता होगी? अपने पक्ष को कारण सहित स्पष्ट करें।

10. यदि हमारे पास भाषा नहीं हो तो क्या हमारे पास ज्ञान होगा? समझाइए?

11. ऐतिहासिक ज्ञान और वैज्ञानिक ज्ञान के सत्यापन की कसौटी में क्या फर्क है?

12. यदि हम स्कूली शिक्षण में मानवीय ज्ञान को विभिन्न स्वरूपों में वर्गीकृत करके शिक्षण नहीं करवायें तो क्या शिक्षण पर कोई प्रभाव पड़ेगा? कारण सहित स्पष्ट करें?

13. दुनिया की समझ विकसित करने में ज्ञान के विभिन्न स्वरूपों का वर्गीकरण किस प्रकार मदद करते हैं?

अध्याय – 5
ज्ञान के स्वरूप

पाठ की रूपरेखा

5.1 परिचय

5.1.1 उद्देश्य

5.2 प्रश्न, प्रश्न, प्रश्न !!!

5.3 ज्ञान के स्वरूप

5.3.1 गणित

5.3.2 विज्ञान

5.3.3 सामाजिक विज्ञान

5.3.4 इतिहास

5.3.5 सौंदर्यबोध

5.3.6 नैतिक समझ

5.3.7 दर्शन

5.4 क्या भाषा और कौशल ज्ञान के स्वरूप नही है?

5.4.1 भाषा

5.4.2 कौशल

5.5 विद्यालय के विषय और ज्ञान के स्वरूप

5.6 सारांश

5.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

5.1 परिचय

अभी तक हम पिछले अध्यायो में ज्ञान व ज्ञान मीमांसा संबंधी प्रश्नों पर विचार कर यह जानने व समझने का प्रयास किया कि आम बोलचाल में 'ज्ञान' शब्द का उपयोग किस–किस तरह से करते है और उसके पीछे की अवधारणा क्या होती है? इस दौरान हमने मानवीय ज्ञान के विभिन्न प्रकारों (परिचयात्मक, तथ्यात्मक एवं कौशलात्मक ज्ञान) के बीच आपसी संबंध को जानने का प्रयास किया। ज्ञान के प्रमाणों के संर्दभ के भारतीय न्याय दर्शन के अनुसार चार प्रमाणों (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द) पर चर्चा गई। अध्याय चार में ज्ञान को लेकर कुछ पाश्चात्य दर्शनिकों के विचार के साथ–साथ ज्ञान की शास्त्रीय परिभाषा में ज्ञान की तीन अनिवार्य शर्तों का जाना।

इस अध्याय में हम ज्ञानमीमांसा की विवेचनाओं को शिक्षाक्रम और पाठ्यक्रम से जोडने का प्रयास करेंगे, जिसमें हम मानवीय ज्ञान के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करेंगे और यह जानने व समझने का प्रयास करेंगे कि शिक्षाक्रम और पाठ्यक्रम में शामिल विभिन्न विषयों के स्वरूप किस प्रकार के है।

5.1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- जान पाएगे कि ज्ञान का विभाजन किन–किन आधारों पर किया जा सकता है।
- ज्ञान के विभिन्न अवधारणाओं में किस प्रकार की भिन्नता है पर समझ बना पाएंगें।

- ज्ञान के विभिन्न अवधारणाओं के सत्यापन करने की कौन–कौन सी विधियॉ हो सकती है इस पर विचार करने का अवसर प्राप्त करेंगें।
- ज्ञान के विभिन्न विशिष्टताओं के कारण शिक्षण अथवा सीखने–सीखाने के तौर–तरीको में क्या अन्तर हो सकता है,इस पर समझ बनाना पायेंगें।
- ज्ञान के विभिन्न स्वरूपों के कक्षागत उद्देश्यों पर समझ बना पाएगें।

5.2 प्रश्न, प्रश्न, प्रश्न !!!

बहुत सारे प्रश्न उठा दिये गये हैं अभी तक! और वो भी इतने जटिल की ज्ञान क्या है? इसके प्रकार, शर्तें आदि क्या है? और इसको कैसे प्राप्त किया जाता है आदि–आदि। अब तो चिढ़ने भी लगे होंगे इन प्रश्नों से! लेकिन साथियों प्रश्न उठाना शिक्षक की सबसे महत्वपूर्ण भूमिकाओं में से एक है। अच्छा, अगर मैं आपसे पूछू कि ऐसा सवालो में क्या होता है कि आप चिढ़ जाते हो तो आप कहेंगें "क्या निरर्थक बातें कर रहे हो"। अब अगर मैं आपसे पूछँू कि यह ''निरर्थक'' के क्या मायने है? तो शायद आप मुझ पर गुस्सा तो होंगे लेकिन अपने गुस्से को पीकर जवाब देंगे कि, ''जिसका कोई अर्थ नहीं होता।'' हालांकि यह गुस्ताखी होगी लेकिन यदि मैं अब आपसे पूछँू कि ''अर्थ'' का क्या मायने है? अब तो हद ही हो गयी। आप अब कहेंगे ''चुप हो जाइये''। चलिए मैं तो चुप हो जाऊँगा लेकिन जानकर आश्चर्य होगा कि दार्शनिक इस सवाल कि, ''अर्थ का क्या अर्थ है'' पर सदियों से चिंतन–मनन कर रहे है।

खैर, एक गुस्ताखी मैं और करूँगा और वो यह है कि मेरे कुछ प्रश्न है जिनके उत्तर तो हमें ढूंढने ही होंगे। ''क्यों ढूंढने होंगे'', आप पूछ सकते हैं। बिल्कुल पूछ सकते हैं लेकिन इससे पहले हम उन प्रश्नों को तो जान लें।

देखिए, वर्तमान काल में मनुष्य जाति ने बहुत सारे ज्ञान और कौशल एकत्रित कर लिए हैं। सदियों से मानव ज्ञान से सृजन और पुस्तकों में सुरक्षित रखने का काम कर रहे हैं। अब एक सवाल तो यही है कि इस ज्ञान में से विद्यालय में बच्चों को क्या–क्या करवायें? क्यों करवायें?

इस सवाल को सुनते ही आप कह सकते है कि, ''यह कौन सी बड़ी समस्या है? अरे भई, वर्षों से विद्यालयों में बच्चों को भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला, खेलकूद आदि सिखाया जाता रहा है, तो हम भी यही सिखायेंगे और क्या?'' बिल्कुल सही बात है आप ऐसा कह सकते है।

कुछ प्रश्न–

अब आप निम्न प्रश्नों पर विचार करें–

- ***आप ये सब विषय ही क्यों सिखाना/पढाना चाहते हैं?***
- ***यदि सारा ज्ञान विभिन्न विषयों में विभाजित है तो इस विभाजन के आधार क्या हैं? क्या इसके पीछे कोई तर्क हैं? या केवल एक परम्परा?***

आप कह सकते है, ''यह तो शिक्षाक्रम या पाठ्यक्रम में ही दिया हुआ है। हमें बताया गया कि ये विषय पढ़ाने हैं और हम पढ़ा रहे हैं।'' लेकिन ध्यान से देखिए कि मेरा सवाल तो जस का तस खड़ा है। मैं पूछ सकता हूँ कि शिक्षाक्रम निर्माताओं ने भी तो इन्हें अलग–अलग विभाजित करके रखा तो उनके भी तो कोई आधार होंगे ही ना? वो क्या हैं? क्यों हैं? प्रश्न तो यही है। यहाँ आप कह सकते है कि, ''फिर तो यह प्रश्न शिक्षाक्रम निर्माताओं से होना चाहिए। इन सबका शिक्षकों से क्या लेना–देना। वे इन सबको जानकर क्या करेंगे?'' बिल्कुल आप ऐसा कह सकते है। लेकिन फिर मेरा आग्रह होगा कि आप एक मिनट शान्त मन से, ठण्डे दिमाग से यह

सोचिए कि यदि हम यह मानते है कि ज्ञान अलग–अलग विषयों में बंटा है तो इसमें यह तो अर्न्तनिहित है ही कि इन हर हिस्सों या विषयों में ऐसा कुछ तो है जो दूसरों में नहीं है। यदि आप मेरी इस बात से सहमत है तो फिर आप यह भी मानेंगे कि यदि इनमें कुछ ऐसा है जो भिन्न है तो फिर इनको सीखने–सिखाने के तौर–तरीके भी तो अलग–अलग होंगे? अब यदि तौर–तरीकें अलग–अलग हैं तो शिक्षक का तो काम ही सीखना–सिखाना है अर्थात् उसे इनके बारे में जानकारी तो अवश्य ही होनी चाहिए। यदि आप ऐसा मानते हैं तो फिर तो उपरोक्त प्रश्न हमारे लिए भी उतने ही प्रासांगिक और महत्वपूर्ण है जिनने की शिक्षाक्रम निर्माताओं के लिए।

अब यह तो हुई समस्या, लेकिन इसका हल क्या है? चलिए इसका हल हम निम्न तरीकों से ढूंढने का प्रयास करते हैं।

कुछ प्रश्न–

यहाँ 6 वाक्य लिखे हैं जिनमें कुछ दावे किए गये हैं–

1. ***त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है।***
2. ***चंद्रमा पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है।***
3. ***बिलासपुर में साक्षरता प्रतिशत रायपुर के बराबर है।***
4. ***राजा रामचन्द्र के पुत्र ब्रह्मदेव राय ने रायपुर की स्थापना की थी।***
5. ***सदा सच बोलना चाहिए।***
6. ***गुलाब का फूल सबसे सुन्दर फूल होता है।***

अब आपको करना यह है कि:

i. बतायें ये वाक्य सत्य हैं या असत्य ?

ii.कैसे सिद्ध करेंगे कि सत्य है या असत्य है? आधार क्या है? सत्यता पता करने का तरीका क्या है?

वाक्यों पर विचार करते समय कुछ इस प्रकार की बातें निकलकर आने की संभावनाए है:

उदाहरण के लिए दो वाक्य लेते हैं वाक्य 1 व 6:

1. त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है।

6. गुलाब का फूल सबसे सुदंर फूल होता है।

वाक्य ''गुलाब का फूल सबसे सुंदर फूल होता हैं।'' सत्य है या असत्य? आप इस से सहमत हो भी सकतें है और नही भी। यदि आप इसे सत्य मानते हैं तो क्या इसकी सत्यता का प्रमाण दे सकते हैं। अब दूसरे सवाल पर आते हैं।

कैसे पता चले कि गुलाब का फूल सब फूलों से सुन्दर है या नहीं? एक काम यह कर सकते हैं कि लोगों से पूछें यदि ज्यादा लोग यह कहते हैं कि सबसे सुन्दर है तो वाक्य को सत्य कहें। इससे यह तो पता चल जाएगा कि गुलाब को सुन्दर मानने वाले लोग 50 प्रतिशत से कम हैं या ज्यादा, पर क्या इस से गुलाब की सुन्दरता सिद्ध हो जाती है। क्या त्रिभुज के तीनों कोणों का नाप भी बहुमत से तय करेंगे? ऐसा भी संभव है कि 50 प्रतिशत

से अधिक लोगों के गुलाब के फूल का सुंदर कहने पर भी आपको गुलाब का फूल सुन्दर न लगे? ऐसे में लगता है कि गुलाब की सुन्दरता का मामला बहुमत से तो तय नहीं हो सकता। तो? हो सकता है यह व्यक्तिगत पसंद का मामला हो और इस में सत्य–असत्य होने की कोई बात ही ना हो। अतः हो सकता है यह वाक्य न सत्य हो और न ही असत्य। बल्कि कहने वाले की पंसद की अभिव्यक्ति भर हो। हो सकता है इसे जांचने का कोई पक्का तरीका ना हो।

अब दूसरा वाक्य देखियेः त्रिभुज के तीनो कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है। यह सत्य है या असत्य? मान लें कि आप इसे सत्य कहते हैं। तो जो नहीं जानता या नहीं मानता उसे क्या प्रमाण देंगे? क्या इसमें भी लोगों से पूछकर बहुमत से निर्णय करेंगे? शायद नहीं।

एक उत्तर यह हो सकता है कि त्रिभुज कागज पर बनालें और उसके तीनों कोणों को नाप कर जोड़ लें। आप कह सकते हैं कि उत्तर 180° आयेगा। दो समकोण भी मिल कर 180° होते हैं। अतः त्रिभुज के तीनों कोणों का योग = दो समकोण। पर, इस पर कई सवाल उठ सकते हैं :

1. क्या अपने कभी नाप कर देखा है? नहीं देखा है तो देखिये (यदि देखा भी है तो दोबारा नापकर देखिए)। यदि आप ईमानदारी से नापेंगे तो कभी भी पूरा–पूरा 180° योग नहीं आयेगा। लगभग आयेगा। पर यहां तो बात लगभग की नहीं है। यहां तो कहा गया है कि पूरा दो समकोण होता है।

2. यदि एक त्रिभुज को नापने से दो समकोण आ भी गया तो कैसे पता कि सभी त्रिभुजों में ऐसा ही होगा। एक गाय के 10 किलो दूध देने से तो यह सिद्ध नहीं होता कि सभी गायें 10 किलो दूध देती हैं।

3. यदि मैं यह कहूं कि ऐसा समबाहू त्रिभुज जिस की प्रत्येक भुजा 1000 किलोमीटर लम्बी हो, उसके तीनों कोणों का योग दो समकोण से ज्यादा होता है तो? आप मेरी बात को गलत कैसे कहेंगे? 1000 किलोमीटर की भुजा वाला त्रिभुज बना कर तो नाप नहीं सकते।

तो लगता है नापने से काम नहीं चलेगा। आइये देखते हैं रेखागणित मे इसे कैसे सिद्ध करते हैंः

सिद्ध करना है : त्रिभुज के तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है।

माना :

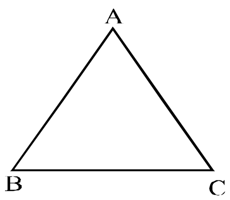

माना ABC कोई त्रिभुज है। यह कोई एक खास त्रिभुज नहीं है। बल्कि कोई भी और किसी भी नाप का त्रिभुज हो सकता है।

रचना :

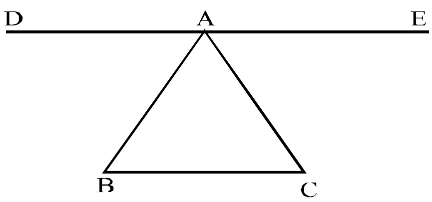

त्रिभुज ABC के शीर्ष A से रेखा DE आधार BC के समान्तर खिंची। (*1)

उपपत्ति :

$\angle ABC = \angle BAD$ (DE || BC तथा रेखा AB, DE और BC दोनों को काटती है अतः $\angle ABC$ और $\angle BAD$ एकांतर कोण हैं। एकांतर कोण बराबर होते हैं। (*1)

इसी तरह $\angle BCA = \angle CAE$

अब $\angle ABC + \angle ACB + \angle BAC = \angle BAD + \angle CAE + \angle BAC$

पर $\angle BAD + \angle BAC + \angle CAE = 2$ समकोण (क्योंकि एक सरल रेखा पर हैं)

$\angle ABC + \angle ACB + \angle BAC = 2$ समकोण

अतः ABC के तीनों कोण मिलकर दो समकोण के बराबर हैं।

- यहां हमने गणितीय परिभाषाओं और नियमों को काम में लिया है।
- जहां भी लगता है, वहां आप और प्रमाण मांग सकते हैं। जैसे एकांतर कोण बराबर होते है। तो त्रिभुजों के तीनों कोणों का योग का दो समकोणो के योग के बराबर होना एकांतर कोणों के बराबर होने पर निर्भर है। अतः एकांतर कोणों को भी बराबर सिद्ध करना होगा।
- अतः इस बात की सत्यता पहले सिद्ध हो चुकी इन बातों (ऐकांतर कोण बराबर होते हैं।) पर निर्भर करती है।
- इस तरह गणित में किसी चीज को सिद्ध करने के लिए परिभाषा, स्वयं सिद्ध तथा निगमन के नियम और पहले सिद्ध हो चुकी चीजें काम आती हैं। और हां, इन को काम में लेने में तर्क और कल्पना शक्ति का प्रयोग करना होता है।

कुछ प्रश्न–

- ***वाक्य 1 और 6 की सत्यता की जॉच के लिए जिस तरीकों का उपयोग किया गया उनमें आप किस प्रकार का अन्तर देखते है?***

इन दोनों वाक्यों (वाक्य 1 व 6) की तुलना करें तो पायेंगे कि :

- ***पहला वाक्य (त्रिभुज के तीनों ....) सत्य है और इसे गणितीय निगमन विधि से सिद्ध किया जा सकता है। निगमन विधि पूर्व मान्यताओं, परिभाषाओं, निगमन के नियमों और स्वयंसिद्ध मान्यताओं पर निर्भर करती है।***
- ***दूसरा वाक्य (गुलाब का फूल ....) न सत्य है और न असत्य। यह किसी का मत भी हो सकता है। लेकिन इस प्रकार के मत के पीछे भी विभिन्न कारण हो सकते हैं जो दूसरों को समझाये जा सकें।***
- ***तो हो सकता है कि अलग–अलग दावों को सत्य या असत्य साबित करने के अलग–अलग तरीके होते हैं।***

आइये थोड़ा–थोड़ा संक्षिप्त विचार आगे के चार वाक्यों पर भी कर लें।

वाक्य 2: चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है। यह विज्ञान के वर्तमान ज्ञान के अनुसार सत्य माना जाता है। इसे सिद्ध करने के लिए अवलोकन करना होगा। विज्ञान के अन्य सिद्धान्तों का हवाला देना होगा। इसमें भी परिभाषाएं और मान्यताएं काम में आयेंगी। इसे त्रिभुज वाले वाक्य की तरह खाली तर्क और पूर्व मान्यताओं के आधार पर सत्य नहीं ठहरा सकते। चांद और धरती को तो देखना ही पड़ेगा। अवलोकनों की व्याख्या करनी पड़ेगी, उदारहणार्थ यह रोज अलग–अलग समय पर क्यों उदय होता

है? आदि।

वाक्य–3: बिलासपुर में साक्षरता प्रतिशत रायपुर के बराबर है।

इस की सत्यता पता करने के लिए सर्वेक्षण करना होगा। बिलासपुर और रायपुर की परिभाषायें (सीमांकन) करना होगा, साक्षरता की परिभाषा करनी होगी, सर्वेक्षण के लिए सेम्पल लेना होगा। सर्वेक्षण भी एक तरह का अवलोकन है। पर यहां हम सामाजिक परीस्थिति का अवलोकन कर रहे हैं। चांद जैसी बेजान चीज का नहीं।

वाक्य–4: राजा रामचन्द्र के पुत्र ब्रह्मदेव राय ने रायपुर की स्थापना की थी।

इस की जांच के लिए हमें बहुत ऐतिहासिक स्रोतों की खोज करनी पड़ेगी। इन में पुरातात्विक चीजें हो सकती हैं और ग्रंथ हो सकते हैं। विभिन्न स्रोतों से एक से अधिक मत मिल सकते हैं तो तुलना एवं विवेचना करनी होगी। नये तथ्य सामने आने पर अपना मत बदलना भी पड़ सकता है।

वाक्य 5: सदा सच बोलना चाहिये।

यह एक नैतिक सिद्धान्त है। यहां सत्य–असत्य का सवाल नहीं है। उचित–अनुचित का है। इसे पूरी तरह उचित तो नहीं ठहरा सकते, न पूरी तरह अनुचित ठहरा सकते हैं। पर यह इस बात पर निर्भर करता है कि और कौन से नैतिक सिद्धान्त हम स्वीकार करते हैं। किसी भी एक नैतिक सिद्धान्त को उचित साबित करने के लिए और दूसरे नैतिक सिद्धान्तों का हवाला दिया जाता है।

बहुत लोग इसे सर्वे करके बहुमत के आधार पर उचित ठहराने की कोशिश कर सकते हैं। किसी शास्त्र या महापुरूष के कथन से उचित ठहराने की कोशिश कर सकते हैं। या सच बोलने के शुभ परिणामों का हवाला दे कर उचित ठहराने की कोशिश कर सकते हैं। पर इन में से कोई भी तरीका इसे तार्किक तौर पर स्थापित नहीं कर सकता। इस का औचित्य अन्य नैतिक मान्यताओं पर ही निर्भर करता है।

आइये, अब हम इस गतिविधि का विश्लेषण करते हैं और समझते हैं कि कैसे यह हमारी मदद करती हैं उन प्रश्नों के उत्तर ढूंढने में जो अध्याय के शुरूआत में उठाये गये थे।

i) सबसे पहले, यदि आप ध्यान दे तो ये सभी वाक्य ज्ञान के विभिन्न दायरों (विषय क्षेत्रों) का प्रतिनिधित्व करते हैं।

- वाक्य 1 – गणित
- वाक्य 2 – विज्ञान
- वाक्य 3 – सामाजिक विज्ञान
- वाक्य 4 – इतिहास
- वाक्य 5 – नैतिक समझ
- वाक्य 6 – सौंदर्य बोध

अब आप ध्यान दीजिए कि क्या ज्ञान के इन विभिन्न दायरों में हम दांवो ;च्तवचवेपजपवदेद्ध को सत्य–असत्य की ही कसौटी पर कस कर देखते हैं? नहीं। हमने देखा कि गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान और इतिहास में किये गये दाँवो को सत्य–असत्य की कसौटी पर कसा जा सकता है लेकिन नैतिक समझ में यह उचित–अनुचित और सौन्दर्य–बोध में अच्छा–बुरा, सुंदर–असुंदर वैद्यता की कसौटी है। तो हम कह सकते है ज्ञान के विभिन्न दायरों में एक भिन्नता तो यही है।

ii) दूसरा, यदि आप ध्यान दें तो ज्ञान के विभिन्न दायरों की अवधारणाओं में भी भिन्नता देखने को मिलती है। हाँलाकि हमने जो गतिविधि अभी की हैं, इसमें यह बात बहुत अच्छे से उजागर नहीं होती है लेकिन यदि आप ध्यान से सोचे तो पायेंगे की अवधारणाएं भिन्न है। जैसे गणित में कुछ इस प्रकार की अवधारणाएं होती है– त्रिभुज, आयत, वर्ग, जोड़, बाकी, संख्या, कोण, एकांतर कोण, समकोण आदि। इसी प्रकार विज्ञान में– त्वरण, गुरूत्वाकर्षण, ध्वनि, ऊष्मा, ऊर्जा आदि, सामाजिक विज्ञान में– प्रागैतिहासिक (Prehistorical) काल, मध्यकाल, भक्ति आंदोलन आदि। नैतिक समझ में– न्याय, दायित्व कर्त्तव्य, आदि और सौंदर्यबोध में–छंद, राग, रस, काव्य, लालित्य आदि।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि ज्ञान के विभिन्न दायरों की अवधारणाएं आपको सामान्य उपयोग की अवधारणाओं सी लग सकती है। लेकिन ऐसा नहीं है। क्योंकि हर ज्ञान के दायरें में अवधारणाओं को विशिष्ट अर्थों में समझा जाता है। उदाहरण के तौर पर ध्वनि। आम भाषा में ध्वनि का उपयोग आवाज के लिए करते हैं लेकिन विज्ञान जिस अर्थ में ध्वनि का उपयोग करता है उसमें सुनाई देना आवश्यक नहीं है। इसी प्रकार आम भाषा में हम जिस अर्थ में "रस" का प्रयोग करते हैं (जैसे अनार का रस), सौंदर्यबोध में यह एकदम अलग अर्थों में प्रयोग किया जाता है (जैसे वीर रस)। इसी प्रकार एक अन्य महत्वपूर्ण बात और है जिस पर हमें ध्यान देना चाहिए। ध्यान से देखिए कि जितनी भी अवधारणाएं मानव ने विकसित की है उनमें से प्रत्येक अवधारणा हमारे जगत के किसी एक खास पहलु की व्याख्या करती है। जैसे त्वरण, ऊष्मा, गुरूत्वाकर्षण, ध्वनि, गति आदि हमारे जगत के भौतिक (प्रकृति) पहलु अर्थात प्राकृतिक परिघटनाओं की व्याख्या करती है। इसी प्रकार कुछ अवधारणाएं हमारे जगत के सामाजिक पहलु की व्याख्या करती है जैसे परिवार, संस्कृति, लोकतंत्र, कट्टरवाद, साक्षरता, न्याय, अर्थव्यवस्था, पूँजी, श्रम आदि। इसी तरह हम दूसरी अन्य अवधारणाओं को भी विश्लेषित करते जा सकते हैं और उनकी एक सूची बनाते जा सकते हैं।

कुछ प्रश्न–

• ***नीचे दिए गए तालिका को पूरा करें***

क्र.	अवधारणा	विशिष्ट अर्थ	पहलुओं की व्याख्या
1	वर्ग	आकार / आकृति /2	गणित
2	वर्ग	समूह (जाति / धर्म)	समाजिक
3	पेड	फलदार पेड	विज्ञान
4			
5			
6			
7			
8			

अंत में हम पाते हैं कि मोटे तौर पर ये सभी अवधारणाएँ हमारे जगत के प्राकृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, गणितीय, नैतिक, सौंदर्यात्मक और दार्शनिक पहलुओं की व्याख्या करती है। अतः हम कह

सकते हैं कि हमारा सम्पूर्ण ज्ञान जो कि अवधारणाओं के रूप में हैं, उसे अवधारणाओं की उपरोक्त विशिष्टताओं के आधार पर विभाजित किया जा सकता है। और यह विभाजन कुछ इस प्रकार के दायरों में होता है—विज्ञान (प्राकृतिक पहलु), सामाजिक विज्ञान (सामाजिक पहलु), इतिहास (ऐतिहासिक पहलु), गणित (गणितीय पहलु), सौंदर्यबोध (सौंदर्यात्मक पहलु), नैतिक समझ (नैतिक पहलु) और दर्शन (दार्शनिक पहलु)।

iii) हमने जो गतिविधि की है उससे एक अन्य महत्वपूर्ण बात हमारे सामने उजागर होती है। आपने ध्यान दिया होगा कि हमने गतिविधि में कुछ दावों को सत्यापित करने का प्रयास किया। थोड़ा ध्यान से सोचिये कि क्या सभी दावो को सत्यापित करने के तौर—तरीके समान थे? दूसरा, क्या सत्यापित करने के मानदण्ड भी समान थे? इन दोनों प्रश्नों पर चलिए कुछ विस्तार से विचार करते हैं। पहले हम सत्यापित करने के तौर तरीकें पर बात करते हैं। वाक्य—1 (गणितीय दांवा) में हमने शुद्ध तार्किक निगमन विधि से दावे को सत्यापित किया। चरणबद्ध तर्क करते गए और चीजों को मानते गए और अंत में दावे की सत्यता—असत्यता को सिद्ध कर दिया। जहाँ तक सत्यापन के मानदण्डों का सवाल है उसमें हमने परिभाषाओं (जो कि पहले से परिभाषित है और सर्वमान्य है) जैसे समान्तर रेखा, एकांतर कोण, समकोण आदि, स्वयं सिद्धियों (Axioms), स्वीकृत प्रमेय जैसे दो समान्तर रेखाओं को जब एक तीर्यक रेखा काटती है तो इस पर बनने वाले कोण एकांतर कोण होते हैं और एकांतर कोण बराबर होते हैं, आदि मानदण्डों के आधार पर हमने तार्किक निगमन किया और दांवे को सत्यापित किया। इसी प्रकार जब यह दावा एक बार सिद्ध हो गया तो हम इसका प्रयोग अन्य दांवो को सिद्ध करने में कर सकते हैं अतः एक के बाद एक (चरण बद्ध) तर्कों के आधार पर दांवो को सत्यापित करते जाते हैं। यदि संक्षिप्त में कहे तो गणित मेंः

- सत्यापन के मानदण्ड है— स्वयं सिद्धियाँ, परिभाषाए, स्वीकृत प्रमेय
- सत्यापन विधियाँ है— चरण बद्ध तार्किक निगमन

गणित में सत्यापन की सटीकता होती है— अति उच्च परिशुद्धता।

इसी प्रकार यदि हम दूसरे वाक्य (चंद्रमा पृथ्वी के चारों और चक्कर लगाता हैं।) के सत्यापन की प्रक्रिया को देखे तो पायेंगे कि यह पहले वाक्य की सत्यापन प्रक्रिया से भिन्न है। तौर—तरीकों में गणित के समान चरण बद्ध तार्किक निगमन तो शामिल है ही लेकिन इन्द्रियानुभव अवलोकन (चंद्रमा के उदय होने का समय) भी आवश्यक है। अतः आप प्रकृति का अवलोकन करते हैं, आँकड़े एकत्रित करते हैं, उनका विश्लेषण करते हैं, फिर कोई निष्कर्ष निकालते हैं। वहीं सत्यापन के मानदण्ड भी कुछ भिन्न हैं। विज्ञान में गणितीय मानदण्डों को तो आधार बनाया जाता हैं लेकिन इन्द्रियानुभव अवलोकन भी एक महत्वपूर्ण आधार है। इसी प्रकार सामाजिक विज्ञान, इतिहास, नैतिक समझ और सौंदर्यबोध में सत्यापन प्रक्रियाओं में पर्याप्त भिन्नता है। इन भिन्नताओं पर हम बाद में विस्तार से चर्चा करेंगे लेकिन यहाँ इन भिन्नताओं पर चर्चा करने का उद्‌देश्य यह बिन्दु आपके सामने उजागर करना है। अर्थात सत्यापन प्रक्रियाए भिन्न है यह स्पष्ट करना इस चर्चा का उद्‌देश्य था। अतः हम कह सकते हैं कि **सत्यापन प्रक्रियाओं की भिन्नता भी ज्ञान को वर्गीकृत करने का एक महत्वपूर्ण आधार है।**

एक अन्य महत्वपूर्ण बात यहाँ मैं बताना चाहूँगा। आप इस पर खास तौर से ध्यान दीजिए। देखिए हमने ज्ञान के विभिन्न दायरों में सत्यापन प्रक्रियाओं (मानदण्ड एवं विधियाँ) की भिन्नता की बात की है। आप इन पर एक बार फिर से सोचिए। वास्तव में ये केवल सत्यापित करने की प्रक्रिया ही नहीं है बल्कि नए ज्ञान के निर्माण की प्रक्रिया भी है। यह तो आपने पिछले अध्यायों में जाना ही है कि ज्ञान वही है जो सत्यापित किया जा सकें। अतः जब भी हमारे सामने कोई प्रश्न/समस्या/घटना उजागर होती है और हम उसे समझना चाहते है कि आखिर यह है क्या, क्यों होता है, कैसे होता है आदि, तो तब भी तो इन्ही प्रक्रियाओं से होकर गुजरते है। अर्थात हम इन सत्यापन प्रक्रियाओं को ज्ञान निर्माण की प्रक्रियाएं भी कह सकते हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि ज्ञान

के हर दायरे की सत्यापन प्रक्रियाएं या ज्ञान निर्माण की प्रक्रियाओं का स्कूली शिक्षा में एक खास महत्व है क्योंकि यदि हम इन प्रक्रियाओं की विशिष्टताओं या भिन्नताओं को भलीभाति समझते हैं तो बच्चों में इन ज्ञान के अलग–अलग दायरों की समझ कैसे विकसित करें, इस प्रश्न का उत्तर मिलता है। यदि हम ज्ञान निर्माण की इन प्रक्रियाओं को बच्चों को सिखा दें, इन पर उनकी एक बार पकड़ बन जाऐं तो वह उनके लिए सही मायनों में सीखना होगा। वें सीखने में स्वायत्त बनेगें। क्योंकि बच्चें खुद कोई काम करके बेहतर सीखते हैं तो हम उन्हें ये प्रक्रियाऐं सिखाने हेतु उन्हें इनको स्वयं करने का मौका देगें, बार–बार उन्हे इन प्रक्रियाओं से गुजारेंगे। और जब हम ऐसा कर रहे होंगे तो स्वतः ही हमारे हर विषय को पढ़ाने के तौर–तरीके भिन्न हो जाऐंगे। क्योंकि जब हम विज्ञान सिखा रहे होंगे तो बच्चों को अवलोकन करना, आँकड़े एकत्र करना, उनका विश्लेषण करना, निष्कर्ष निकालना जैसी क्षमताओं को विकसित करने में जुटे होंगे। और यदि हम गणित सिखा रहे होंगे तो कुछ मान्यताओं को आधार बनाना, तर्क करना, उसके आधार पर निगमन करना जैसी क्षमताओं को विकसित कर रहे होगें।

यदि पिछली बातों को संक्षिप्त रूप में कहें तो कह सकते हैं कि–

i) अवधारणाओं व सत्यापन प्रक्रियाओं की विशिष्टता के आधार पर ज्ञान को कुछ मोटे–हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है। जिन्हें हम ज्ञान के स्वरूप कह सकते हैं।

ii) ज्ञान को निम्न स्वरूपों में विभाजित किया जा सकता हैः

   a. गणित

   b. विज्ञान

   c. सामाजिक विज्ञान

   d. इतिहास

   e. नैतिक समझ

   f. सौंदर्यबोध

   g. दर्शन

iii) सत्यापन प्रक्रियाओं को ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया भी कहा जा सकता है।

iv) बेहतर शिक्षण वही है जो इन ज्ञान–निर्माण की प्रक्रियाओं से बच्चों को अवगत करायें।

अब तक की बात से यह स्पष्ट होता है कि मानवी ज्ञान एक जैसा नहीं हैं, इसे अवधारणाओं व सत्यापन प्रक्रियाओं या ज्ञान निर्माण की प्रक्रियाओं की विशिष्टताओं के आधार पर विभाजित किया जा सकता, इन्ही विशिष्टताओं के कारण शिक्षण अथवा सीखने–सिखाने के तौर–तरीके भी भिन्न होते हैं और बेहतर शिक्षण वही है जो इन प्रक्रियाओं पर बच्चों की पकड़ बनाने में उनकी मदद करें। आईये अब हम ज्ञान के इन स्वरूपों पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***मानवी ज्ञान का विभाजन किन–किन आधारों को ध्यान में रखकर किया जा सकता है?***
- ***सत्यापन की प्रकियाओं पर बच्चों की पकड़ बनाना क्यो महत्वपूर्ण माना गया है?***
- ***ज्ञान के निर्माण और सत्यापन के तरीकों की समझ बेहतर शिक्षण में किस प्रकार मददगार हो सकती है?***

5.3 ज्ञान के स्वरूप

5.3.1 गणित

5.3.1.1 गणित क्या है?

सभी जानते हैं कि गणित स्कूल कॉलेज में पढ़ाये जाने वाला एक विषय है, जैसे– इतिहास, विज्ञान, भूगोल आदि–आदि। इतिहास में हम मानव के अतीत के बारे में सीखते हैं। विज्ञान में प्रकृति के बारे में सीखते हैं। भूगोल में विभिन्न स्थानों के भौतिक पर्यावरण व मानव जीवन पर उसके प्रभाव के बारे में सीखते हैं। आखिर गणित में हम किस चीज के बारे में सीखते हैं? गणित में वस्तुओं के भौतिक गुणों के बारे में तो नहीं सीखते। उनके इतिहास के बारे में भी नहीं सीखते। मानव जीवन पर उनके प्रभाव के बारे में भी नहीं। तो! गणित फिर किस मर्ज की दवा है?

वास्तव में गणित में हम वस्तुओं के बारे में कुछ नहीं सीखते। इसमें हम संख्याओं के बारे में सीखते हैं। जैसे– 1, 2, 3, ...। आकारों के बारे में सीखते है जैसे– त्रिभुज, चतुर्भुज, आदि। तार्किक सत्यों के बारे में सीखते है जैसे– $a>b$, और $b>c$ तो $a>c$ । पैटर्नस के बारे में सीखते हैं जैसे– $\subset \cup \supset$ .... इस पैटर्न में खाली स्थान में आयेगा। ध्यान दें कि इन सभी उदाहरणों में हम किसी भी भौतिक चीज के बारे में कुछ नहीं सीखते। इन उदाहरणों के आधार पर कह सकते हैं कि गणित में हम अमूर्त तार्किक सम्बन्धों के बारे में सीखते हैं। अमूर्त पैटर्नस सीखते हैं। स्थानिक सम्बन्धों के बारे में सीखते हैं। तो गणित तार्किक और स्थानिक सम्बन्धों और पैटर्नस का अध्ययन है। चीजें तो मूर्त हो सकती है जैसे– मटका, पानी। पर मटका और पानी का सम्बन्ध तो अमूर्त ही होता है। क्योंकि सम्बन्ध तो हमारे मन में एक विचार मात्र होता है। अतः गणित अमूर्त चीजों का अध्ययन करती है। संख्यायें, बीजगणित, रेखा गणित सभी अमूर्त चीजें हैं।

5.3.1.2 गणित की प्रकृति

$\cap$

गणित की प्रकृति की एक बात तो यही है कि गणितीय अवधारणायें अमूर्त होती हैं। वे इस अर्थ में अमूर्त होती हैं कि वास्तविक जगत में गणितीय अवधारणाओं के ऐसे उदाहरण ढूँढना संभव नहीं है जो इन्द्रियानुभवगम्य हों अर्थात् जिनका इन्द्रियों से अनुभव किया जा सके। यदि हम पंखे, कुर्सी या पेड़ की अवधारणा की बात करते हैं तो इन अवधारणाओं से संबंधित चीजें वास्ततिक जगत में आसानी से मिल जाती हैं लेकिन यदि हम किसी गणितीय अवधारणा जैसे 'तीन' को तलाश करें तो इस अवधारणा से संबन्धित चीज हमें वास्वतिक जगत में उपलब्ध नहीं होती। हमें तीन मेज, तीन पेड़, तीन पैन या तीन कोई और चीज मिल जाएगी लेकिन 'तीन' हमें कहीं नहीं मिलेगा। इसी अर्थ में गणितीय अवधारणाएँ पूर्णतया अमूर्त होती है और इन अमूर्त अवधारणाओं को व्यक्त करने के लिए हम प्रतीकों (उदाहरण– संख्या चिन्हों) का प्रयोग करते है।

ये ठीक है कि गणितीय अवधारणायें सीधे अनुभव में नहीं आती, पर उनके बनने में अनुभव की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। हम रोजमर्रा के अनुभव से अमूर्तीकरण करके आदर्श रूप बना लेते हैं। ये आदर्श रूप ही गणित की अवधारणायें होती हैं।

चूँकि गणितीय अवधारणाओं के उदाहरण वास्तविक जगत या प्रकृति में मिल पाना संभव नहीं है, इसलिये गणित हमें सीधे सीधे तो प्रकृति के बारे में कुछ नहीं बताती है लेकिन प्रकृति को समझने तथा उसकी व्याख्या करने में गणित महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है– जैसे यदि हमें किसी जगह पर एक अलमारी रखनी है तो वह अलमारी उस जगह आ पायेगी या नही? यह अनुमान लगाने में हम गणितीय अवधारणाओं का उपयोग करते हैं। इसी प्रकार किसी बर्तन में कितनी चीनी या कोई और चीज आएगी, यह ज्ञान भी बिना गणित के संभव नहीं है। यहाँ गणित अलमारी, जगह या बर्तन या किसी और चीज के किसी

गुण (यह किसकी बनी है, यह क्या काम आती है आदि) के बारे में नहीं बताती, लेकिन उन चीजों की स्थानिक या मात्रात्मक क्षमता की व्याख्या करने में मदद करती है।

कुछ प्रश्न–

- ***ऐसे पॉच गणितीय अवधारणाएॅ जिनका उपयोग आप अपने दैनिक जीवन में करते है? (जैसे वजन–वस्तु को तौलने के लिए)***

दूसरी बात यह कि गणितीय अवधारणाओं में क्रमबद्धता (Hierarchy) होती है अर्थात् गणित की एक अवधारणा उससे पहले की दूसरी अवधारणा पर निर्भर करती है। गणित में हम किसी भी अवधारणा को तब तक नहीं समझ सकते, जब तक उससे जुडी हुई पूर्व की अवधारणाओं को ना समझ लें। जैसे– जोड़ की अवधारणा को समझने के लिए संख्याओं को समझना आवश्यक है। इसी प्रकार बिना एक, दो या तीन या स्थानीय मान को समझे संख्या पद्धति को नहीं समझा जा सकता।

इस प्रकार गणितीय अवधारणाओं की एक क्रमबद्ध श्रेणी बनती चली जाती है, जिनका आपस में संबंध पूर्णतया तार्किक होता है, जैसे '2' गणित की एक अवधारणा है, इसका '1' से संबंध है कि '2>1' तथा '1<2'। यह सम्बन्ध 1 और 2 के अर्थ में ही निहित है।

तीसरी बात, किसी भी गणितीय अवधारणा या वक्तव्य के सत्य या असत्य होने का निर्धारण उसमें निहित तर्क तथा उससे पूर्व सिद्ध हो चुकी अवधारणाओं के आधार पर किया जाता है। इसके लिए प्रकृति में जाकर किसी प्रकार के अवलोकन अथवा प्रयोग की जरुरत नहीं पड़ती। उदाहरण के लिए "24÷6= 45" यदि गणित के इस वक्तव्य के सत्य या असत्य होने की हमें जाँच करनी है तो हमें यह देखना होगा कि भाग की अवधारणा क्या होती है और भाग की अवधारणा समझने के लिए इससे पूर्व की बाकी (शेष) या निकालने (घटाने) की अवधारणा का उपयोग करना होगा। इस दृष्टि से (24÷6) अर्थात् 24 में से 6–6 निकालते जायें तो कितने हिस्से होंगे या कितनी बार निकाल पायेंगे? यह 4 बार होगा अर्थात् उपर्युक्त वक्तव्य असत्य है। इस उदाहरण में हमें वक्तत्य को असत्य सिद्ध करने के लिए कहीं जाकर देखने या प्रयोग करने अथवा किसी से पूछने की जरुरत नहीं पड़ी बल्कि उसमें निहित तर्क तथा पूर्व में सिद्ध हो चुकी अवधारणा के माध्यम से हमने इस वक्तव्य को असत्य सिद्ध किया है।

ऊपर कही गयी बातों को यदि समेकित किया जाए तो गणित की प्रकृति के विषय में निम्न बिन्दु उभर कर आते हैं–

i) गणित की अवधारणायें अमूर्त होती हैं।

ii) ये अमूर्तीकरण ठोस चीजों के अनुभव पर आधारित होता है, पर उसका एक आदर्शीकृत रूप होता है।

iii) गणित में अमूर्त अवधारणाऐं एक दूसरे पर निर्भर होती हैं। अर्थात् गणितीय अवधारणाओं की कमबद्ध श्रंखला होती है।

iv) गणितीय अवधारणाओं में तार्किक संबंध होता है।

v) गणित प्रकृति के बारे में कुछ नहीं बताती वरन् उसे समझने में मदद करती है।

vi) गणितीय वक्तव्यों के सत्य/असत्य होने का निर्धारण उनमें निहित तर्क तथा पूर्व में सिद्ध हो चुकी अवधारणाओं के आधार पर होता है।

5.3.1.3 प्राथमिक स्तर पर गणित शिक्षण के उद्देश्यः

लोकतान्त्रिक समाज में एक व्यक्ति को जीवन जीने के लिए कुछ निर्णय लेने पड़ते हैं तथा उन निर्णयों के दूसरे व्यक्तियों पर पडने वाले प्रभाव को देखना व समझना पड़ता है। इसके अतिरिक्त आज मनुष्य के सामने अनेक जटिल समस्याएँ भी आती रहती हैं। इन सभी कार्यों को बेहतर तरीके से करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति में चिन्तन करने, विश्लेषण करने तथा निष्कर्ष निकाल सकने की क्षमता का विकास हो। यह कार्य गणित के द्वारा बेहतर तरीके से किया जा सकता है। गणित अमूर्त चिन्तन करने, विश्लेषण करने, पैटर्न देखकर तार्किक निष्कर्ष निकालने तथा किसी भी निर्णय के लिये तर्क की माँग करने की क्षमता का विकास बेहतर तरीके से कर सकता है।

प्राथमिक स्तर पर गणित शिक्षण के द्वारा इन क्षमताओं का विकास बहुत ऊँचे स्तर पर किया जाना संभव नहीं है, इसीलिये यह आवश्यक है कि प्राथमिक स्तर पर गणित पर काम करते हुए बच्चों को सरल तरीके से इन क्षमताओं पर काम करने के जीवन्त अनुभव के अवसर उपलब्ध कराये जायें तथा उनमें यह कौशल विकसित करने का प्रयास किया जाए कि वे आगे चलकर स्वयं इन क्षमताओं का विकास कर सकें।

इस प्रकार प्राथमिक स्तर पर गणित शिक्षण के निम्न उद्देश्य हो सकते हैं–

- गणना करने की योग्यता का विकास।
- दैनिक जीवन की सरल समस्याओं को गणितीय रुप में निरुपित कर उन्हे हल कर सकना।
- पैटर्न, क्रम एवं आकार बोध की क्षमता का विकास।
- विभिन्न प्रकार के मापों (measures) की समझ तथा दैनिक जीवन में उनका उपयोग कर पाना।
- तार्किक एवं विवेकशील चिन्तन का विकास।
- अमूर्त चिन्तन की क्षमता का विकास एवं समस्या समाधान की सामान्य क्षमता का विकास।
- किसी भी बात को मानने से पहले उसके पीछे निहित तर्क को समझने का आग्रह।

गणित शिक्षण में इन सब चीजों का ध्यान रखें तो हम बेहतर शिक्षण कर पायेंगे।

कुछ प्रश्न–

- ***एक शिक्षक के लिए गणित की प्रकृति का ज्ञान होना क्या आवश्यक है?***

5.3.2 विज्ञान

हमने ऊपर यह समझने की कोशिश की गणित आकारपरक पैटर्न्स व संबंधों को शुद्ध तर्क के आधार पर देखने–समझने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में एक ऐसे समर्थ अवधारणात्मक तंत्र का विकास होता है जो जगत के अन्य पहलुओं को समझने में सहायक सिद्ध होता है। इसी प्रकार विज्ञान जगत का तथ्यात्मक वर्णन करने का प्रयत्न करता है। घटनाओं की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है। वैज्ञानिक व्याख्याएं कार्य–कारण संबंधों के सैद्धांतिक निरूपण के आधार पर अधिक होती है। विज्ञान की अपनी खास बात यह है कि वह सिद्धांतों आदि को अवलोकनों पर आधारित रखता है।

विज्ञान की भी अपनी विशिष्ट अवधारणाएं होती हैं। हम कह सकते हैं कि ऊर्जा, ध्वनि, भ्रमण परिपथ, उत्प्रेरण आदि उनमें शामिल हैं। यहां भी इन्हीं शब्दों के अन्य उपयोग हो सकते हैं। जैसे ध्वनि का सामान्य भाषा में आवाज के लिए उपयोग। पर विज्ञान जिस अर्थ में ध्वनि का उपयोग करता है उसमें सुनाई देना आवश्यक नहीं है। ये अवधारणाएं वस्तुओं की संरचना, उनके गुणों आदि से संबंधित होती हैं। या फिर उनकी संरचना, गुणों आदि में संबंधित अवधारणाओं से और सामान्यीकरण व अमूर्तिकरण की प्रक्रिया में बनती है।

विज्ञान की सत्यापन विधियां भी अपनी विशिष्ट होती हैं। विज्ञान में सत्यापन की कसौटी इंद्रियानुभव (अवलोकन) होता है। बहुत संक्षेप में कह सकते हैं कि विज्ञान में पहला चरण जिज्ञासा होती है जिसमें जगत के किन्हीं पहलुओं के बारे में 'कैसे होता है?', 'किन कारणों से होता है?', 'कैसा है?' आदि सवाल उठते हैं। इन सवालों के उत्तर के रूप में परिकल्पनाएं बनाई जाती हैं। फिर किसी परिकल्पना को मानने के परिणामों का तर्क के आधार पर अनुमान लगाया जाता है। फिर प्रयोगों द्वारा यह देखा जाता है कि वे परिणाम सचमुच निकलते है या नहीं? यदि अनुमानित परिणाम नहीं निकलते हैं, अवलोकनों की विश्वसनीयता के प्रति हम आश्वस्त हैं तथा तर्क के आधार पर हमारी परिकल्पना के ये आवश्यक परिणाम हैं, तो परिकल्पना में कहीं गलती है। अतः दूसरी परिकल्पना बनानी पड़ती है या पुरानी में आवश्यक सुधार करने पड़ते हैं। और यही प्रक्रिया नई परिकल्पना के परिणामों का अनुमान लगाने में होती है। पर सत्यासत्यता का निर्धारण अंततः इन्द्रियानुभव के आधार पर ही होता है।

कुछ प्रश्नः

- ***विज्ञान के ज्ञान की सत्यता की जांच के लिए किन–किन चरण से गुजरना होता है?***
- ***निम्नलिखित परिस्थितियों में आप किन बातों को वैज्ञानिक और किन को अवैज्ञानिक मानेंगे***

  एक व्यक्ति शहर के एक अस्पताल में जाता है और देखता है कि बहुत सारे लोग डाक्टर के लिए इंतजार कर रहे है। वह व्यक्ति आपके पास आता है और कहता है कि शहर में गंदे पानी के कारण अधिक लोग बीमार हो रहे है तब आप–

- ***उसके इस कथन पर विश्वास कर लेंगें।***
- ***आप उस व्यक्ति से ऐसे कहने का कारण जानने का प्रयास करेंगे जिसके आधार पर निष्कर्ष निकालेगें।***
- ***आप अन्य व्यक्तियों से इस कथन पर उनके विचार जानेगें और बहुमत के आधार पर कथन की सत्यता तय करेंगें।***
- ***स्वयं पानी फिल्टर प्लांट जा कर वहां से जानकारी एकत्रित करेगे और फिर कथन की सत्यता की जॉच करेगे।***

यहां हमें चारों बातों को विशेष रूप से ध्यान रखने की आवश्यकता है। एक, विज्ञान में यह आवश्यक नही है कि परिकल्पना का प्रतिपादक, अवलोकन करने वाला तथा उसके आधार पर तार्किक निष्कर्ष निकाने वाला एक ही व्यक्ति हो। यह भी आवश्यक नहीं हैं कि वे एक स्थान पर एक ही समय में काम कर रहे हों। ये अलग–अलग व्यक्ति हो सकते हैं जो विश्व में अलग–अलग स्थानों पर कार्यरत हो। दूसरी बात, किसी परिकल्पना के वैज्ञानिक होने के लिए आवश्यक है कि तर्क के आधार पर उसके इन्द्रियानुभव–गम्य परिणाम आवश्यक रूप से निकलते हों। जिसके कोई तार्किक परिणाम हो ही नहीं (वैसे वह किस काम की होगी?) या जो इन्द्रियानुभव–गम्य न हों, वह परिकल्पना वैज्ञानिक परिकल्पना नहीं होती। उसकी सत्यता–असत्यता की जांच नहीं हो सकती।

उदाहरण के लिए 'यज्ञ से मानव कल्याण होता है' वैज्ञानिक परिकल्पना नहीं है। मान लीजिए यज्ञ का अर्थ है किसी खास विधि–विधान के साथ किसी खाद्य सामग्री का अग्नि हवन। (हालांकि यज्ञ के समर्थक इस शब्द के और भी अर्थ लेते हैं। पर ये अर्थ उपरोक्त वक्तव्य को एक पुनरुक्ति मात्र बना देंगे।) वे विधि–विधान या तो ऐसे हों जो मानव के लिए असंभव हों या उनमें ऐसी शर्तें हों जिनका पूरा होना या न होना अवलोकन का विषय न हो। जैसे चित्त की शुद्धता, तो किसी प्रकार के परीक्षण द्वारा इसे सत्य या असत्य सिद्ध नहीं किया जा सकेगा। तीसरी बात यह है कि परिकल्पना के तार्किक परिणामों के अनुभव सिद्ध हो जाने से परिकल्पना असत्य सिद्ध हो जाती है, पर अनुभव सिद्ध होने से परिकल्पना अन्तिम रूप से सत्य सिद्ध नहीं होती। वे ही परिणाम किसी या किन्हीं और परिकल्पनाओं के भी हो सकते हैं तथा नए तथ्यों के ज्ञात होने पर परिकल्पना को बदलना भी पड़ सकता है। अतः विज्ञान के सिद्धांत व व्याख्याएं सदा संभाव्य सिद्धांत व व्याख्याएं होती हैं। वे हमेशा ही कामचलाऊ रहती हैं। चौथी बात, विज्ञान किसी परिकल्पना को गलत सिद्ध होने पर या यों कहें कुछ तथ्यों की व्याख्या में असमर्थ होते ही त्याग नहीं देता। जब तक कोई बेहतर परिकल्पना उपलब्ध न हो, जो पुरानी परिकल्पना की तुलना में अधिक स्पष्ट व्याख्या करती हो, पुरानी से ही काम चलाया जाता है।

इस विवेचना से सहमत हों तो हम कह सकते हैं कि वैज्ञानिक समझ के विकास का मतलब है–

i) अपने अनुभवों व आसपास होने वाली घटनाओं के प्रति सजग रहना व उनकी व्याख्या के प्रति आग्रही रहना।

ii) इन्द्रियानुभवों को अवधारणाओं में बांधना व अवलोकनों को व्यवस्थित, वर्गीकृत आदि कर पाना।

iii) अवलोकनों की व्याख्या के लिए परिकल्पनाएं बना पाना।

iv) परिकल्पनाओं के आधार पर सुनिश्चत तार्किक निष्कर्ष निकाल पाना।

v) इन निष्कर्षों की जांच के लिए नियंत्रित प्रयोगों की कल्पना कर पाना।

vi) धैर्य, लगन एवं दक्षता से प्रयोगों को कर पाना व आवश्यक अवलोकन कर पाना।

vii) अपनी मान्यताओं व परिकल्पनाओं के असत्य सिद्ध होने पर निराश या दुराग्रही न होना बल्कि नये विचारों के लिए दिमाग को खुला रखना।

viii) नैतिकता के सवाल

ये क्षमताएं/प्रवृतियां समझ के सभी स्वरूपों में कमोबेश आधी–अधूरी पाई जा सकती हैं। पर विज्ञान का ये आधार हैं तथा विज्ञान में ही इनका अधिकतम विकास होता है।

कुछ प्रश्न–

- ***गणित और विज्ञान की प्रकृति में आप किस प्रकार का अन्तर देखते है?***

5.3.3 सामाजिक विज्ञान

सामाजिक विज्ञान विषय मूलतः मानवीय जगत का वर्णन एवं उसकी व्याख्या करने की कोशिश करता है। यह मानव का स्वयं का अपना अध्ययन करने वाला क्षेत्र है। यह ठीक है कि सामाजिक विज्ञान में प्रयुक्त विधियां प्राकृतिक विज्ञान की विधियों से बहुत मेल खाती हैं। पर, इन दोनों में बहुत फर्क भी है।

प्राकृतिक विज्ञान का सरोकार प्रकृति के वर्णन एवं व्याख्या तक ही रहता है। प्राकृतिक नियमों (जैसे सूरज का निकलना, फूल का खिलना आदि) को बदलने की बात विज्ञान न कर सकता है और न ही करता है। पर

सामाजिक विज्ञान में मानवीय परिस्थितियों के अध्ययन के पश्चात उनमें बेहतरी का सवाल आमतौर पर उठता है। दूसरी बात विज्ञान में स्पष्टता, सुनिश्चिता एवं तार्किक संगति के मापदंड जितने कड़े होते हैं उतने कड़े मापदंड सामाजिक विज्ञान में संभव नहीं है। और सामाजिक विज्ञान में इसकी आवश्यकता भी नहीं है।

एक और बड़ा फर्क यह है कि सामाजिक विज्ञान में अध्ययन का विषय सचेत एवं समझवान मानव है। यह केवल भौतिक कार्यकारण संबंधों से संचालित नहीं होता जैसे नदी में पानी बहता है या फूल खिलते हैं। बल्कि यह (मानव) चुनाव करता है। इसके पास एक से अधिक विकल्प होते हैं तथा उन विकल्पों में से विचारों को प्रभावित करने वाले मुख्य कारक भौतिक कारण न हो कर तार्किक कारण होते है। सामाजिक विज्ञान में बिना उन तार्किक कारणों को समझे कोई वर्णन या व्याख्या संभव नहीं हैं।

फिर भी सामाजिक विज्ञान की परिकल्पनाएं विज्ञान की तरह जगत के बारे में होती है। उनकी जांच की अंतिम कसौटी भी सामाजिक विज्ञान से जुटाए गए अवलोक्य तथ्य ही होते है। अतः सामाजिक विज्ञान संबंधी समझ के विकास का मतलब होगाः

i) अपने सामाजिक परिवेश के प्रति सजग रहना एवं उसको समझने का प्रयत्न करना।

ii) सामाजिक परिवेश का वर्णन एवं उसकी व्याख्या करने के लिए आवश्यक अवधारणायें बना पाना।

iii) दूसरों को बौद्धिक एवं भावनात्मक स्तर पर समझना एवं उन्हें सम्मान देना।

iv) सामाजिक व्यवहारों, मान्यताओं एवं नैतिकता को समझना एवं उसके आधारों की पडताल करना।

v) यह समझना कि सामाजिक मान्यताएं, रीति –रिवाज, धर्म, पंथ आदि मानव निर्मित हैं। ये विभिन्न समूहों के ऐतिहासिक चुनावों का नतीजा है।

vi) नैतिकता, सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यताओं में लोगों की स्वतंत्रता को स्वीकारना सीखना।

vii) अपने लिये सार्थक जीवन का चुनाव करना एवं दूसरों के इस अधिकार को स्वीकार करना सीखना।

viii) मानव जीवन की परस्पर निर्भरता को समझना।

कुछ प्रश्न–

- आप विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के लिए बनाए गए परिकल्पताओं में किस प्रकार की समानातएँ व अन्तर देखते है?

5.3.4 इतिहास

इतिहास मानवीय कर्मो एवं क्रियाकलापों का लेखा–जोखा होता है। यह मानव के कर्मो व क्रियाकलापों के निर्देशन एवं चुनाव पर उसकी परिस्थितियों व प्रभावों का अध्ययन होता है। यह लेखा–जोखा उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर अतीत की एक काल्पनिक पुनर्रचना होती है। इसमें साक्ष्यों की व्याख्या, मानवीय अभिप्रेरणा व प्रयोजनों की समझ आदि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इतिहास में सामान्य अवधारणाओं से भी कुछ काम चलता रहता है। फिर भी कुछ अवधारणाओं (जैसे मध्यकाल, भक्ति आन्दोलन आदि) को विशिष्ट ऐतिहासिक अवधारणाओं के रूप में देखा जा सकता है।

इतिहास की सत्यापन विधियां एवं उनके आधार इतने स्पष्ट नहीं होते हैं जितने गणित या विज्ञान में होते हैं। इतिहास के तथ्य इतने असंदिग्ध नहीं होते जितने विज्ञान के तथ्य होते हैं। यहां यह कहा जा सकता है कि इतिहास में क्या तथ्य सही है और क्या नहीं, यह सीधे अवलोकन का विषय न हो कर पहले स्थापित करना पड़ता है। मानवीय प्रयोजनों व अभिप्रेरणा के बारे में सदा कुछ अस्पष्टता बनी रहती है। साथ ही उनकी समझ पर इतिहास की अपनी दृष्टि का रंग चढे बिना नहीं रहता। इतिहास में खोज, व्याख्या और सृजन एक साथ होता है। इन सब कारणों से इतिहास में सत्यासत्य के निर्णय के तरीके बहुत जटिल तथा कुछ हद तक अस्पष्ट रहते है, फिर भी सब कुछ अस्पष्ट व मनमाना नहीं होता है। यदि सब चीजों को विधिबद्ध करने, स्पष्टता, तार्किकता तथा ज्ञाता के मन से स्वतंत्र होने पर उतना जोर न हो जितना गणित व विज्ञान में होता है तो इसे आराम से समझा जा सकता है कि सत्यासत्य निर्धारण के तरीके कैसे हैं तथा सब कुछ मनमाना क्यों नहीं है? तार्किकता, विधिबद्धता ,समष्टिनिष्ठता आदि समझ के विभिन्न स्वरूपों में विभिन्न मापदंड होते है।

इतिहास में सत्यापन विधि न तो पूर्णतया तर्क पर निर्भर होती है न ही तर्क के प्रयोग के साझे आधारों पर। बल्कि तथ्यों की खोज, स्थापना, भूतकाल के साक्ष्य आधारित वर्णन की रचना आदि सब कुछ एक साथ चलता हैं। ये सब एक दूसरे को संतुलित तथा एक दूसरे की जांच करते रहते हैं। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त साक्ष्य एक दूसरे की व्याख्या, चुनाव व महत्त्व निर्धारण में मदद करते हैं। विभिन्न इतिहासकार एक दूसरे की भूल–सुधार का प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रकार इतिहास की वस्तुनिष्ठता वह जितनी और जैसी भी है –संबंद्ध समुदाय के बीच चलने वाली बहस और संवाद पर आधारित होती है। मौटेतौर पर हम कह सकते है कि ऐतिहासिक समझ के विकास का अर्थ है –

i) मानव के चुनावों, क्रियाकलापों व कर्मो के कालक्रम और पैटर्न देखना।

ii) इन पर परिस्थितियों के प्रभाव व उनके पीछे मानवीय प्रयोजनों को समझना।

iii) उपयुक्त साक्ष्यों का तुलनात्मक अध्ययन कर पाना व उनसे अतीत की साक्ष्य आधारित पुनर्रचना कर पाना।

iv) अपनी व्याख्याओं की अन्य लोगों की व्याख्याओं के साथ तुलना कर पाना, जांच कर पाना आदि।

v) यह समझ पाना कि मानवीय प्रयोजन व मूल्य किसी भी व्यक्ति की परिचित मानवता से कहीं अधिक व्यापक होते हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***विज्ञान और इतिहास के अध्ययन की विषयवस्तु में क्या अन्तर है?***

5.3.5 सौंदर्यबोध

सौंदर्यबाध में सौंदर्यानुभूति, सौंदर्यशास्त्र एवं कला तीनों को शामिल किया गया है। यहां सौंदर्यानुभूति से आशय सुन्दर–असुन्दर से प्रभावित होना है। किसी वस्तु से हम दर्जनों कारणों से प्रभावित हो सकते हैं। उसके द्वारा मिलने वाले शारीरिक सुख से, जैसे जाड़े में धूप, उसकी पौष्टीकता से जैसे गाजर का हलवा, उसके नैतिक पक्ष से जैसे राजनेता की झूठी बयानबाजी आदि–आदि। सौंदर्यनुभूति इन सबसे अलग व निरपेक्ष रूप से प्रभावित होना है, जैसे किसी सुन्दर प्राकृतिक दृश्य को देखकर या कोयल की कूक सुनकर। सौंदर्यशास्त्र का आशय उस शास्त्र से है, जो सुन्दरता–असुन्दरता की अवधारणाओं को स्पष्ट करने का प्रयत्न करता है तथा क्या सुन्दर है क्यों सुन्दर माना जाता ह?, की विवेचना करता है।

कलाकृति मानव द्वारा निर्मित ऐसी वस्तु या परिस्थिति है जो हमें सौंदर्यानुभूति प्रदान करती है। मानव की वह क्षमता जो कलाकृति के सृजन की सामर्थ्य देती है, उसे कला कह सकते हैं। मानवीय समझ का वह स्वरूप जो इन सब को समाहित करता है, उसी को यहां सौंदर्यबोध कहा गया है।

सौंदर्यबोध मानवीय समझ का एक विशिष्ट स्वरूप है। इसकी विशिष्ट अवधारणाएं होती हैं। जैसे लालित्य, सौंदर्य, राग, रस, काव्य, छंद आदि आदि। ये अवधारणाएं गणित की अवधारणाओं की तरह अमूर्त तो हैं पर उनकी तरह सुस्पष्ट तरीके से परिभाषित नहीं की जा सकती। जैसे गणित में रेखा का क्या अर्थ है यह सब गणितज्ञों को एकदम स्पष्ट होता है। पर लालित्य के बारे में सभी कलाकार या सौंदर्यशास्त्री कभी एक मत नहीं होंगे। इनमें गणित की अवधारणाओं की तरह अंतर्निहित तार्किक संबंध भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं होते। इसी तरह सौंदर्याशस्त्र की अवधारणाएं समान्य उपयोग की अवधारणाएं लग सकती हैं पर कला के क्षेत्र में उनके भिन्न अर्थ होते हैं। जैसे कला में रस नींबू या संतरे के रस से बहुत भिन्न है।

कला के क्षेत्र में सवाल अच्छे–बुरे का, परिष्कृत–अपरिष्कृत का, सुन्दर–असुन्दर का उठता है। सत्य–असत्य का नहीं। कोई पेंटिंग, नृत्य या कविता अच्छी–बुरी हो सकती है, सुन्दर–असुन्दर हो सकती है। पर इन्हें सत्य–असत्य कहने का कोई अर्थ नहीं होता। वह परिपक्व–अपरिपक्व, परिष्कृत–अपरिष्कृत आदि हो सकती है।

यह तय करना कि क्या सुन्दर है और क्या असुन्दर या कौन सी कलाकृति अच्छी है और कौन सी बुरी, गणित, गणित के सिद्धांतों को सिद्ध करने जैसा नहीं है। इसके लिए किसी भी प्रकार तार्किक उपपत्ति देना अंसभव है। इसी प्रकार यह विज्ञान की तरह प्रयोग अन्वेषण या अवलोकन से भी तय नहीं किया जा सकता। वास्तव में यहां सिद्ध करने जैसा कुछ होता ही नहीं है। बात अच्छी लगने की या ना लगने की है। फिर भी कला में अच्छे–बुरे के मानदण्ड होते हैं। पर ये मानदण्ड प्राकृतिक या सामाजिक अध्ययन के आधार पर निरूपित करना भी संभव नहीं है।

कुड प्रश्नः

- ***गणित व सौंदर्यबोध दोनों की अवधारणा अमूर्त होते हुए भी किन–किन बातो में अलग है?***

सुन्दर–असुन्दर तथा कला के अच्छे–बुरे के मापदण्ड बनाना मुश्किल होने के बावजूद ऐसे निर्णय होते हैं जो कलाकारों, कला समीक्षकों एवं सौंदर्यशास्त्र के ज्ञाताओं की दुनिया में भी होते हैं तथा सामान्यजन के रोजमर्रा के जीवन में भी। कम से कम पहले वर्ग में तो ये पूर्णतया मनमाने भी नहीं होते। कलाविज्ञ अपने अवधारणात्मक ढांचे बनाते हैं। और इन ढांचों में इन मापदण्डों का विकास करने का प्रयत्न करते हैं। सौंदर्यबोध के विकास अर्थ है, उन अवधारणात्मक ढांचों को समझ पाना एवं अपने लिए कोई ढांचे बना पाना। सामान्यजन के रोजमर्रा के जीवन में उसके निर्णय पर सौंदर्यबोध का निर्णायक प्रभाव पड़ता है। फैशन की सारी दुनिया और विज्ञापन का पूरा बाजार इसी पर निर्भर करता है। अतः कमोबेश स्पष्ट सौंदर्यबोध के बिना व्यक्ति की कल्पनाशक्ति का अपहरण करके उसके आर्थिक शोषण की संभावनाएं बहुत बढ़ जाती हैं। साथ ही अपने आसपास की परिस्थितियों को अधिक सुरूचिपूर्ण बनाने में तो सौंदर्यबोध आवश्यक है ही।

सौंदर्याबोध के विकास के प्रयत्नों में हमें शायद निम्न चीजों पर ध्यान देना होगा–

i) सौंदर्य–संवेदन।

ii) यह समझना कि सौंदर्य एवं कला के मापदण्ड भिन्न–भिन्न समाजों में भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। फिर भी मापदण्ड बन भी सकते हैं तथा उनको संप्रेषित भी किया जा सकता है।

iii) हम जिन चीजों को सुन्दर समझते हैं उनके बारे में विचार करना कि वे हमें क्यों सुन्दर लगती हैं।

iv) सौंदर्य एवं सत्य तथा सौंदर्य एवं नैतिक के आपसी संबंधों को समझना।

5.3.6 नैतिक समझ

विज्ञान, गणित एवं इतिहास संबंधी समझ हमारी परिस्थिति को समझने में सहायक होती है। परिस्थिति को समझने से अर्थ है उसका वर्णन (वह कैसी है?) तथा उसकी व्याख्या (जैसी है, वैसी क्यों है?) कर पाना। साथ ही यह समझ हमारे कर्मों के परिणाम का पूर्वनुमान करने में भी सहायक होती है। कर्म करने की पटुता (निपुणता / कुशलता) एवं यह समझ मिलकर हमें प्रभावी कर्म कर पाने की सामर्थ्य प्रदान करती हैं। प्रभावी कर्म से अर्थ है इच्छित परिणाम देने वाला कर्म।

कर्म की इस सामर्थ्य का उपयोग हम जीवित रहने के लिए तथा जीवन में संतोषप्रद परिस्थितियां बनाने के लिए करते हैं। किसी परिस्थिति के संतोषप्रद या अंतोषप्रद होने के कारण एक तो सीधे शारीरिक सुख एवं मूल आवश्यकताओं की पूर्ति से संबंधित होते हैं। दूसरे, हमारे सौंदर्यबोध से संबंधित होते हैं। पर जो परिस्थिति हमारे लिए सुखमय है, किसी दूसरे के लिए कष्टकर हो सकती है। जो परिस्थिति हमारे लिए सुन्दर परिस्थिति है, वही या तो दूसरो की परिस्थिति को असुन्दर बना सकती है या फिर दूसरों को असुन्दर लग सकती है। अतः हमारे कर्म की सामर्थ्य के नियंत्रण एव निर्देशन कुछ स्वीकृत मूल्यों के द्वारा होता है। इन मूल्यों को समझना, उनके आपसी संबंधों को समझना, हमारे कर्मों पर उनको स्वीकार करने के प्रभावों को समझना एवं उनको स्वीकार या अस्वीकार करना, यह नैतिक समझ का क्षेत्र होता है। नैतिक समझ के विकास से संतोषप्रद स्थिति की परिभाषा ही बदल जाती है। किसी भी प्रकार के नैतिक बोध से रहित मनुष्य–ऐसा प्राणी वास्तव में होता नहीं है–मात्र स्वयं को सुखमय एवं सुन्दर लगने वाली परिस्थिति को पूर्णतया संतोषजनक समझ सकता है। चाहे इस को बनाए रखने के लिए दूसरों को कितना भी कष्ट देना पड़े। उसके लिए एक–मात्र मूल्य आत्मसुख हो सकता है। पर नैतिक बोध होने पर इस परिस्थिति में उसे संतोष नहीं मिलेगा। अतः यहां संतोषप्रद परिस्थिति की परिभाषा में एक और आयाम जुड़ जाता है, उसमें गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है। अब शारीरिक रूप से कष्टकर परिस्थिति भी नैतिक कारणों से संतोषप्रद लग सकती है। नैतिक बोध के विकास से कर्म के सामर्थ्य को दिशा देने वाले तीन कारक हो जाते हैः

i) शारीरिक–सुख

ii) सौंदर्यबोध एवं

iii) नैतिक बोध

हमारे चुनाव–चीजों और कर्मों के संदर्भ में– इन तीनों ही कारकों से प्रभावित होते हैं। अतः इन तीनों में ही स्वीकृत सिद्धांतों को मूल्य कहा जा सकता है। इसके साथ ही कर्म की सामर्थ्य भी अपने आप में मूल्य है। वैसे तो जिन मूल्यों को हम चरितार्थ करने योग्य मानते हैं, उन सभी की विवेचना करना नीतिशास्त्र का काम है फिर भी इसका केन्द्रीय भाग वे मूल्य हैं जो दूसरों के साथ हमारे व्यवहार से संबंधित है। यदि पूरी सृष्टि में केवल एक ही प्राणी होता या फिर हमारे कर्म एक दूसरे को प्रभावित करने में असमर्थ होते तो नैतिकता के प्रश्न उठ ही नहीं सकते थे। यदि कर्मफल के सिद्धांत का अर्थ यह है कि एक प्राणी को केवल और केवल उसी के कर्मों का फल मिलता है तो कर्मफल के सिद्धांत से नियंत्रित होने वाले विश्व में नैतिकता के प्रश्न नहीं उठ सकते। इसी प्रकार यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान है एवं उसकी इच्छा के बिना पत्ता भी नही हिल सकता है तो विश्व में नैतिकता के प्रश्न नहीं उठ सकते। पर यह विषयांतर हो रहा है। यहां मैं केवल यही कह रहा हूं कि नैतिकता के प्रश्न अपनी पूरी तेजस्विता के साथ वहीं उठते हैं जहां एक स्वतंत्रकर्ता के कर्मों का प्रभाव दूसरे व्यक्तियों पर पड़ता हो।

दूसरे लोगों से हम विभिन्न प्रकार के संबंधों से जुड़े होते हैं। माता–पुत्री, पति–पत्नि, नौकर–मालिक, अफसर–मातहत, आदि–आदि। इन संबंधों के साथ जुड़े हमारे कर्त्तव्य, दायित्व और अधिकार होते हैं। समाज में व्यवहार की कसौटी के लिए न्याय–अन्याय, अच्छे–बुरे संबंधीं मानदण्ड, यह नैतिक समझ का क्षेत्र हैं। अच्छा, बुरा, कर्त्तव्य, अधिकार आदि नीतिशास्त्र की विशिष्ट अवधारणाएं हैं।

नीतिशास्त्र में मुख्य प्रश्न सत्य–असत्य के नहीं होकर अच्छे–बुरे के, उचित–अनुचित के, स्वीकार्य–अस्वीकार्य के होते हैं। 'रघु बकरियां चुराता है।' इस वक्तव्य की जांच का सवाल कि यह बात सही है या गलत; नीतिशास्त्र का विषय नहीं है। रघु अच्छा काम कर रहा है या बुरा यह सवाल नीतिशास्त्र का है। पर चोरी करना अच्छी बात है या बुरी यह तय करने में विज्ञान का तरीका काम में नहीं ले सकते। कितने भी परीक्षण, प्रयोग, अवलोकन कर लें, चोरी करना अच्छा है या बुरा इस बारे में कुछ भी पता नहीं चलेगा। अवलोकनों से यह तो पता चलता है कि जिस व्यक्ति की चोरी होती है, उसे दुख होता है, परेशानी होती है, क्रोध आता है, आदि। यदि किसी को दुख देना निन्दनीय बात मानी जाती है तो चोरी करना निन्दनीय काम सिद्ध हो जाता है। पर दुख देना निन्दनीय काम माना जाए या स्तुत्य (सराहनिय)– यह सवाल फिर विज्ञान के क्षेत्र से निकल गया है। किसी को दुख देना निन्दनीय क्यों माना जाए? इस सवाल का उत्तर देने के लिए फिर हमें किसी मूल्य का हवाला देना पड़ेगा और श्रृंखला तब तक चलती जाएगी जब तक कि अन्त में हम किसी ऐसे मूल्य पर न पहुंच जाए जिनके स्वीकार्य होने का सवाल न उठाना चाहें या न उठ सके। यहां मैं यही कहना चाहता हूं कि किसी कर्म के अच्छा बुरा होने को वैज्ञानिक तरीके से सिद्ध नहीं किया जा सकता। स्पष्ट ही यह गणितीय तरीके से भी सिद्ध नहीं हो सकता। हालांकि तर्क का सशक्त उपयोग यहां होता है। पर एक तो मूल्यों का आपसी संबंध शुद्ध तार्किक नहीं होता तथा दूसरे मूल्य गणितीय अवधारणाओं की तरह नहीं होते। फिर भी कर्मों को अच्छा–बुरा, उचित–अनुचित तो कहा जाता है, माना जाता है। अतः यहां इन निर्णयों की कोई भिन्न प्रणाली होती है।

पर नीतिशास्त्र केवल कर्मों को अच्छा–बुरा कहने से ही संबंध नहीं रखता। स्वयं अच्छे–बुरे आदि को परिभाषित करना– या परिभाषित करने का प्रयत्न करना– भी नीतिशास्त्र का ही काम है। यहां भी गणित, विज्ञान या इतिहास में प्रयुक्त सत्य–असत्य निर्धारण की प्रणालियां काम में नहीं आ सकतीं। अतः यह कहा जा सकता है कि नीतिशास्त्र की अपनी निर्णय की प्रणाली होती है जिसमें तर्क, अवधारणाओं का विश्लेषण, संश्लेषण आदि प्रक्रियाएं होती है।

कोई व्यक्ति किन मूल्यों को स्वीकार करता है इस पर उस व्यक्ति की संवेदना का गहरा प्रभाव पड़ता है। कहा जा सकता है कि नैतिक मूल्यों का सवाल उठता ही संवेदना के कारण है। संवेदना सीधी इन्द्रिय स्तर पर भी हो सकती है। हम सौंदर्य के प्रति भी संवेदनशील या असंवेदनशील हो सकते हैं। यहां संवेदना से तात्पर्य इन दोनों ही प्रकार की संवेदना से नहीं है। नैतिकता का आधार बनाने वाली संवेदना से तात्पर्य दूसरे की मानसिक–शारीरिक सुख–दुख की स्थिति के हमारे मानस पर पड़ने वाले सीधे प्रभाव से है। दूसरे की दाढ के नीचे कंकर आने की आवाज सुनकर हमें होने वाली अनुभूति या अपनों को दुखी देख कर मन पर स्वतः छाने वाली उदासी इसके उदाहरण हैं।

संवेदना का आधार मिलने पर कुछ मूल्यों को स्वीकार किया जाना तो संभव है पर कर्म को दिशा देने के लिए इतने से काम नहीं चलता। मूल्यों की स्पष्ट अवधारणात्मक समझ की आवश्यकता होती है। उनको स्वीकार करने के तार्किक परिणाम को समझने की आवश्यकता होती है। हमारे कर्मों के परिणामों में पूर्वानुमान की आवश्यकता होती है। साथ ही स्वीकृत मूल्यों में टकराहट भी होती है। उदाहरण के लिए अहिंसा एक स्वीकृत मूल्य हो सकता है। साथ ही माता या पिता का अपने बच्चों की जीवन रक्षा भी स्वीकृत मूल्य हो सकता है। अकाल के समय भूख से दम तोड़ते बच्चे की जीवन रक्षा अधिक महत्वपूर्ण होगी या अहिंसा के तहत मुर्गी को न मारना? मूल्यों की टकराहट के लिए हमें अकाल जैसी अति वाली स्थितियों की कल्पना करना आवश्यक नहीं है। रोजमर्रा के जीवन में हम दर्जनों बार पशोपेश में पड़ते हैं।

अतः नैतिक समझ के विकास का अर्थ होगा—

i) संवेदना (परानुभूति के प्रति संवेदना) का विकास।

ii) समझ के अन्य स्वरूपों का विकास जिससे हम अपने कर्मों के परिणामों का पूर्वानुमान लगा सकें।

iii) मूल्यों की अवधारणात्मक समझ एवं उनके आपसी संबंधों को समझना।

iv) किसी मूल्य को स्वीकार करने के तार्किक परिणामों की समझ।

v) मूल्यों की सापेक्षता—देश काल के संदर्भ में समझना।

vi) मूल्यों के आपसी सापेक्ष महत्त्व को समझना एवं किस स्थिति में कौन—सा मूल्य निर्णायक होना चाहिए, संबंधी निर्णय ले पाना।

यह कोई समग्र सूची नहीं है। इसको बढ़ाया जा सकता है। पर बढ़ाने पर भी भाव पक्ष और बौद्धिक पक्ष के तुलनात्मक महत्त्व पर कोई बड़ा प्रभाव नहीं पड़ेगा। और इस सूची को देखकर सरलता से कहा जा सकता है कि नैतिकता का विकास असंज्ञानात्मक प्रक्रिया नहीं है। यह विवेक और तर्क पर निर्भर करती है।

कुछ प्रश्न—

- ***नैतिक कथनों को सत्य—असत्य क्यों नहीं कहा जाता ?***

5.3.7 दर्शन

अभी तक हमने मानवीय समझ के जिन स्वरूपों की चर्चा की है उनके बारे में यह कहा जा सकता है कि वे विश्व को विभिन्न पहलुओं से समझने का प्रयास करते हैं। इस बात को साफ तौर पर समझने के लिए एक उदाहरण के तौर पर ताजमहल को लेते हैं। गणित मुख्यतः ताजमहल के आकर—प्रकार एवं संरचनात्मक पहलुओं को समझने में मदद कर सकता है। ताजमहल की रेखाओं, कोणों, वर्कों और उसके आपसी रिश्तों को समझने में मदद कर सकता है। विज्ञान मूलतः उसके स्पष्ट वर्णन, जिस पदार्थ से ताजमहल बना है, उसके गुण—धर्म, विभिन्न भागों एवं नींव पर पड़ने वाले दबावों, यह संरचना कितने दिन तक टिक सकती है, आदि एवं इसी प्रकार के अन्य पहलुओं को समझने में मदद कर सकता है। मथुरा तेल शोधक कारखाने का ताजमहल पर प्रभाव भी विज्ञान के क्षेत्र में ही आएगा। इन सब में गणित की मदद ले सकते हैं, जैसे ताजमहल के बड़े गुम्बद द्वारा दीवारों पर डाले गए दबाव की गणना में। इतिहास ताजमहल कब, किसने बनाया और इसमें कब—कब कौन से परिवर्तन या मरम्मत आदि की गई, इसका अतीत क्या है? आदि प्रश्नों को समझने में, हल करने में, मददगार साबित हो सकता है। सौंदर्यबोध इसकी सुन्दरता को समझने—परखने, उससे भावविभोर होने, उस पर कविता लिखने, चित्र बनाने आदि में मददगार हो सकता है। नीतिशास्त्र की चिंता बादशाहों द्वारा अपनी प्रिय बेगमों की याद को अमर करने के लिए जनता के धन, जीवन एवं श्रम के व्यय के औचित्य—अनौचित्य निर्धारण में मदद कर सकती है। समझ के इन विभिन्न स्वरूपों का मुख्य बल इन दिशाओं में रहेगा तथा इन्हीं पक्षों को समझने में ये स्वरूप सर्वाधिक मददगार हो सकते हैं।

दर्शन का एक काम इन सभी पक्षों को मिला ताजमहल को उसकी समग्रता में देखना है। इन सभी पक्षों में आपसी संबंध देखना, उनकी विवेचना/विश्लेषण द्वारा समन्वय करना व एक समग्र संश्लिष्ट दृष्टि का विकास करना, इन सबकी क्षमता को समझ का दार्शनिक स्वरूप कहा जा सकता है पर बात सिर्फ इतनी नहीं है। समझ के किसी स्वरूप के बारे में विचार करना जैसे गणित क्या है? गणित का स्वभाव एवं स्वरूप क्या है? आदि भी दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश कराने वाले प्रश्न हैं।

मानव जीवन को उसकी समग्रता में देखने–समझने के प्रयास में, संपूर्ण विश्व को मानव–चिंतन की परिधि में लाने, स्वयं चिंतन और ज्ञान की प्रक्रिया और उनके स्वभाव को जांचने–परखने, आदि के प्रयासों में समझ का जो स्वरूप विकसित होता है, उसे मोटे तौर पर हम दर्शन कह रहे हैं। दूसरे शब्दों में जगत में हमारे संपूर्ण अनुभवों की व्याख्या के लिए विभिन्न अवधारणात्मक ढांचों से बाहर निकलकर जब हम उन्हीं ढांचों को जांचने–परखने लगते हैं, जगत के अस्तित्व एवं स्वभाव के बारे में प्रश्न उठाने लगते हैं, अपने आपको विश्लेषण एवं विवेचना का विषय बनाने का प्रयत्न करने लगते हैं, इन सब में सार्थकता एवं उद्धेश्यों को ढूंढने लगते हैं, संपूर्ण विश्व, उसमें हम स्वयं, हमारे कर्म एवं हमारे विचारों का एक साथ दर्शन करने का एवं उनका मूल्यांकन करने का प्रयास करते हैं, तो हम दार्शनिक हो जाते हैं। इस प्रयत्न से अधिक सामान्यीकृत अवधारणाओं का विकास होता है, एवं अधिक सामान्य पैटर्न बनाने पड़ते हैं। समझ के इस स्वरूप को यहां समझ का दार्शनिक स्वरूप कह रहे हैं।

दर्शन का काम हमारे समस्त चिंतन में स्पष्टता लाना एवं उसमें सामंजस्य बैठाना है। इसकी सत्यापन विधियां मूलतः चिंतन–परक एवं तार्किक होती हैं। ये सत्यापन विधियां समझ के अन्य स्वरूपों की सत्यापन विधियों को अपने आप में समाहित करती हैं, उनमें सामर्थ्य ग्रहण करती हैं और साथ ही उनकी प्रमाणिकता की जांच भी करती है।

दार्शनिक समझ के विकास का अर्थ है–

- **i) अवधारणाओं की स्पष्टता व उनके आपसी संबंधों के प्रति आग्रहशील होना।**
- **ii) चिंतन के हर क्षेत्र में मूल मान्यताओं को रेखांकित करने का सतत प्रयत्न।**
- **iii) विश्लेषण एवं संश्लेषण की क्षमता का विकास।**
- **iv) विश्व को उसकी समग्रता में देखने की क्षमता का विकास।**
- **v) अपने भीतर एक ऐसे दृष्टि का विकास जो हम स्वयं, हमारे कर्म और हमारे विचारों की पृथक्–पृथक् करके देख सके, उनके आपसी रिश्तों को देख सके एवं अन्यों तथा सम्पूर्ण विश्व के परिप्रेक्ष्य में रख सके।**

5.4 क्या भाषा और कौशल ज्ञान के रूवरूप नहीं हैं?

तो ये हुऐ ज्ञान के सात स्वरूप, किन्तु यहां आप पूछ सकते हैं कि स्कूल में तो भाषा और कौशल भी सिखाये जाते हैं, वो तो इस सूची में आए ही नहीं? दरअसल जहां तक भाषा का सवाल हैं, वह तो ज्ञान के इन सारे स्वरूपों का आधार है, एक ऐसा औजार जिसकी मदद से ये सातो स्वरूप विकसित होते हैं। और दूसरी बात ये है कि सारी अवधारणाएं, चाहे वह विज्ञान की हो या इतिहास की, हैं तो आखिर भाषा की ही। तीसरी बात यह कि भाषा में तो हमें कुछ सत्य–असत्य भी सिद्ध नहीं करना होता है अर्थात भाषा में कुछ सत्यापित करना नहीं होता हैं। इसी प्रकार कौशल से हमारा तात्पर्य है कर्म करने के सामर्थ्य। अतः इसमें भी कुछ सत्यापित करने योग्य नहीं होता है। हम ऐसा तो कभी नहीं कहते हैं कि मैं सत्य–असत्य साईकिल चलाना जानता हूं? हां कर्म करने कि सामर्थ्य बेहतर या बदतर हो सकती है लेकिन सत्य या असत्य नहीं। क्योंकि आप जानते हैं कि हमने ज्ञान को अवधारणाओं और सत्यापन प्रक्रियाओं की विशिष्टता के आधार पर वर्गीकृत किया था, जबकि भाषा और कौशल दोनों ही में सत्यापन प्रक्रियाएं होती ही नहीं हैं तो इन्हे ज्ञान के स्वरूप के हिस्सों की तरह नही देखा जा सकता। चलिए देखतें हैं इन्हे शिक्षा की दृष्टि से कैसे देखा जा सकता है और इनका क्या महत्व है?

5.4.1 भाषा

भाषा पर बालक का अधिकार प्राथमिक शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। यह तो सब मानते हैं। क्यों सब से अधिक महत्वपूर्ण पहलू है? इस क्यों के जवाब में बहुत सारे कारणों की सूची बनाई जा सकती है। भाषा ही बालक के (वैसे सभी के) संप्रेषण का माध्यम होती है। भाषा के माध्यम से ही शिक्षा के अन्य पहलुओं तक बालक की पहुंच हो पाती है। जैसे विज्ञान, गणित आदि को बिना भाषा पर यथोचित अधिकार हुए, समझ पाना संभव ही नहीं है। भाषा के माध्यम से ही बालक विचार कर पाता है, निर्णय ले पाता है। मानव समाज में रहते हुए उन निर्णयों में से अधिकतर पर काम कर पाने के लिये भी भाषा आवश्यक है आदि। ये सब बातें महत्वपूर्ण हैं, सही हैं। पर जिस प्रकार इन को ऊपर रखा गया है उस को समझने में एक खास तरह का एकांगीपन भी आ सकता है। जैसे यह समझा जा सकता है कि भाषा एक साधन है जो इन सब उद्देश्यों के लिये आवश्यक है दीवार के साथ खड़ी की गई सीढ़ी की तरह। सीढ़ी साधन है छत पर चढ़ने के लिये। उद्देश्य छत पर चढ़ना है। इसी प्रकार भाषा साधन है। उद्धेश्य संप्रेषण, विचार कर पाना, विज्ञान, गणित आदि सीखना, निर्णय ले पाना आदि हैं। एक तरह से यह बात ठीक है पर अधूरी है। भाषा साधन होने के साथ–साथ बहुत कुछ और भी है। साथ ही वह 'कुछ और' साधन होने से कहीं अधिक महत्व की चीज भी है।

कुड प्रश्नः

- ***भाषा को एक साधन क्यो माना गया है?***

वास्तव में हमारी समझ मूलतः इस जगत के बारे में है और इस जगत को समझने का जरिया हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं– आँख (देखना – काला, नीला, पीला आदि), कान (सुनना– शोर, संगीत आदि), जिह्व्या (स्वाद– खट्टा, मीठा, फीका आदि), त्वचा (स्पर्श– खुरदरा, चिकना आदि) एवं नाक (सूँघना– खुशबू, बदबू आदि)। अन्य कोई और जरिया नहीं है इस जगत को जानने/समझने का। हम जो कुछ भी करते हैं– देखना/सूँघना/छूना/चखना/सुनना/अनुभव, इसके माध्यम से विशिष्ट संप्रेषण– लाल/बदबू/ खुरदरा/मीठा/मधुर– प्राप्त करते हैं। हमारे हर एक इंद्रिय–संप्रेषण का एक खास बिम्ब हमारे मस्तिष्क में बनता है। जैसे मैंने कोई पशु (गाय) देखा तो इससे जो संप्रेषण मैंने ग्रहण किया उसकी एक छवि (बिम्ब) मेरे मस्तिष्क में बन जायेगी। इसी प्रकार यदि मैं कोई खास प्रकार की गन्ध सूँघता हूँ तो वह भी मेरे मस्तिष्क में एक विशेष बिम्ब के रूप में रहेगी। मनुष्य इन बिम्बों को पहचानने के लिए एक नाम देता है। उदाहरण के तौर पर मैंने एक पशु (गाय) देखा और इससे संप्रेषित बिम्ब का नाम मुझे बताया गया 'गाय' कहते हैं किन्तु मैं इसके मायने नहीं जानता हूँ। 'गाय' क्या चीज है ? यह किस काम आती है ? आदि प्रश्न मेरे मस्तिष्क में उठते हैं। जैसे ही मुझे इन प्रश्नों के उत्तर मिल जायेंगे वैसे ही इन दोनों बिम्बों (दृश्य व ध्वनि) को एक अर्थ मिल जायेगा। उदाहरण के तौर कोई मुझे बताये कि गाय दूध देती है। इसके गोबर से उपले बनते हैं। गोमूत्र आयुर्वेदिक दवाईयाँ बनाने में काम आता है। गाय के दूध में वसा कम होती है। इस प्रकार दृश्य/श्रव्य/ स्पर्श/गन्ध बिम्ब, इनके नाम अर्थात् ध्वनि प्रतीकों के बिम्ब और इनके मायने – तीनों मिलकर बनते हैं एक अवधारणा। उपरोक्त उदाहरण में यदि ध्यान दें तो गाय का अर्थ बताने के लिए इसे अन्य अवधारणाओं जैसे 'दूध', गोबर, उपले, गोमूत्र, आयुर्वेदिक दवाईयाँ, वसा आदि से इसके संबंधों के परिप्रेक्ष्य में देखा जा रहा है। अतः जब हम बिम्बों को अर्थ प्रदान करते हैं तो इसके साथ अन्य पहले से हमारे मस्तिष्क में मौजूद अवधारणाओं से इसका संबंध जोड़ते हैं। इस प्रकार इंद्रीय–संप्रेषणों की व्याख्या हम करते जाते हैं और अवधारणाओं का एक संजाल (चित्र–1) हमारे मस्तिष्क में बनता जाता है।

अध्याय – 6

ज्ञान और शिक्षाक्रम

पाठ की रूपरेखा

6.1 परिचय

6.1.1 उद्देश्य

6.2 शिक्षाक्रम की जरूरत

6.3 शिक्षाक्रम की अवधारणा

6.4 पाठ्यक्रम की अवधारणा

6.5 शिक्षाक्रम निर्माणा की समस्याएँ

6.5.1 बच्चों की सीखने की क्षमता

6.5.2 बच्चों के स्तरवार सीखने के उद्देश्य का निर्धारण

6.5.3 विषयवस्तु का चुनाव व नियोजन

6.5.4 सीखने सीखाने की विधियों का चुनाव

6.5.5 शिक्षण सामग्री का चुनाव

6.5.6 मूल्यांकन प्रक्रिया का चुनाव

6.6 शिक्षाक्रम निर्माण की विभिन्न समस्याओं के बीच संबंध।

6.7 शिक्षा के उद्देश्य

6.8 सारांश

6.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

6.10 सत्रगत कार्य के लिए प्रश्न

6.1 परिचय

इस अध्याय में हम अपने स्कूली व्यवस्था में शिक्षाक्रम व पाठ्यक्रम के महत्वों पर चर्चा करते हुए यह समझने का प्रयास करेंगें कि शिक्षाक्रम व पाठ्यक्रम का क्या अर्थ है। साथ ही यह जानेंगे व समझने का प्रयास करेंगें कि शिक्षाक्रम निर्माण में कौन–कौन सी समस्याएं हो सकती है तथा शिक्षाक्रम के चुनाव में किन–किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

6.1.1 उद्देश्य

इस अध्याय को पढने के बाद आप

- बता पाऐगें कि शिक्षाक्रम का क्या आशय है।
- बता पाऐगें कि पाठ्यक्रम का क्या आशय है।
- शिक्षाक्रम और पाठ्यक्रम में अन्तर को बता पाएंगें।
- शिक्षा में शिक्षाक्रम के महत्व को समझ पाएंगें।
- शिक्षाक्रम निर्माण में होने वाली विभिन्न समस्याओं पर अपने विचार व्यक्त कर पाएंगें।
- शिक्षाक्रम के चुनाव के लिए आवश्यक आधारों पर समझ बना पाएंगें।

सभी समाज उन चीजों को नई पीढ़ी को देना चाहते हैं जिन्हें वे मूल्यवान या महत्त्वपूर्ण मानते हैं। यहां चीजों से आशय उस ज्ञान, समझ, क्षमताओं, कौशलों, जानकारियों, विश्वासों, अभिवृत्तियों और मूल्यों आदि से है जिन पर उस समाज का अस्तित्व टिका होता है।

कुछ प्रश्न–

- ***क्या आपके अपने समाज में कुछ ऐसे उदाहरण (ज्ञान, समझ, क्षमताओं, कौशलों, जानकारियों, विश्वासों, अभिवृत्तियों और मूल्यों) हैं जिन्हे एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को दिया गया हो? यदि हां तो एक उदारण लिखिए।***

इस दुनिया में कोई भी समाज ऐसा नहीं है जिसके पास उपरोक्त चीजें (ज्ञान, समझ, क्षमताओं, कौशलों, जानकारियों, विश्वासों, अभिवृत्तियों और मूल्यों) नहीं होती। मानव विज्ञानी बताते हैं कि अलग–अलग तरह के समाजों में इन चीजों के हस्तातंरण के तरीके भी अलग–अलग होते है। उदाहरण के लिए, उन आदिम समाजों की कल्पना करें जो जंगल में रहते हुए शिकार करके अपना जीवनयापन करते थे। थोड़ा सोचकर देखें, ये समाज नई पीढ़ी को किस तरह के ज्ञान, क्षमताओं, कौशल, समझ, जानकारी, अभिवृत्ति, विश्वास और मूल्यों को देते होंगे? निश्चित रूप से इन समाजों में शिकार करके जीवनयापन और खूंखार पशुओं एवं प्राकृतिक आपदाओं से अस्तित्व को बचाए रखने की प्रमुख जरूरत थी। अचूक तरीके से शिकार कर पाना, जानवरों के स्वभाव को समझना, अपने जीवन और भोजन को सुरक्षित रख पाना, सामूहिक रूप में रहना इत्यादि ऐसी चीजें होंगी जिन्हें पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को सिखाना चाहती होगी। थोड़ी देर के लिए यह भी सोचकर देखें कि इन समाजों में इन्हें सिखाए जाने के तरीके क्या रहे होंगे ? क्या इन्हें सिखाने के लिए इन समाजों में आज की तरह स्कूल की जरूरत महसूस की गई होगी? क्या शिकार करना झोंपड़ी में बैठकर सिखाया जा सकता है?

हम सोच सकते हैं कि सिखाए जाने वाले अधिकतर काम ऐसे हैं जो वयस्कों के साथ रहकर या उस कार्य में संलग्न होकर ही सीखे जा सकते हैं। लेकिन हम यह भी जानते हैं कि कोई भी समाज स्थिर नहीं होता। वह लगातार अपने ज्ञान और समझ में वृद्धि करता रहता है। इसका एक मतलब यह हुआ कि कोई भी समाज सिर्फ अपनी तात्कालिक जरूरतों से बंधा नहीं रहता। यदि वह समाज सिर्फ अपनी तात्कालिक जरूरतों से बंध ाा होता और नई पीढ़ी भी उन्हीं जरूरतों को पूरा करने तक ही अपने आपको सीमित रखती तो निश्चित रूप से उस समाज की विकासमान प्रक्रिया भी रुक गई होती। अपनी तात्कालिक जरूरतों के साथ हरेक समाज जीवन को बेहतर और सुगम बनाने के तरीके खोजता रहता है। इसी प्रक्रिया में ज्ञान, समझ, क्षमताओं, कौशलों और मूल्यों में वृद्धि और परिवर्तन होता रहता है।

कुछ प्रश्न–

- ***सोच कर लिखें कि वर्तमान में छत्तीसगढ़ के बस्तर इलाके में रहने वाले वहां के मूल आदिवासी समाज अपने बच्चों को क्या–क्या सिखाते हैं और कैसे सिखाते होंगें? कैसे ये समाज अपने परंपरागत ज्ञान, कौशल, समझ और विश्वासों को नई पीढ़ी को प्रेषित करते होंगें?***

इसी उदाहरण को आज के अपने समाज पर विचार करते हैं। आज के समाज में हम किन चीजों को अपने बच्चों को सिखाना चाहते हैं? क्या हम आज भी बच्चों को यह सिखाना चाहेंगे कि पृथ्वी शेषनाग के फन पर टिकी हुई है या बारिश इन्द्र देव की कृपा से होती है या चेचक शीतला माता के प्रकोप से होती है? क्या आज हम विज्ञान, गणित, समाज विज्ञान, तकनीकी और कलाओं के बगैर शिक्षा की कल्पना कर सकते हैं? जो भी विषय क्षेत्र बच्चों को सिखाए जाने के लिए चुने जाते हैं क्या उन्हें पूरी तरह परिवार या समुदाय के भरोसे छोड़ा जा सकता है? यदि आज के जटिल समाज में स्कूल नामक संस्था नहीं हो तो क्या होगा? कौनसी चीजें हम परिवार में सिखा पाएंगे और कौनसी नहीं?

हम पाते हैं कि लम्बी विकासमान प्रक्रिया के तहत आधुनिक जटिल समाज के पास ज्ञान, समझ, क्षमताओं, कौशलों और मूल्यों की लम्बी फेहरिस्त है। ज्ञान के बहुत से ऐसे क्षेत्र हैं जो सिखाए जाने या सीखे जाने के लिए विशेषज्ञता की मांग करते हैं। आज के समय में कोई भी व्यक्ति अपने बच्चों की शिक्षा की संपूर्ण जिम्मेदारी नहीं लेना चाहेगा। अधिकांश माता–पिता यह भी नहीं सोच पाएंगे कि यदि वे अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजें तो उनका समुचित विकास हो पाएगा। इसके अनेक कारण हैं। माता–पिता के पास न तो इतना समय है और न ही विशेषज्ञता और न ही व्यापक समाज की जरूरत और आकांक्षा के अनुरूप शिक्षा दे पाने की सक्षमता, जिससे कि वे अपने बच्चों की बेहतर शिक्षा का दायित्व स्वयं उठा पाएं। आरंभिक स्तर की शिक्षा में अनेक अवधारणाएं ऐसी होती हैं जिन्हें सिखाने के लिए उस विषय की खास समझ की मांग करता है। बहुत ही साधारण सी दिखने वाली अवधारणाएं बच्चों को किस तरीके से सिखाई जाएं, यह सोच–विचार और समझ की मांग करता है। अतः आधुनिक जटिल समाज में स्कूल एक ऐसी अनिवार्य संस्था के रूप में उभरती है जो बच्चों के लिए अपरिहार्य है। बच्चों के विकास की एक बड़ी जिम्मेदारी स्कूल के दायरे में आती है। स्कूल से अपेक्षा की जाती है कि वह बच्चों का अपेक्षित स्तर तक मानसिक और शारीरिक विकास करने में मदद करें।

कुछ प्रश्न–

- ***समाज में स्कूल की क्या आवश्यकता है?***

6.2 शिक्षाक्रम की जरूरत

संभवतः शिकार से जीवनयापन करने वाले समाजों को इस विषय पर सोचने की जरूरत नहीं पड़ी होगी कि बच्चों को क्या सिखाएं और कैसे सिखाएं, लेकिन आधुनिक समाज में इन प्रश्नों से बचा नहीं जा सकता। ज्ञान का अथाह भण्डार मानव सभ्यता ने संग्रहित किया है। इस ज्ञान का बहुत थोड़ा अंश व्यक्ति समाज में रहते हुए सीख सकता है। इंसान समाज में रहते हुए बहुत सी बातें स्वयं सीख लेता है। 5 या 6 वर्ष की आयु में जब बच्चा स्कूल में पहली बार प्रवेश लेता है तो उसके पास बहुत–सी क्षमताएं, कौशल, ज्ञान, जानकारियां, समझ, वृत्तियां और मूल्य होते हैं। बच्चों के विकास का एक बड़ा हिस्सा स्कूल के बगैर भी पूरा हो सकता। उदारहण के लिए, घर की भाषा सीखना, सामाजिक आदान–प्रदान के तौर–तरीके, उस बच्चे के समुदाय में प्रचलित आम ज्ञान, दृष्टिकोण और मूल्य तथा लगभग पूरा का पूरा शारीरिक विकास बिना स्कूल की मदद से स्वभाविक रूप से चलता रहता है। अर्थात् स्कूल आने से पहले ही इन सब क्षेत्रों में एक हद तक बच्चे विकास कर चुके होते हैं। इस हिस्से के विकास के लिए स्कूल को बहुत थोड़ा या लगभग नगण्य श्रेय जाता है। इसका यह मतलब भी नहीं है कि स्कूल से इनका कोई संबंध नहीं है। स्कूल इन तमाम क्षेत्रों में बच्चे के ज्ञान, समझ और कुशलता के स्तर को परिष्कृत करने या बेहतर बनाने में मदद करता है। तमाम कारणों से खेल को स्कूली शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा बनाया जाता है और स्कूल में अनेक खेलों को बढ़ावा दिया जाता है।

कुछ प्रश्न–

- ***ऐसे दो बातें लिखे जिन्हें बच्चा समाज या परिवार में सीखा हो तथा स्कूल उन सीखे हुए बातों को परिष्कृत करने या बेहतर बनाने में मदद करता हो।***

पांच या छः वर्ष की आयु में स्कूल में प्रवेश लेने से लेकर करीब 18 वर्ष की आयु तक स्कूली शिक्षा पूरी

करने तक माता–पिता, शिक्षक और समाज की यह अपेक्षा करते हैं कि उनके बच्चों की क्षमताओं, कौशलों, ज्ञान, समझ, दृष्टिकोण और मूल्यों का एक विशेष दिशा में अपेक्षित स्तर तक विकास हो। स्कूल से यह अपेक्षा की जाती है कि वह बच्चे का वांछित स्तरों तक मानसिक और शारीरिक विकास की दिशा में प्रगति करने में मदद करे।

हम यह भी जानते हैं कि बच्चे को वह सब कुछ नहीं सिखाया जा सकता जिसे अभी तक मानव समाज ने अर्जित किया गया है। अतः यह सोचना अनिवार्य हो जाता है कि स्कूल में प्रवेश लेने वाले बच्चों को क्या–क्या सिखाया जाए? कैसे सिखाया जाए? जो सिखाया गया है उसे बच्चे कितना सीखे हैं, इसकी कैसे जांच की जाए?

यदि हम स्वयं की शिक्षा के अनुभवों पर पुनर्चिन्तन करें तो पाते हैं कि किस कक्षा में क्या पढ़ाया जाना है, किस तरह पढ़ाया जाना है, यह लगभग पहले से तय होता है। वर्ष में एक या एक से अधिक बार परीक्षा लेकर यह भी सुनिश्चित किया जाता है कि जो पढ़ाया गया है उसे वे कितना सीख पाए हैं। परीक्षा के परिणाम के आधार पर तय होता है कि किन बच्चों का आगे की कक्षा में जाना है या किन्हें पुनः उसी कक्षा में पढ़ना है। क्या आपने कभी सोचा है कि जो हमें पढ़ाया गया उसे तय करने के आधार क्या रहे होंगे? पढ़ाने के जो भी तरीके रहे हैं, वे ही उचित तरीके हैं, उन्हें किन आधारों पर तय किया गया होगा? बच्चों को जो सिखाया गया है उसे जांचने के लिए परीक्षा प्रणाली को किन आधारों पर तय किया गया होगा?

हमारी स्कूली शिक्षा में क्या शामिल होगा और क्या नहीं, यह चयन किससे मार्गदर्शित होता है? यह चयन किन मानदण्डों से निर्देशित होता है? शिक्षा दार्शनिकों का मानना है कि स्कूली शिक्षा एक सुविचारित गतिविधि है। यदि स्कूल सुविचारित रूप से चलाए जा रहे हैं तो इन सभी चुनावों के लिए उसके पास कोई आधार होने चाहिए। किसी भी गतिविधि के सुविचारित होने के लिए यह आवश्यक है कि उस गतिविधि के उद्देश्यों और प्रक्रियाओं, लक्ष्यों और उन्हें प्राप्त करने के तरीकों पर सोच–समझकर निर्णय लिया जाता होगा। यदि हम शिक्षा और उसके लिए स्कूल को सुविचारित गतिविधि या कर्म मानते हैं तो यह आवश्यक है कि स्कूल में बच्चों को जो भी सिखाया जाना है उसके कोई न कोई उद्देश्य होने चाहिए। मानव समाज ने बच्चों को खास क्षमताएं, ज्ञान, समझ और कौशल एवं वृत्तियों को सिखाए जाने के लिए शिक्षा और इसके लिए स्कूली व्यवस्था को मान्यता प्रदान की है। ये उद्देश्य यह भी तय करने में मदद करते हैं कि स्कूल में चलने वाली शिक्षा प्रक्रिया के परिणाम क्या होंगे। अर्थात् किसी भी सुविचारित गतिविधि के लक्ष्य परिणामों को पूर्वानुमानित कर पाने में हमारी मदद करते हैं। इसे एक उदाहरण के माध्यम से समझने की कोशिश करते हैं। मान लीजिए, एक व्यक्ति अपने लिए नया घर बनाना चाहता है। उसकी इच्छा कितनी भी बलबती क्यों न हो, यह काम बिना सोच–विचार के नहीं हो सकता। उसे पहले विचार करना होगा कि वह किस प्रकार का मकान चाहता है। कितने कमरे बनेंगे और कौन–सा कमरा किसके लिए, कहां होगा इत्यादि। उसे एक योजना बनानी होगी। नक्शे तैयार करने होंगे। नाप–जोख और सामग्री का ब्यौरा तैयार करना होगा। उसे मकान बनाने के लिए संसाधनों पर विचार करना होगा। अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए उसके पास जो पूंजी या ऋण उपलब्ध है, उसका योजना से मिलान करके देखना होगा कि वह पर्याप्त है या नहीं। उसे मकान के लिए उपलब्ध स्थानों की जांच करनी होगी। यह भी देखना होगा कि उसकी कीमत क्या है, कार्यस्थल से दूरी कितनी है, पड़ोस अनुकूल है या नहीं। बच्चों के लिए स्कूली सुविधाएं हैं या नहीं और रोजमर्रा के सामान के लिए बाजार आदि है या नहीं, इत्यादि–इत्यादि। कुल मिलाकर देखें तो उसकी खर्च करने की क्षमता, परिवार का आकार और जरूरतें तथा जगह की उपलब्धता इत्यादि उसकी योजना को कार्य रूप में परिणित करने में मदद करेंगी। कहने का आशय है कि किसी कार्य को बेहतर रूप में अंजाम देने के लिए पहले एक लक्ष्य का निर्धारण करना होता है और फिर

उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तमाम व्यवहारिक पहलुओं पर विचार करना होता है। इसी प्रकार शिक्षा या स्कूल के जो भी लक्ष्य तय किए जाते हैं वे यह समझने में हमारी मदद करते हैं कि स्कूल में जो कुछ भी चल रहा है, क्या उसकी दिशा उचित है अथवा वह इन लक्ष्यों के कितना करीब है या इनसे कितना दूर है। लेकिन समस्या यह भी है कि इन उद्देश्यों को किन आधारों पर तय किया जाता है?

बहुत से ऐसे ही प्रश्नों और समस्याएं हैं जिनके बारे में शिक्षा दार्शनिक, शिक्षाविद् और शिक्षा में काम करने वाले लोग सोचते रहे हैं। इस तरह के सवालों पर समग्रता में चिन्तन ही शिक्षाक्रम के विचार को जन्म देता है।

कुछ प्रश्न–

- ***उन सवालों की सूची बनाए जो की शिक्षकीय व्यवस्था में शिक्षाक्रम के विचार को जन्म देता सकता हो?***

6.3 शिक्षाक्रम की अवधारणा

शिक्षाक्रम शब्द का प्रचलन आम बोलचाल में कम ही होता है। हम सभी पाठ्यक्रम शब्द, जिसे अंग्रेजी में सिलेबस कहते हैं, से फिर भी परिचित होते रहते हैं। शिक्षाक्रम के लिए पाठ्यचर्या शब्द भी इस्तेमाल होता है जिसके लिए अंग्रेजी में करिक्युलम (Curriculum) शब्द प्रयुक्त होता है। लेकिन इस शब्द, शिक्षाक्रम, के मायने क्या हैं?

शिक्षाक्रम शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। इस शब्द की परिभाषा प्राकृतिक विज्ञानों की अवधारणाओं की तरह सुनिश्चित नहीं है बल्कि यह एक ऐसी अवधारणा है जिसे इंसानों ने गढ़ा है। यह मानव समाज में विकसित होती अवधारणा है जिसकी परिभाषा समय और जरूरत के अनुसार बदलती रही है। परंपरागत अर्थ में शिक्षाक्रम के मायने–विभिन्न विषयों की सूची, विषयों में पढ़ाए जाने वाली विषयवस्तु से लिया जाता है।

> शिक्षाक्रम को अन्य नामों से भी जाना जाता है जैसे पाठ्चर्याए करिक्युलम (Curriculum)

कुछ लोग इस शब्द का प्रयोग 'गतिविधि आधारित शिक्षाक्रम' या 'आनन्ददायी शिक्षाक्रम' जैसी अवधारणाओं के रूप में भी प्रयोग करते हैं। लेकिन इस तरह की अवधारणाओं का पूरा जोर कक्षा–कक्षीय प्रक्रियाओं तक ही सीमित रह जाता है। शिक्षा का समग्र चिन्तन इसमें नहीं आता। इसी प्रकार शिक्षाक्रम शब्द का इस्तेमाल 'प्रच्छन्न शिक्षाक्रम' (Hidden Curriculum) के रूप में भी किया जाता है। वर्तमान समय में शिक्षाक्रम एक विकसित अवधारणा का रूप ले चुका है और इसका प्रयोग व्यापक अर्थों में किया जाता है। इस मायने में शिक्षाक्रम की अवधारणा–बच्चों को क्या सिखाया जाए, क्यों सिखाया जाए, सिखाने के लिए जिसे चुना गया उसके चयन के बुनियादी सिद्धान्त, मान्यताएं और कारण क्या है, इन सभी सवालों के जवाब शिक्षाक्रम की अवधारणा में समाहित होते हैं। इसे एक उदाहरण के माध्यम से समझने की कोशिश करते हैं। मान लीजिए, यह कहा जाए कि आरंभिक कक्षाओं में बच्चों को गणित पढ़ाया जाना चाहिए। तो सवाल आता है कि गणित क्यों पढ़ाया जाना चाहिए? जीवन में गणित का क्या उपयोग होगा? इससे बच्चों में किन क्षमताओं, दृष्टिकोण और अभिवृत्तियों का विकास होगा? क्या आरंभिक स्तर के बच्चों को गणित सिखाया जाना चाहिए? कक्षावार या बच्चों के स्तरवार गणित सिखाने के क्या चरण होंगे या स्तरवार अवधारणाओं का क्रम क्या होगा? वे ही अवधारणाएं क्यों सिखाई जानी चाहिए, आदि ऐसे प्रश्न हैं जिनके बारे में शिक्षा से जुड़े व्यक्तिओं और शिक्षकों के लिए समझना आवश्यक है।

लेकिन शिक्षाक्रम के संदर्भ सवालों की यह श्रृंखला बस यहीं खत्म नहीं होती। ये सवाल इससे आगे भी जाते हैं। बच्चों को सिखाने के लिए जो भी चुना है उन्हें सिखाया कैसे जाएगा, यानी सिखाने के तरीके या विधि

ायां क्या होंगी? वे ही विधियां क्यों होंगी? बच्चों को किन स्थितियों में पढ़ाया जाएगा? इन्हें पढ़ाने वाले व्यक्ति से किस तरह की क्षमताओं और समझ की अपेक्षा होगी? पढ़ाने के लिए जो भी तय किया गया है उसे पढ़ाने के लिए किस तरह की सामग्री प्रयोग में लाई जाएगी? किस तरह से इसका मूल्यांकन किया जाएगा? इन सभी प्रश्नों पर शिक्षाक्रम निर्माताओं को जबाव देना होता है। यदि संक्षेप में कहें तो शिक्षाक्रम स्कूल को क्या करना चाहिए, क्यों करना चाहिए और कैसे करना चाहिए आदि समस्याओं के बारे में दिशा–निर्देशित करने वाले सिद्धान्तों, मान्यताओं का एक दस्तावेज होता है। स्कूल शिक्षाक्रम से यह अपेक्षा की जाती है कि वह बच्चों में ज्ञान, क्षमताओं, कौशलों और अभिवृत्तियों का विकास करने में मदद करे जो पूरी तरह बौद्धिक ही नहीं हों बल्कि सामाजिक, नैतिक, भावनात्मक और व्यवहारिक भी हों। अतः कहा जा सकता है कि शिक्षाक्रम सुविचारित अवधारणा है जो कि शिक्षा के हर पहलु को दिशा–निर्देशित करता है। इसी व्यापक परिभाषा के चलते गतिविधि आधारित शिक्षाक्रम और आनन्ददायी शिक्षाक्रम या प्रच्छन्न शिक्षाक्रम जैसी अवधारणाएं बहुत दूर तक हमारी मदद कर पाने में समर्थ नहीं हैं। शिक्षाक्रम पर आगे बात करने से पहले हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि पाठ्यक्रम के मायने क्या हैं और पाठ्यक्रम की अवधारणा क्या है?

6.4 पाठ्यक्रम की अवधारणा

अभी तक हमने शिक्षाक्रम की अवधारणा पर चर्चा की है। शिक्षा में अक्सर पाठ्यक्रम शब्द का इस्तेमाल किया जाता है। सामान्य व्यवहार में शिक्षाक्रम और पाठ्यक्रम को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। दो अलग–अलग अवधारणाओं को एक ही अर्थ में प्रयोग करने से भ्रान्ति पैदा होती है। हमने ऊपर बात की है कि शिक्षा पर समग्र चिन्तन जो स्कूली शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रियाओं को दिशा निर्देशित करते हैं उसे शिक्षाक्रम करते हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***आपने पाठ्यक्रम शब्द का प्रयोग किया होगा या सुना होगा। पाठ्यक्रम से आप क्या समझते हैं? उसमें क्या–क्या चीजें शामिल होती हैं?***
- ***कक्षा 4 थी के पर्यावरण की पाठ्यपुस्तक का उपयोग करते हुए यह बताए कि उसमे क्या–क्या चीजें शामिल है?***

पाठ्यक्रम की अवधारणा में स्तरवार या कक्षावार पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु का संकलन होता है। अर्थात् पाठ्यक्रम हमें यह बताता है कि किस स्तर पर क्या सिखाया जाना चाहिए। लेकिन वही क्यों सिखाया जाना चाहिए, इस संदर्भ में पाठ्यक्रम हमें कुछ नहीं बताता।

उदाहरण के लिए, गणित के पाठ्यक्रम में यह बताया जाएगा कि कक्षा एक में सौ तक की गिनती, दो अंकों की संख्या तक के जोड़, दो अंकों तक की संख्या के घटाओं और दहाई, सैकड़ा की अवधारणा आदि सिखाई जाएगी। दूसरी कक्षा में गुणा की अवधारणा और दो अंकों की संख्या का दो अंकों की संख्या से गुणा, जोड़ और बाकी के इबारती सवाल तथा भाग की अवधारणा सिखाई जाएगी। इसी प्रकार अन्य कक्षाओं में सिखाई जाने वाली विषयवस्तु का विवरण भी पाठ्यक्रम में होगा। इसी प्रकार भाषा का पाठ्यक्रम कहेगा कि पहली कक्षा में वर्णमाला सिखाई जाएगी, वर्णों को मिलाकर शब्द बनाने पर काम किया जाएगा। सरल कहानी या कविता पढ़ने के लिए दी जाएगी। कहानी या कविता में आई घटनाओं से संबंधित सरल सवाल पूछे जाएंगे।

कुछ प्रश्न–

- ***कक्षा 5वी के पर्यावरण विषय की पाठ्यपुस्तक का उपयोग कर यह बताए कि बच्चों को क्या क्या सीखाना आपेक्षित है?***

पाठ्यक्रम हमें कक्षावार या स्तरवार विवरण उपलब्ध करवाता है। लेकिन वे ही चीजें क्यों पढ़ाई जाएंगी, इन्हें चुनने के आधार क्या हैं आदि जैसे सवाल पाठ्यक्रम की अवधारणा का हिस्सा नहीं होते। यह कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम शिक्षाक्रम का एक छोटा सा हिस्सा है जिसका निर्धारण शिक्षाक्रम के सिद्धान्तों और मान्यताओं के आधार पर लिया जाता है।

इसे चित्र के माध्यम से ऐसे समझ सकते हैं–

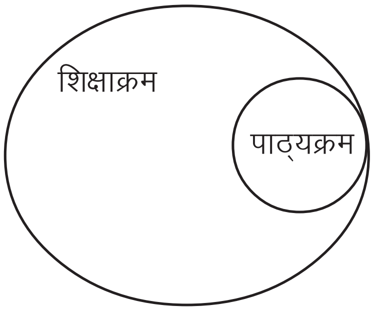

कुछ प्रश्न–

- ***पाठ्यक्रम को शिक्षाक्रम का हिस्सा क्यो माना जाता है?***

6.5 शिक्षाक्रम निर्माण की समस्याएं

शिक्षाक्रम को शिक्षा का समग्र चिन्तन कहने भर से ही काम नहीं चलता। हम यह देखने की कोशिश करेंगे कि जब किसी भी तरह का शिक्षाक्रम निर्मित होता है तो उसे बनाते हुए किन समस्याओं या प्रश्नों से जूझना पड़ता है। किसी विविधतापूर्ण, बहु–सांस्कृतिक लोकतांत्रिक देश के बच्चों के लिए क्या सिखाया जाए, इसे तय करना आसान काम नहीं है। स्कूल शिक्षाक्रम की असली चिन्ता यह होती है कि उन क्षमताओं, कौशलों, ज्ञान एवं जानकारियों आदि तथा उन वृत्तियों, रवैए और मूल्य आदि का, स्कूली शिक्षा में चयन किन आधारों पर किया जाए?

कुछ प्रश्न–

- ***आप अपनी कक्षाओं में बच्चों के बीच किस–किस तरह की भिन्नताएॅ देखते है? तथा ये भिन्नताएॅ कैसे आपकी अध्ययन–अध्यापन कार्य को प्रभावित करते है?***

बच्चों के माता–पिताओं की शिक्षा से अलग–अलग अपेक्षाएं होती हैं। कुछ माता–पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे में संस्कारों के विकास के लिए धार्मिक शिक्षा मिले लेकिन कुछ उदार माता–पिता यह भी चाह सकते हैं कि उनका बच्चा वयस्क होने पर स्वयं अपना धर्म चुने क्योंकि यह हरेक इंसान के स्वतंत्र चयन का विषय होता है और धर्म जन्म के साथ तय नहीं किया जा सकता। कुछ नास्तिक माता–पिता यह चाह सकते हैं कि उनके बच्चे पर किसी भी धर्म को आरोपित नहीं किया जाए।

कुछ माता–पिता चाह रहे हो सकते हैं कि उनका बच्चा अच्छा संगीतकार बने और उसे सिर्फ संगीत की शिक्षा दी जाए। जबकि कुछ चाह रहे हो सकते हैं कि उनके बच्चे को शुरू से विज्ञान पढ़ाया जाए ताकि वह वैज्ञानिक बन सके। कुछ माता–पिता यह भी चाह रहे हो सकते हैं कि इतिहास जैसे ऊबाऊ विषय को पढ़ने का कोई औचित्य नहीं है और जीवन में इसका कोई उपयोग नहीं है।

ऐसे में बच्चों की स्कूली शिक्षा के लिए क्या चुना जाए जो कि उनके अपेक्षित विकास में मदद करे। अतः एक मुख्य समस्या शिक्षाक्रम में क्या शामिल किया जाए और क्या नहीं, इसकी होती है।

6.5.1 बच्चों की सीखने की क्षमता

इस चयन में यह ध्यान रखना होता है कि छः साल के बच्चे क्या क्षमताएं रखते हैं और क्या सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियां विद्यमान हैं। इसके मायने हैं कि बच्चों को एक समय विशेष में उन्हीं चीजों को सिखाया जा सकता जिन्हें सीखने के लिए उनमें आवश्यक क्षमताएं हों। बच्चों की इस वास्तविक स्थिति को ध्यान रखे बिना हम चाहे किन्हीं चीजों के सिखाए जाने को कितना ही परमावश्यक समझें, सिखा नहीं सकते। इसी से जुड़ी समस्या है कि जो सिखाया जाना है उसे किस क्रम से सिखाएं। मान लीजिए, कोई शिक्षक या माता–पिता चाहें कि 6 वर्ष की आयु में बच्चे को वे न्यूटन की गति के तीन नियम सिखाए जाएं। क्या इन्हें इस उम्र में बच्चों को सिखाना मुमकिन होगा? यह सिखा पाना तब तक संभव नहीं होगा जब तक बच्चा इन्हें समझने के लिए आवश्यक क्षमताएं नहीं रखेगा। ये मनोविज्ञान वाले हिस्से में ले जाना ही उचित होगा।

6.5.2 स्तरवार सीखाने के उद्देश्य का निर्धारण

शिक्षाक्रम की दूसरी समस्या स्तरवार उददेश्यों के निर्धारण की है। मान लीजिए, हम यह चुनते हैं कि बच्चे को विवेकाधारित स्वायत्तता को एक मूल्यवान शैक्षणिक लक्ष्य के रूप में लेते हैं। लेकिन स्वायत्तता कोई ऐसी चीज तो नहीं है जो किसी क्षण में नहीं थी और अगले क्षण में आ गई। एक बच्चा अपने घर से स्कूल अकेले जा सकता है लेकिन उसे पास के शहर में अकेले जाने की इजाजत नहीं देंगे। कोई बच्चा यह तो तय कर सकता है कि उसे कौनसे खेल खेलने हैं लेकिन उसे अपने मन के मुताबिक पैसे खर्च करने की छूट नहीं देते। कहने का आशय है किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के निश्चित चरण होते हैं। शिक्षकों एवं माता–पिता को यह तय करना होता है कि किस स्तर पर बच्चे के लिए क्या आवश्यक है। इसका शिक्षाक्रम के लिए यह आशय है कि शिक्षाक्रम निर्माताओं को यह ध्यान रखना होता है कि स्कूल में प्रवेश लेने वाले बच्चे क्या जानते हैं, क्या समझते हैं, किसमें रुचि ले सकते हैं आदि। अर्थात् बच्चों के मौजूदा स्तर को ध्यान में रखते हुए यह तय करना कि उन्हें किस स्तर पर क्या सिखाया जाना चाहिए ताकि हमारे लक्ष्यों की दिशा में उचित प्रगति हो।

इसके लिए दूसरा उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए स्कूल में बच्चे को गणित या भाषा सिखानी है। क्या हम बच्चे को पहली बार स्कूल आने पर भिन्न सिखाने की कोशिश करते हैं? या भाषा में शिक्षण की शुरुआत हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' से करते हैं? नहीं, बल्कि हम स्कूल में आने वाले बच्चों को 'मुत्थू के सपने' सुनाते हैं या 'आसमान में बदरी छाई' गीत सुनाते हैं। इसी तरह गणित में भी शुरुआत गिनती, जोड़, बाकी से करते हुए क्रमशः आगे बढ़ते हैं। क्योंकि हम यह जानते हैं कि बच्चे के विकास के कुछ निश्चित चरण होते हैं और उन चरणों के अनुसार शिक्षाक्रम को भी स्तरों में विभाजित करना होता है। अतः दूसरी समस्या, स्तरवार उद्देश्यों के निर्धारण की होती है।

6.5.3 विषयवस्तु का चुनाव व नियोजन

शिक्षाक्रम की तीसरी समस्या विषयवस्तु के चुनाव और नियोजन की है। हमने पहले एक उदाहरण लिया है कि शिक्षाक्रम का उददेश्य 'विवेकाधारित स्वायत्तता' का विकास करना है। हम यह भी देख चुके हैं कि बच्चों के ज्ञान और समझ की संतोषजनक जानकारी है और उसकी सीखने की क्षमता से भी हम वाकिफ हैं। हम तय करते हैं कि 18 वर्ष के बच्चे निम्न क्षेत्रों में निर्णय ले पाने में सक्षम हो जाएंगे–

1. अपनी पोशाक के चुनाव में, जिसमें कपड़ा, रंग, प्रचलित चलन और मूल्य आदि के पहलु,
2. आनन्द के लिए पढ़ने हेतु किताबें चुनने में,
3. अपनी शिक्षा के मार्ग का चुनाव करने में,
4. यह चुनने में कि वह किससे शादी करेगा और
5. यह निर्णय लेने में कि अगले पांच वर्षों में देश में किसका शासन होना चाहिए।

अब सवाल आता है कि बच्चे को क्या सिखाएं कि वह इन सभी क्षेत्रों में आत्मविश्वास के साथ चुनाव कर सकें? कौनसा ज्ञान है जो इस तरह की चीजों को बढ़ावा देता है? उसे यह भी जानना होगा कि कौनसी चीजें हैं जो 'अविवेकशील' ढंग से प्रभाव डाल सकती हैं। अतः इसका विकास करने के लिए शिक्षक को बच्चे के लिए वस्त्रों की गुणवत्ता, मजबूती, मौसमों के अनुसार उपयुक्तता, रंग विन्यास और स्थानीय सौन्दर्य के बारे में उसे सिखाना होगा। कोई भी बच्चा यह सब एकबारगी नहीं सीख सकता। उसकी समझ थोड़ा–थोड़ा जोड़कर ही निर्मित होगी। अतः इसका नियोजन महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

विषयवस्तु के चुनाव और नियोजन में यह भी ध्यान देना होता है कि किस स्तर पर किन चीजों को कितना महत्त्व दिया जाए? सिखाए जानी सभी चीजों के बीच संतुलन कैसे रखा जाए और उनमें आपसी सामंजस्य भी हो तथा सतत रूप से प्रगति भी होती रहे।

6.5.4 सीखने–सिखाने की विधियों का चुनाव

शिक्षाक्रम की अगली समस्या सीखने–सिखाने की विधियों का चुनाव की है। हम ऊपर वाले उदाहरणों को ही पकड़कर रखते हैं। मान लीजिए, बच्चे को स्वायत्ता का विकास करना है। अब इसका विकास कैसे किया जाए? इसके लिए क्या विधि हो? क्या बच्चे को कुछ भी करने के लिए खुला छोड़ दिया जाए या उसे कुछ ऐसे निर्धारित काम दिए जाए जो कि उसे उम्र और परिस्थिति के अनुरूप कुछ करने के मौके दे? या उससे लगातार यह कहते रहा जाए कि तुम्हें स्वायत्त होना है? शिक्षक को इस बात के प्रति सजग रहना पड़ेगा कि जो भी तरीके काम में लिए जाएं वे चुने गए शिक्षा के लक्ष्यों को आगे बढ़ाने वाले होने चाहिए। यह संभव है कि किसी एक समस्या के बारे में बच्चों को रटाकर तैयार कर दिया गया हो और उस समस्या का समाधान बच्चे सफलता से कर पाने में सक्षम भी हो जाएं। लेकिन यह भी सोचना होगा कि कहीं अपनाई गई विधि से बच्चों की स्वायत्तता का विकास बाधित तो नहीं होगा।

इसी प्रकार गणित में, मान लीजिए, गिनती ही सिखानी है या हिन्दी में पढ़ना–लिखना सिखाना है, तो वह किस विधि से सिखाई जाए? आप सोचकर देखिए कि हमें जिन तरीकों से पढ़ाया गया था वे तरीके सिखाने के लिए लिहाज से कैसे थे? इन्हें व्याख्यान की पद्धति से सिखाना है या बच्चों को स्वयं कुछ करने के अवसर देना उचित है? बच्चों को रटवाना है या समझकर सिखाना है ? हम चाहते हैं कि बच्चे सीखने में भी स्वायत्त हों या फिर सीखने के हर चरण में शिक्षक पर ही हमेशा निर्भर रहें? हम सभी जानते हैं कि सिखाने की बहुत सी

विधियां हो सकती हैं। हम सभी को परंपरागत तरीकों से पढ़ाया गया है जिसमें व्याख्यान पद्धति को प्रमुख रूप से अपनाया गया। शिक्षक अकेले ही कक्षा में बच्चों को सिखाए जाने वाली चीजें बोल–बोलकर बता देते थे। या किताब से पढ़ने का काम दे देते थे। हिन्दी में कविता पढ़ाकर और उसका भावार्थ बताकर मान लिया जाता था कि बच्चों को वह कहानी समझ आ गई। लेकिन हम सोचकर देखें कि इस तरीके से पढ़ाया गया हमें कितना समझ में आता था? आजकल सीखने की प्रक्रिया में बच्चों को शामिल करने के विचार ने शिक्षा जगत में गहरी जगह बनाई है। यह माना जाता है कि बच्चे जिस काम में भागीदार होते हैं, कुछ करके देखते हैं; उससे उनकी समझ कहीं बेहतर बनती है। शिक्षण के परंपरागत तरीकों की अपेक्षा बच्चों को सक्रिय सीखने वाले के रूप में देखा जाने लगा है। कक्षा में व्याख्यान की बनिस्पत चर्चा की विधि से किसी विषय पर काम किए जाने को महत्त्व दिया जाने लगा है, बजाए इसके कि शिक्षक ही सब कुछ बोलकर बता दें।

कुछ प्रश्न–

- आज से पॉच से दस वर्ष पूर्व कि प्राथमिक कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकें या आपने जब प्राथमिक कक्षाओं में पढते थे तब की पाठ्यपुस्तकों तथा आज की प्राथमिक शालाओं की पाठ्यपुस्तकों में किस प्रकार का अन्तर देखते है? (पढने–पढाने की नजर से)

6.5.5 शिक्षण सामग्री का चुनाव

यदि हमने यह तय कर लिया कि क्या सिखाना है, किस स्तर पर क्या सिखाना है और उसके उद्देश्य क्या हैं और सिखाने की विधि भी तय कर ली, तो अगली समस्या आती है कि इसके लिए उपयुक्त सामग्री क्या हो? किस सामग्री को बेहतर शिक्षण सामग्री माना जाए? क्या बच्चों को सिखाए जाने के लिए सिर्फ पाठ्यपुस्तकें ही काफी हैं? या पाठ्यपुस्तकों के अलावा भी अध्ययन सामग्री, कुछ और किताबें हो सकती हैं? यदि पाठ्यपुस्तकें भी बनाई जा रही हैं तो वे किन मानदण्डों पर बनाई जानी चाहिएं? हम देखेंगे कि शिक्षण विधि और शिक्षण के लिए प्रयुक्त होने वाली सामग्रीयों में गहरा संबंध है। हमने अपनी शिक्षा के संदर्भ में देखा होगा कि शिक्षण सामग्री के रूप में एकमात्र चीज पाठ्यपुस्तक ही उपलब्ध होती थी। लेकिन आज के समय में सभी जानते हैं कि शिक्षण को बेहतर बनाने के लिए विविध प्रकार की सामग्री का बेहतरीन उपयोग किया जा सकता है।

कुछ प्रश्न–

- किसी एक कक्षा के संदर्भ में किसी एक विषय को लेकर नीचे दिए गए तालिका को पूरा कीजिए।

अवधारणा (आप जो चीज सिखाना चाहते है)	सहायक सामग्री का उपयोग

6.5.6 मूल्यांकन प्रक्रिया का चुनाव

इन सब के अन्त में एक और समस्या आती है, बच्चों को जो कुछ सिखाया गया है, उसका मूल्यांकन कैसे किया जाए? मूल्यांकन का आशय है कि बच्चे को जो सिखाया गया है, उसने वह कितना सीखा है। आपके

मूल्यांकन के अपने अनुभव क्या हैं? क्या आपको लगता है कि मूल्यांकन के लिए हमारी स्कूली शिक्षा व्यवस्था में अपनाई जाने वाली परीक्षा पद्धति उपयुक्त तरीका है? मूल्यांकन को देखने के कई नजरिए हैं। एक नजरिए से माना जाता है कि बच्चे की सफलता या असफलता की जांच करना। दूसरे नजरिए से यह समझना होत है कि बच्चे को जो सिखाया गया है उसे वह कितना समझ आया है और उसे अभी क्या सिखाया जाना है। अर्थात् पुनः समझाने के लिए समस्याओं को चिन्हित करना। तीसरे नजरिए से कुछ लोग मानते हैं कि मूल्यांकन संस्था की प्रगति को जांचने के लिए होता है। मूल्यांकन का वही तरीका उचित है जो बच्चे की आगे सीखने में मदद करे। जो बच्चे में असफल होने का बोध विकसित नहीं करे।

कुछ प्रश्न–

- आप अपनी कक्षा में किन किन मूल्यांकन के तरीकों का उपयोग करते है? इन तरीकों को कौन तय करता है?

6.6 शिक्षाक्रम निर्माण की विभिन्न समस्याओं के बीच संबंध

अभी तक हमने शिक्षाक्रम निर्माण की समस्याओं पर अलग–अलग चर्चा की है। इससे यह आभास हो सकता है कि ये समस्याएं एक–दूसरे से पृथक हैं। इसलिए यहां यह कहना उचित होगा कि ये समस्याएं एक–दूसरे से गहरा संबंध रखती हैं। किसी भी एक समस्या पर जो भी निर्णय लिया जाएगा वह दूसरी समस्याओं को प्रभावित करेगा। मान लीजिए, हमने तय किया कि शिक्षा के माध्यम से बच्चों में विवेकाधारित स्वायत्तता का विकास किया जाना है। इस निर्णय का सीखने–सिखाने की विधियों, स्तरवार उद्देश्यों, शिक्षण सामग्री के चयन पर सीधे– सीधे प्रभाव आएगा।

शिक्षाक्रम का लक्ष्य होता है कि बच्चों की उन ज्ञान, समझ, क्षमताओं, कौशल मूल्यों का विकास कैसे किया जाए जो कि अपेक्षित होने के बावजूद भी बिना स्कूल के हस्तक्षेप के नहीं हो सकते। अतः इन निर्धारित कार्यों को सुविचारित रूप से हासिल करने में पहली समस्या यह है कि उन क्षमताओं, कौशलों, ज्ञान एवं जानकारियों तथा वृत्तियों एवं मूल्यों को चुना किस आधार पर किया जाए? हमने उपर यह बात की है कि मानव सभ्यता ने अपने अभी तक के अनुभव से अथाह ज्ञान अर्जित किया है। अभी तक के संचित ज्ञान को न तो बच्चों को सिखाया जा सकता है और न ही सिखाया जाना अपेक्षित होता है। अतः उपलब्ध ज्ञान, कौशलों, मूल्यों, वृत्तिओं में से किसे बच्चों के सिखाए जाने के लिए चुनें और किसे छोड़ दें? अर्थात् क्या चुनें और क्यों चुनें? यानी बच्चों को क्या सिखाया जाए और क्या नहीं?

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि बच्चे स्कूल आने से पहले ही बहुत–सी चीजें जानते हैं और बहुत–सी चीजें जान सकते हैं। लेकिन बच्चे जिन्हें सीख सकते हैं उन सभी चीजों को हम नहीं सिखाते। उदाहरण के लिए, बच्चे आसानी से हिंसा करना सीख सकते हैं लेकिन उन्हें हिंसा करने से रोका जाता है। बच्चे अपने से अभिवादन करने वालों से उदण्डता कर सकते हैं लेकिन स्कूल उन्हें विनम्रता सिखाते हैं। बच्चे अपने परिवेश से गाली देना सीख जाते हैं लेकिन हम गाली देने को हतोत्साहित करते हैं। हम ये जानते हैं कि यदि बच्चों को भाषायी माहौल मिले तो वे किसी भी भाषा को सीखने में सक्षम होते हैं। इस मायने में छत्तीसगढ़ के बस्तर इलाके के बच्चे मलयालम या अन्य भाषाएं सीख सकते हैं लेकिन उन्हें हिन्दी या अंग्रेजी ही सिखायी जाती है। कालीन उद्योग में जुड़े बच्चे कुशलता से कालीन बुनना जानते हैं लेकिन हम उन्हें स्कूल में कालीन बुनना नहीं सिखाकर कागज या मिट्टी से खिलौने बनाना या चित्रकला सिखाते हैं। हम बच्चे को संगीत, नृत्य, नाटक या इसी तरह से बहुत सी कलाएं सिखाने की कोशिश करते हैं। इससे स्पष्ट है कि सभी क्षेत्रों में, चाहे वे कौशल हों, ज्ञान हो

या मूल्य हों, स्कूल कुछ खास चीजों को चुनता है। कुछ खास चीजों के नहीं सिखाने को निरुत्साहित करता है। यह चयन से जुड़ा मसला है। लेकिन इस चयन के पीछे कुछ आधार होते हैं? यदि हम मानते हैं कि स्कूलों में होने वाले काम सोच–विचारकर तय किए जाते हैं तो इन्हें भी चुनने के कोई आधार तो होने ही चाहिए।

इस चयन को प्रभावित करने वाले बहुत से आधार होते हैं। ये चयन शिक्षा के उद्देश्य, व्यापक समाज, राजनीति, मनोविज्ञान और ज्ञानमीमांसीय आधारों पर तय होते हैं।

कुछ प्रश्न–

- ***किस तरह से समाजिक व मनोविज्ञानिक आधार शिक्षाक्रम के निर्माण को प्रभावित करता है?***

6.7 शिक्षा के उद्देश्य

स्कूली शिक्षाक्रम में क्या शामिल किया जाए, इसके चयन में शिक्षा के उद्देश्यों की अहम भूमिका होती है। शिक्षा इंसानों को भावी जीवन की अवधारणा उस मानवीय गतिविधि की ओर संकेत करती है जो बच्चों को भावी जीवन के लिए तैयार करती है।

बच्चों को क्या सिखाया जाए, इसके चयन में माता–पिता और समाज बहुत ही अह्म भूमिका निभाते हैं। हरेक माता–पिता अपने बच्चों से कुछ अपेक्षाएं रखता है। ये अपेक्षाएं उसकी नौकरी से लेकर खुशहाल जीवन तक की होती हैं। माता–पिता चाहते हैं कि उनका बच्चा अमुक सद्गुण सीखे। लेकिन अलग–अलग माता–पिताओं की अपेक्षाएं भी अलग–अलग होती हैं। उदाहरण के लिए, कुछ माता–पिता हो सकता है कि बच्चों को धार्मिक शिक्षा दिलाने के पक्ष में हों। कुछ चाहते हों कि वयस्क होने पर या अपने विवेक से बच्चे स्वयं अपना धर्म चुनें। ऐसे में शिक्षाक्रम निर्माता किसे चुनें? वे बच्चों को धार्मिक शिक्षा दें या नहीं दें?

वहीं व्यापक समाज भी भावी नागरिकों से कुछ अपेक्षाएं रखता है कि उसके नागरिकों में क्या गुण, मूल्य, अभिवृत्तियां होनी चाहिए। भारत विविधता से भरा एक बहु–सांस्कृतिक देश है। बहुत सी संस्कृतियां यहां समानान्तर एक साथ रहती हैं। हरेक संस्कृति का दुनिया को देखने का अपना नजरिया, मान्यताएं, आदर्श और आकांक्षाएं होती हैं। बस्तर में रहने वाले समुदायों के अपने विश्वास और मान्यताएं होते हैं और रायपुर में रहने वालों के कुछ और।

अगली समस्या आती है कि मान लीजिए, बच्चों को सिखाने के लिए जो भी चुना गया उसे किस क्रम में सिखाया जाए?

इस बात पर सभी की मोटी–मोटी सहमति बन जाती है कि भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, प्राकृतिक विज्ञान, साहित्य, कलाएं और शारीरिक ज्ञान हो लेकिन समस्या यह है कि शिक्षाक्रम में किसे कितना महत्त्व दिया जाए? कितना समय दिया जाए?

6.8 सारांश

- यह मानव समाज में विकसित होती अवधारणा है जिसकी परिभाषा समय और जरूरत के अनुसार बदलती रही है।
- परंपरागत अर्थ में शिक्षाक्रम के मायने–विभिन्न विषयों की सूची, विषयों में पढ़ाए जाने वाली विषयवस्तु से लिया जाता है। जिसका पूरा जोर कक्षा–कक्षीय प्रक्रियाओं तक ही सीमित रह जाता है।
- शिक्षा पर समग्र चिन्तन जो स्कूली शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रियाओं को दिशा निर्देशित करते हैं उसे शिक्षाक्रम कहते हैं।

- शिक्षाक्रम स्कूल को क्या करना चाहिए, क्यों करना चाहिए और कैसे करना चाहिए आदि समस्याओं के बारे में दिशा–निर्देशित करने वाले सिद्धान्तों, मान्यताओं का एक दस्तावेज होता है।
- शिक्षाक्रम शिक्षा के हर पहलु (बौद्धिक, सामाजिक, नैतिक, भावनात्मक और व्यवहारिक) को दिशा–निर्देशित करता है।
- पाठ्यक्रम हमें कक्षावार या स्तरवार विवरण उपलब्ध करवाता है। लेकिन वे ही चीजें क्यों पढ़ाई जाएंगी, इन्हें चुनने के आधार क्या हैं आदि जैसे सवाल पाठ्यक्रम की अवधारणा का हिस्सा नहीं होते।

6.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. शिक्षाक्रम बनाते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है?
2. प्रच्छन्न शिक्षाक्रम की अवधारणा क्या है?
3. स्कूली शिक्षा में शिक्षाक्रम की जरूरत क्यों है?
4. स्कूली शिक्षा के माध्यम से हम बच्चों के किस–किस तरह के विकास की अपेक्षा करते हैं?
5. बिना मूल्याकंन पर चर्चा किए शिक्षाक्रम को पूरा नहीं माना जा सकता। क्यों?
6. शिक्षाक्रम और पाठ्क्रम में क्या अंतर है?
7. शिक्षाक्रम बनाते हुए स्तरवार पाठ्यक्रम बनाने की आवश्यकता क्यों है?
8. शिक्षा के उद्देश्य शिक्षाक्रम–निर्माण को कैसे प्रभावित करते है?
9. सीखने–सिखाने के तरीके शिक्षाक्रम निर्माण को किस तरह प्रभावित करते हैं?
10. मान लीजिए, प्रागैतिहासिक काल के शिकारी समाज के लोगों अपने बच्चों के लिए शिक्षाक्रम बनाना चाहते हैं। आपके अनुसार ये अपने शिक्षाक्रम में किन–किन चीजों को शामिल करेंगे? कारण सहित स्पष्ट करें।
11. आपके अनुसार आज के हमारे आधुनिक समाज के लिए बनने वाले शिक्षाक्रम में शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहिए?
12. धर्म आधारित समाज और लोकतांत्रिक समाज में शिक्षा के उद्देश्यों में क्या फर्क होगा?
13. मान लीजिए, कोई शिक्षक पीटने और डराने–धमकाने को सीखने के लिए अनिवार्य मानता है। आप उसकी कक्षा में चलने वाले शिक्षण प्रक्रिया का काल्पनिक वर्णन करिये।
14. मान लीजिए, आपको रायपुर शहर और बस्तर के आदिवासी बच्चों के लिए शिक्षाक्रम बनाना है। क्या दोनों समाजों के लिए बनाये जाने वाला शिक्षाक्रम समान होगा? या कुछ फर्क होगा? यदि समान होगा तो क्यों और यदि फर्क होगा तो क्या और क्यों?
15. छत्तीसगढ़ के मूल आदिवासी समाजों में कौन–कौन से कौशल (ज्ञान) हस्तांतरित किए जाते हैं और ज्ञान हस्तांतरण के तरीके क्या हैं?
16. बहुत से लोग मानते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति ईश्वर ने की है। कुछ लोग ये भी मानते हैं कि पृथ्वी शेषनाग के फन पर टिकी है। क्या इन्हें स्कूल शिक्षाक्रम में शामिल किया जाना चाहिए?

प्रोजेक्ट कार्य हेतू कुछ प्रश्न

1. किन्ही तीन प्राथमिक शालाओं के कक्षा पांचवी के बीस बच्चों से निम्न बिन्दुओं पर बातचीत कर एक रिर्पोट तैयार करें।
   - शिक्षक किन–किन तरीकों से पढ़ाते है?
   - कौन सा विषय पढ़ना अच्छा लगता है?
   - क्या शिक्षक बच्चों के प्रश्नों का जवाब देते है?
   - क्या बच्चो को अपने शिक्षको से प्रश्न पूछना अच्छा लगता है? क्यों?
   - लगभग कितने प्रतिशत बच्चे अपने शिक्षको से अध्ययन अध्यापन के दौरान प्रश्न पूछते है?
2. कक्षा 4 थी के बच्चों को दो ग्रुप में बाँटकर एक ग्रुप को गतिविधि व कहानी से पढ़ाए तथा दूसरे समूह को परंपरागत विधि से पढाएं और बताएं कि किस समूह को सीखने के लिए अधिक अवसर प्राप्त हुआ? किन–किन बिन्दुओं में सीखने के अवसर प्राप्त हुए। इस आधार पर बताएं कि एक शिक्षक के लिए उपयुक्त अध्ययन–अध्यापन के तरीके का चुनाव क्यों महत्वपूर्ण है?
3. कक्षा 5वीं के पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तक की समीक्षा कर बताएँ कि पाठ्यपुस्तक में कौन–कौन से कौशलात्मक ज्ञान की बात कही गई हैं? आप उन कौशलों के विकास के लिए किस–किस प्रकार की गतिविधियाँ बच्चों के साथ किए है या करेंगें?
4. आप किसी एक शिक्षक के कक्षागत–कार्य का पाँच दिनों तक अवलोकन करें और निम्न बिन्दुओं पर लेख तैयार करें :–
   - शिक्षक द्वारा पढाए गई विषयवस्तु।
   - पढ़ाने के दौरान बच्चों में किन–किन कौशलों के विकास का प्रयास किया गया।
   - उपरोक्त कौशलों के विकास हेतु बच्चों को किन–किन परिचायात्मक ज्ञान की आवश्यकता हुई।
5. एक–एक उदाहरण प्रत्यक्ष अनुमान ,उपमान, व शब्द का लिखिए जब आपने इनका उपयोग अपनी शिक्षण प्रक्रिया के दौरान किया होगा। उपरोक्त उदाहरणों की सहायता से बताएं कि किस तरह से प्रत्यक्ष का उपयोग अनुमान उपमान व शब्द प्रमाण के लिए किया जा रहा है?
6. प्राथमिक शाला में गणित पढ़ने के पाँच उद्देश्यों को लिखिए। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आपके द्वारा पढाए गए किसी एक कक्षा के गणित की पाठ्यपुस्तक में से किन्ही पाँच अवधारणाओं को छाँट कर लिखिए तथा यह भी लिखिए कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आपने कक्षा में बच्चों के साथ किस तरह की अन्तःक्रिया की?
7. आपके अपने क्षेत्र में निवासरत आदिवासी समाजों की सूची बनाएं और किसी एक आदिवासी समाज के लोगों से बातचीत कर यह पता करें कि उनके समाज में कौन–कौन से कौशल (ज्ञान) एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जाता रहा है और ज्ञान हस्तातंरण का क्या तरीका रहा है?